पाओलो फ्रेरे
और
भारतीय शिक्षा व्यवस्था

भाग एक – एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. अमृत पाल सिंह

BlueRose ONE .com
Stories Matter
NewDelhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS
India | U.K.

Copyright © Dr. Amrit Pal Singh 2026

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.



For permissions requests or inquiries regarding this publication, please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS
www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: 978-81-6744-859-0

Cover Design: Aafiya Saifi
Typesetting: Namrata Saini

First Edition: November 2026

पुण्यस्मृत पिताजी
‘सरदार धर्म सिंह’ जी
को समर्पित

प्रस्तावना

पाओलो फ्रेरे अपने सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य 'उत्पीड़ितों के शिक्षाशास्त्र' जैसी शास्त्रीय रचना के लिए सम्पूर्ण विश्व में जाने जाते हैं। वे ईसा मसीह और कार्ल मार्क्स दोनों से ही प्रभावित थे। वस्तुत:, वे सदैव ही विश्वास और तर्क के साम्य बिन्दु की तलाश में रहते थे। वे बदलाव के पक्षधर थे; विशेषकर शिक्षा के ज़रिए शोषणकारी सामाजिक परिस्थितियों के बदलाव के। उनका सारा जीवन 'मुक्ति की चाह' का पर्याय है। यद्यपि, पाओलो फ्रेरे का मुख्य कार्य क्षेत्र ब्राज़ील की भूमि रही, तथापि, उनका समाज-दार्शनिक शैक्षिक चिंतन सम्पूर्ण विश्व से जुड़ा हुआ है। लेखक, डॉ. अमृत पाल सिंह ने अपनी इस शैक्षणिक शोध पुस्तक में पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक चिंतन की समाज-दार्शनिक गंभीरता को सरल व सहज भाषा में विवेचित करने का महत्त्वपूर्ण सफल प्रयास किया है। उनकी यह पुस्तक एक रोचक इतिहासिक यात्रा-सी लगती है, जो ब्राज़ील जैसे तीसरी दुनिया के देश से शुरू होकर भारत तक आती है। लेखक ने पाओलो फ्रेरे के गूढ़ शैक्षिक विचारों का 'अवकोडीकरण' कर भारतीय शिक्षा व्यवस्था की जटिलताओं को तथ्यपरक रूप से उजागर किया है; साथ ही वे भारतीय शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण कार्यक्रमों की विसंगतियों को भी विश्लेषण का विषय बना पाने में सफल रहे हैं।

सरल हिन्दी भाषा में पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक विचारों का विवेचन और भारतीय शिक्षा व्यवस्था का संवैधानिक प्रावधानों, विभिन्न आयोगों व नीतिगत प्रतिवेदनों के संदर्भ में 'सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक' तथ्यपरक व गुणात्मक विश्लेषण बहुत कम देखने में आता है। लेखक ने इस पुस्तक के माध्यम से काफ़ी हद तक इस कमी को दूर कर दिया है। यह पुस्तक शिक्षा में 'गुणात्मक अनुसंधानों' को बल प्रदान करेगी। मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि लेखक का यह नवीन प्रयास भारतीय शिक्षा व्यवस्था में बदलाव की आशा का संचार करेगा। मेरा विश्वास है कि यह पुस्तक नीति-निर्माताओं,

शिक्षाविदों, शिक्षकों, शोधार्थियों के लिए बहुत उपयोगी रहेगी; और उन्हें अभिप्रेरित करती रहेगी कि वे भारतीय शिक्षा के उद्देश्यों, गुणात्मक शिक्षा, शैक्षिक नवाचारों, पढ़ने-पढ़ाने के तरीकों, बच्चे के सांस्कृतिक पक्ष, और अपनी आलोचनात्मक भूमिका के बारे में पुनः चिंतन-अनुचिंतन करें।

डॉ. नगेन्द्र सिंह
आचार्य (सेवानिवृत्त)
व पूर्व अधिष्ठाता (शोध), क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान
(राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्)
अजमेर, राजस्थान
व पूर्व अधिष्ठाता (शिक्षाशास्त्र)
महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय
अजमेर, राजस्थान

आमुख

पाओलो फ्रेरे के विचारों को सामान्यतः 'तीसरी दुनिया' अथवा विकासशील देशों के संदर्भ में देखा जाता है। उनके विचारों के आलोक में 'तीसरी दुनिया' में भूख, गरीबी, कुपोषण, शोषण, इत्यादि के इर्द-गिर्द फैली सामाजिक बुनावट को समझने का प्रयास किया जाता रहा है। भारत को भी सामान्यतः 'तृतीय विश्व' की श्रेणी में शामिल माना जाता रहा है। भारत की शिक्षा-संरचना को गहराई से देखने पर यह बात साफ़ तौर पर उभरकर सामने आती है कि भारत में समय-समय पर 'सामाजिक कल्याण' के संवैधानिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए संवैधानिक संशोधनों द्वारा कानूनी रास्ता अपनाया जाता रहा है। भारत में शिक्षा को सर्वव्यापक बनाने के लिए किए गए विभिन्न प्रयास 'उदारीकरण', 'वैश्वीकरण', 'निजीकरण', इत्यादि वैश्विक प्रघटनाओं से अछूते नहीं रहे हैं। शिक्षा के क्षेत्र में 'वैश्वीकरण', 'उदारीकरण', व 'निजीकरण' से जहाँ भारत में एक ओर नए क्षेत्रों का सृजन हुआ है, तो वहीं दूसरी ओर 'विशिष्टीकरण' द्वारा शिक्षा से वंचित तबका और अधिक वंचित भी हुआ है।

भारत में शिक्षा-संरचना 'राजनीतिक, आर्थिक, व सामाजिक' व्यवस्था के इर्द-गिर्द आकार ग्रहण करती रही है। अन्य शब्दों में, 'राजनीतिक, आर्थिक, व सामाजिक' प्रक्रियाएँ शिक्षा-संरचना में व्यापक फेरबदल का कारण रही हैं। भारत में भले ही शिक्षा व आर्थिक क्षेत्र में आरक्षण के ज़रिए 'सामाजिक स्तरीकरण' को दूर करने का प्रयास किया जाता रहा हो, परन्तु यह अभी भी वंचितों की सामाजिक स्थिति में सुधार का एक प्रबल औजार नहीं बन पाया है। उपर्युक्त भारतीय स्थितियों में सुधार के लिए शिक्षा की अहम् भूमिका हो सकती है। परन्तु, यह स्पष्टतः देखा गया है कि राजनीतिक संरचना अथवा राज्य-व्यवस्था राज्य के नागरिकों के कल्याण के लिए नीति बनाने की बजाय राज्य-संरचना को रूढ़ बनाने वाली व्यवस्था के पोषण का ज़रिया मात्र बनती

जा रही है। गठबंधन सरकारों का चलन इस स्थिति में और वृद्धि करता प्रतीत होता है। फलस्वरूप, शिक्षा-संरचना और उसमें भी विशेषतः पाठ्यपुस्तकें विभिन्न राजनीतिक दलों की विचारधाराओं का प्रपत्र बनकर रह जाती हैं। इसके पीछे राजनीतिज्ञों द्वारा 'लाभ की स्थिति' छूट न जाने का डर कार्य करता है, जिसे पाओलो फ्रेरे 'स्वतंत्रता का भय' अवधारणा के अन्तर्गत रखते हैं।

दीर्घकाल से भारतीय 'औपचारिकेतर शिक्षा-तंत्र' प्रस्थापित करने हेतु प्रयास अनेक अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के माध्यम से किए गए हैं। परन्तु, अब यह 'औपचारिकेतर शिक्षा-तंत्र', 'सुरक्षा वाल्व', 'आक्रोश प्रतिस्थापन' व 'सस्ता या मुफ़्त तो घटिया' जैसी वैचारिकी में बदल रहे हैं। इसी कड़ी में 'एसएसए' शिक्षा की बजाय सिर्फ़ पढ़ना-लिखना आने पर केन्द्रित होकर रह गया है। कालांतर से भारत की पहचान धर्म समन्वयक की रही है। फलस्वरूप, भारत में अनेक संप्रदाय, धर्म व संस्कृतियाँ फली-फूलीं। एक ग्राम बनते विश्व में भारत 'आधुनिकता', 'उपभोक्तावाद', 'नस्लवाद', 'अकर्मण्यता', 'असमानुभूति', इत्यादि अवधारणाओं से अछूता नहीं रहा है। भारत में 'क्षेत्रवाद', 'संप्रदायवाद', 'धार्मिक उथलापन', 'अलगाववाद', 'शहरीकरण', 'सांस्कृतिक विघटन', 'राजनीतिक अस्थिरता', 'वर्गीय औद्योगिकीकरण', इत्यादि समस्याएँ पहले से अधिक जटिल रूप में सामने आई हैं। शिक्षा जगत में भी से समस्याएँ हैं। ऐसे में - समकालीन भारतीय परिवेश के परिप्रेक्ष्य में पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक विचारों अथवा चिंतन को उसी रूप में देखा जाए, जिस रूप में वे 'तृतीय विश्व' से जुड़े रहे हैं, अथवा नए संदर्भों में उन्हें जाँचा-परखा जाए? उपर्युक्त चर्चा के अंतर्गत यदि, समकालीन भारतीय परिवेश के संदर्भान्तर्गत शिक्षा जगत पर दृष्टि डालें तो, पाओलो फ्रेरे के समग्र शैक्षिक विचारों के गहन विश्लेषण की प्रासंगिकता प्रमाणिक है। अतः, आवश्यक है कि समकालीन भारतीय परिस्थितियों में पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक विचारों को विवेचित-विश्लेषित कर सम्यक निष्कर्षों को समझा जाए। प्रस्तुत शैक्षणिक शोध पुस्तक में शोधार्थी-लेखक द्वारा शोध के उद्देश्यों के अंतर्गत सबसे पहले पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक विचारों के तत्कालीन संदर्भों का गहन विश्लेषण कर पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक विचारों की रूपरेखा के ताने-बाने को

समझा गया, ताकि तत्कालीन परिस्थितियों और समकालीन भारतीय परिस्थितियों की आबंधकता के प्रति सम्यक दृष्टि प्राप्त की जा सके।

इसी दृष्टि के आलोक में शैक्षिक उद्देश्यों की पहचान की गई; यह प्रतिपादित किया गया कि शैक्षिक उद्देश्यों का यथार्थवादी होने, आसपास की परिस्थितियों के प्रति सजग होने, शोषणकारी परिस्थितियों में बदलाव करने, 'प्रेमविहीनता की स्थिति' में बदलाव करने, स्थानीयता से सम्बद्ध होने, विश्वास व तर्क में साम्यता स्थापित करने, मानवीय जटिलताओं को वैश्विक संदर्भों में समझने, विद्यार्थी व शिक्षक के संज्ञानवादी, सह-अनुसंधानकर्त्ता होने, ज्ञान के पुनराविष्कारी होने, आचरणमय व्यवहार के प्रकटीकरण, सक्रियता व सृजनात्मकता, पारस्परिक मानुषीकरण, संप्रेषणात्मक ज्ञान, और 'कर्म व अनुचिंतन में पूरकता' से स्पष्ट सम्बन्ध होता है। शोधार्थी-लेखक द्वारा पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक विचारों के अंतर्गत उद्देश्यों की पहचान कर इन उद्देश्यों की प्राप्ति की पद्धति पर समझ का विस्तार किया गया। पद्धतिगत तत्त्वों में प्रमुख हैं – 'विवेकीकरण प्रक्रिया', 'स्वतंत्रता के भय' से मुक्ति, 'मानुषीकरण प्रक्रिया', 'सतत-सहभागी' मुक्ति-संघर्ष, यथार्थवादी दृष्टिकोण, 'पालतूकरण' से मुक्ति, 'आचरणात्मक व्यवहार' की प्राप्ति, 'शिक्षा की बैंकीय अवधारणा' का बहिष्कार, सक्रीयता में वृद्धि, नियतिवादी दृष्टिकोण से मुक्ति, 'संकीर्णतावादी' सोच से 'आमूल परिवर्तनवादी' सोच की ओर अग्रसरता, 'सच्ची उदारता' का पोषण, 'सृजनात्मक' दृष्टिकोण, 'उप-उत्पीड़क' बनने की स्थिति के प्रति सजगता, 'स्वायत्तता और उत्तरदायित्व' अपनाना, व संवादात्मकता, इत्यादि।

इसके अलावा, शोधार्थी-लेखक ने विभिन्न दस्तावेज़ों व शिक्षाविदों से साक्षात्कारों के माध्यम से तथ्यों को बार-बार जाँचा-परखा; और समकालीन भारतीय सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक परिदृश्य के अंतर्गत शिक्षा की वस्तुस्थिति की पड़ताल कर विभिन्न निष्कर्षों तक पहुँचने का तथ्यपरक प्रयास किया। इसी आधार पर प्रस्तुत शोध पुस्तक में पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक विचारों के बरक्स समकालीन भारतीय परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में भारतीय शिक्षा जगत की वस्तुस्थिति का सारगर्भित विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। विश्लेषण के दौरान शोधार्थी-लेखक ने भाषाई जटिलता, सामाजिक-राजनीतिक-

आर्थिक जटिलता, विद्यालयी वस्तुस्थिति की जटिलता, शिक्षकों की स्थिति की जटिलता, गरीबी सम्बन्धी जटिलता, व शिक्षक-शिक्षा की जटिलता, इत्यादि स्थितियों का वस्तुपरक अध्ययन कर शोध उद्देश्यों के अंतर्गत समकालीन भारतीय शिक्षा जगत को समझने का सार्थक प्रयास किया है।

डॉ. अमृत पाल सिंह
लेखक

आभार

सर्वप्रथम, मैं श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी का स्मरण कर, वाहेगुरु जी को नमन करता हूँ। मैं हृदय से प्रो. (डॉ.) चाँद किरण सलूजा जी और सह-आचार्या, डॉ. पूजा गुप्ता जी का आभारी हूँ, जिन्होंने मेरे पीएच.डी. (शिक्षाशास्त्र) शोध कार्य के दौरान कई जटिल मुद्दों को समझने में, मुझे अपना समय व अनुभव प्रदान किया। यही कारण है कि मैं अपने पीएच.डी. (शिक्षाशास्त्र) शोध कार्य पर आधारित इस शैक्षणिक शोध पुस्तक की रचना करने में समर्थ हो सका हूँ। मैं शब्दों में आपका आभार व्यक्त करने में स्वयं को असहज पाता हूँ। आप दोनों का बहुत-बहुत आभार।

मैं विभिन्न विश्वविद्यालयों के उन सभी शिक्षाविदों का भी विशेष आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे इस शैक्षणिक शोध पुस्तक को पूरा करने हेतु अप्रत्यक्ष मनोबल प्रदान किया। मैं विभिन्न विश्वविद्यालयों के उन सभी आचार्यों व पुस्तकालयाध्यक्षों का भी ऋणी रहूँगा, जिन्होंने मुझे इस शैक्षणिक शोध पुस्तक को पूरा करने हेतु समय-समय पर मार्गदर्शन प्रदान किया। मैं उन सभी शिक्षकों-शिक्षाविदों के प्रति भी नतमस्तक हूँ, जिन्होंने साक्षात्कार प्रक्रिया के दौरान व बाद में समय न रहते हुए भी मेरे लिए समय निकाला; और मेरे द्वारा पूर्वनियोजित और जिज्ञासावश पूछे जा रहे सभी प्रश्नों को सहज भाव से लेकर, मुझे यह मौका दिया कि मैं उनके ज्ञान से अपनी समझ का विस्तार कर सकूँ। मैं आप सभी शिक्षकों-शिक्षाविदों का आभारी हूँ।

मैं अपनी पहली कक्षा की अध्यापिका सरदारनी प्रकाश कौर जी के प्रति भी कृतज्ञ हूँ, जिनके स्नेह, भरोसे, और प्रोत्साहन ने मेरी नींव मजबूत की।

मैं अपने परिवार को बधाई देता हूँ; विशेषकर अपनी माता जी को और अपनी अर्धांगिनी को। इस शैक्षणिक शोध पुस्तक में उनका अकथनीय श्रम व समय भी सन्निहित है। मेरे बड़े भाई का वरदहस्त और विश्वास भी लेखन यात्रा में निरंतर मेरे साथ रहा है।

डॉ. अमृत पाल सिंह
लेखक

संक्षेपाक्षर

%	प्रतिशत
अनु.	अनुच्छेद
ईएफ़ए	एजुकेशन फॉर आल
ईसीसीई	अर्ली चाइल्डहुड केयर एण्ड एजुकेशन
एआईसीटीई	आल इंडिया काउंसिल फॉर टेक्निकल एजुकेशन
एनएएसी	नेशनल अससेसमेंट एण्ड एक्रिडिऐशन काउंसिल
एनसीटीई	नेशनल काउंसिल फॉर टीचर एजुकेशन
एसएमएस	शॉर्ट मेसेज सर्विस
एसएसए	सर्व शिक्षा अभियान
डीईसी	डिसटेन्स एजुकेशन काउंसिल
डीपीईपी	डिस्ट्रिक्ट प्राइमेरी एजुकेशन प्रोग्राम
नेट	नेशनल एलीजीबिलिटी टेस्ट
बी.एड.	बेचलर ऑफ एजुकेशन
यूजीसी	यूनीवर्सिटी ग्रांट्स कमीशन
यूनेस्को	यूनाइटेड नेशंस एजुकेशनल, साइंटिफ़िक एण्ड कल्चरल ओर्गेनाज़ेशन
सीबीएसई	सेंट्रल बोर्ड ऑफ सेकेंडेरी एजुकेशन

विषयवस्तु सूची

अध्याय 1 भूमिका 1
1.1 सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य 2
1.2 अध्ययन की आवश्यकता 12
1.3 समस्या कथन 15
1.4 अध्ययन का तर्काधार 15
1.4.1 भूतकाल के संदर्भ में तर्काधार 15
1.4.2 वर्तमान के संदर्भ में तर्काधार 16
1.4.3 भविष्य के संदर्भ में तर्काधार 16
1.5 शब्दावली परिभाषा 16
1.5.1 भारतीय परिस्थितियाँ 16
1.5.2 शैक्षिक विचार 17
1.6 शोध प्रश्न 17
1.7 शोध उद्देश्य 17
1.8 परिसीमन 18

अध्याय 2 साहित्य समीक्षा 21
2.1 समीक्षागत परिप्रेक्ष्य 22
2.2 सम्बद्ध पूर्व शोधों, पुस्तकों एवं लेखों का विश्लेषण 24
2.2.1 शोध 24
2.2.2 पुस्तकें 29
2.2.3 लेख 42
2.3 पूर्व कार्यों के संदर्भान्तर्गत प्रस्तुत अनुसंधान की स्थिति 44

अध्याय 3 शोध पद्धतिशास्त्र 47
3.1 पद्धतिशास्त्रगत परिप्रेक्ष्य 48

3.2 अध्ययन काल-खण्ड 49
3.3 'शोध अभिकल्प' में प्रयुक्त विधि 50
3.4 प्रतिचयन 51
3.4.1 समष्टि या जनसंख्या 52
3.4.2 प्रतिदर्श या व्यष्टि या न्यादर्श 52
3.4.3 'प्रतिचयन विधि' 53
3.5 उपकरण विवरण 55
3.5.1 'अर्धसंरचित साक्षात्कार अनुसूची' 55
3.5.2 उपकरण का निर्माण व वैधता 57
3.5.3 उपकरण के प्रश्नों की प्रकृति 57
3.6 आँकड़ों के संग्रहण या एकत्रीकरण की प्रक्रिया 58
3.7 विश्लेषण हेतु निर्धारित शोध मापदण्ड 59
3.7.1 पाओलो फ्रेरे के 'शिक्षा सम्बन्धी विचार' 59
3.7.2 समकालीन भारतीय परिस्थितियाँ 60
3.7.3 पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक विचार और समकालीन भारतीय परिस्थितियाँ 60
3.8 आँकड़ों के विश्लेषण में प्रयुक्त 'तकनीक या उपागम' 60

अध्याय 4 विश्लेषण एवं निर्वचन (अर्थनिर्धारण) 63
4.1 विश्लेषण व निर्वचनगत परिप्रेक्ष्य 64
4.2 पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक विचारों पर तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव 65
4.2.1 पहली घटना 68
4.2.2 दूसरी घटना 69
4.3 पाओलो फ्रेरे के 'शिक्षा सम्बन्धी विचार' 74
4.3.1 "समस्या-उठाऊ शिक्षा" अथवा "शिक्षा की समस्या-उठाऊ अवधारणा" अथवा "संवादात्मक शिक्षा" अथवा "शिक्षा की संवादात्मक अवधारणा" 76

4.3.2 "बैंकीय शिक्षा" बनाम "समस्या-उठाऊ शिक्षा" ("संवादात्मक शिक्षा").....82
4.3.3 "यथार्थ वास्तव में एक प्रक्रिया है, जो निरंतर बदलती रहती है"।.....83
4.3.4 "पारस्परिक मानुषीकरण".....84
4.3.5 "शिक्षित मनुष्य अनुकूलित मनुष्य होता है"।.....86
4.3.6 शिक्षक की सच्ची सुरक्षा.....88
4.3.7 "शिक्षा 'आचरण'(व्यवहार) में निरंतर पुनर्निर्मित होती है"। 90
4.4 पाओलो फ्रेरे के 'शिक्षा सम्बन्धी विचारों' के अन्तर्गत शैक्षिक उद्देश्य.....91
4.5 पाओलो फ्रेरे के 'शिक्षा सम्बन्धी विचारों' में निहित शैक्षिक पद्धति.....93
4.5.1 "विवेकीकरण".....94
4.5.2 "स्वतंत्रता का भय".....96
4.5.3 "मानुषीकरण" एवं "अमानुषीकरण".....98
4.5.4 "स्वतंत्रता उपहार में नहीं मिलती, संघर्ष में विजयी होने पर मिलती है"।.....101
4.5.5 "उत्पीड़ितों को अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष शुरू करने में समर्थ होने के लिए यथार्थवादी होना पड़ेगा"।.....104
4.5.6 "प्रकार्यात्मक रूप से उत्पीड़न पालतू बनाने का काम करता है"।.....106
4.5.7 "शिक्षा की बैंकीय अवधारणा" अथवा "बैंकीय शिक्षा"..108
4.5.8 "शिक्षा वर्णन के रोग से पीड़ित है"।.....118
4.5.9 "दूसरों को परम अज्ञानी बताना उत्पीड़िन की विचारधारा की विशेषता है"।.....120
4.5.10 "उत्पीड़ितों को स्वस्थ समाज की विकृति माना जाता है"।.....122
4.5.11 "संकीर्णतावाद" और "आमूल परिवर्तनवाद".....126
4.5.12 "मिथ्या उदारता" और "सच्ची उदारता".....130

4.5.13 "उत्पीड़ितों की मुक्ति उनके द्वारा किए गए 'आचरण' से होगी"। 133
4.5.14 "स्वयं-उत्पीड़क" अथवा "उप-उत्पीड़क" 134
4.5.15 "उत्पीड़ित का व्यवहार एक 'निर्देशित व्यवहार' होता है"। 136
4.6 समकालीन भारतीय 'शैक्षिक-सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक' परिस्थितियाँ और पाओलो फ्रेरे का शैक्षिक चिंतन 140
4.6.1 भाषाई जटिलता और शिक्षा 143
4.6.2 'सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक' जटिलता और शिक्षा .. 147
4.6.3 शिक्षकों की स्थिति की जटिलता और शिक्षा 166
4.6.4 गरीबी सम्बन्धी जटिलता व शिक्षा 168
4.6.5 शिक्षक-शिक्षा की जटिलता और शिक्षा 170

अध्याय 5 सार, प्राप्तियाँ, निष्कर्ष, व निहितार्थ 185
5.1 सारबद्धतागत परिप्रेक्ष्य 186
5.2 अध्ययन आवश्यकता 187
5.3 समस्या कथन 188
5.4 शब्दावली परिभाषा 188
5.4.1 भारतीय परिस्थितियाँ 188
5.4.2 शैक्षिक विचार 188
5.5 शोध प्रश्न 188
5.6 शोध उद्देश्य 189
5.7 परिसीमन 190
5.8 शोध पद्धतिशास्त्र 191
5.8.1 अध्ययन का काल-खण्ड 191
5.8.2 शोध अभिकल्प में प्रयुक्त विधि 191
5.8.3 प्रतिचयन 191
5.8.4 उपकरण का विवरण 192
5.8.5 आँकड़ों के संग्रहण या एकत्रीकरण की प्रक्रिया 193

5.8.6 विश्लेषण हेतु निर्धारित शोध मापदण्ड.....194
5.8.7 आँकड़ों के विश्लेषण में प्रयुक्त 'तकनीक या उपागम' 195
5.9 शोध प्राप्तियाँ.....195
5.9.1 पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक विचारों पर तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव.....195
5.9.2 पाओलो फ्रेरे के 'शिक्षा सम्बन्धी विचारों' के अन्तर्गत शैक्षिक उद्देश्य.....197
5.9.3 पाओलो फ्रेरे के 'शिक्षा सम्बन्धी विचारों' में निहित शैक्षिक पद्धति 198
5.9.4 समकालीन भारतीय 'शैक्षिक-सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक' परिस्थितियाँ व पाओलो फ्रेरे का शैक्षिक चिंतन 199
5.10 शोध निष्कर्ष 215
5.11 शोध से सम्बद्ध शैक्षिक निहितार्थ 218
5.12 भविष्य में अनुसंधान से जुड़े अन्य संबंधित क्षेत्र 220
5.13 स्वमूल्यांकन.....220

संदर्भ ग्रंथ-सूची 223

परिशिष्ट.....231

अध्याय 1
भूमिका

अध्याय 1
भूमिका

1.1 सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य

> "शिक्षा में प्रगतिशील परिवर्तन लाने के इच्छुक शिक्षा सुधारक इस तरह का प्रभाव छोड़ते हैं जैसे कि शिक्षा किसी सामाजिक शून्य में विद्यमान कोई वस्तु हो"।
>
> - मूनिस रज़ा[1]

प्रायः, शिक्षाविद् 'शिक्षा व सामाज' के बीच गहरा संबंध पाते हैं। उनके अनुसार शिक्षा को 'सामाजिक रूपान्तरण' का साधन होना चाहिए। लेकिन, शिक्षा-संरचना अनेक समस्याओं से आबद्ध है। शिक्षा का बहुसंख्यक वर्ग से न जुड़ पाना, 'शिक्षा का सांप्रदायीकरण', तथाकथित 'शिक्षित वर्ग का समाज से कटना', 'बौद्धिक व शारीरिक श्रम के बीच का बढ़ता फ़ासला', इत्यादि समस्याएँ आज हमारी शिक्षा-संरचना को रूढ़ बना रही हैं।

इन सभी के मूल में एक ही बात है कि हमारी शिक्षा 'सामाज रूपान्तरण' का साधन नहीं बन पाई है। अन्य शब्दों में, यह समाज से ठीक प्रकार से जुड़ नहीं पाई है। ब्राज़ीली चिंतक पाओलो फ्रेरे शिक्षा की इस प्रक्रिया को 'शोषक व शोषित' के मध्य आपसी संबंधों के रूप में देखते हुए मानते हैं कि यह शोषकों में "आत्मलीनता" का प्रसार कर रही है तो शोषितों में "आत्महीनता" का। इसी लिए शिक्षा में सही प्रतिनिधित्व को लक्षित करने हेतु समय-समय पर बात उठती रही है। परन्तु, वर्तमान शिक्षा का ढाँचा पिरामिडिय आकार का है, जिसमें छँटनी प्रक्रिया ऐसी है कि एक बड़ा वर्ग शिक्षा से अछूता ही रह जाता है। दूसरी ओर, जो वर्ग शिक्षा व्यवस्था में समंजित है, वह पाठ्यचर्या में निहित "संकीर्णता" के कारण समाज से कटकर शिक्षित होता है। इससे समाज

[1] रज़ा 1996: 19

स्तरीकृत बनता है। यह प्रवृत्ति आगे चलकर शिक्षा व्यवस्था को और अधिक रूढ़ बना देती है; और व्यक्तियों के बीच 'असंवाद' की संस्कृति' पैदा करती है। अतः, आवश्यकता है – "ज्ञान को ऐसी प्रणाली के रूप में देखने की, जिसमें एक व्यक्ति के अनुभव को दूसरे व्यक्ति के अनुभव को समृद्ध करने तथा दिशा प्रदान करने के लिए उपलब्ध कराया जा सके"।[2] ज्ञान की यही अवधारणात्मक बुनियाद लोकतांत्रिक परिवेश से जुड़ी हुई है। डीवी मानते हैं कि किसी भी शैक्षिक नियोजन में ज्ञान को समकालीन "सामुदायिक जीवन की आवश्यकताओं से जुड़ा होना चाहिए; उसमें ऐसी विषयवस्तु का चयन इस मंतव्य से हो कि जो समान जीवन हमारा है, उसमें सुधार हो, ताकि हमारा भविष्य हमारे अतीत से अच्छा हो"।[3] सामूहिक लोकतंत्र के महत्त्व को समझाते हुए 'शिक्षा व लोकतंत्र' पुस्तक की प्रस्तावना में कुमार कहते हैं कि "लोकतंत्र डीवी के लिए कोई शासन पद्धति नहीं है, वह एक ऐसी सामाजिक जीवन शैली है, जो मनुष्यों को एक-दूसरे के करीब जाने और परस्पर सहकार के अधिकतम अवसर दे सकती है"।[4] परस्पर सहकार से ही मिलकर सीखना संभव हो सकता है; और सीखने में यथार्थ सत्य की प्राप्ति बहुत महत्त्वपूर्ण होती है, जिसकी "पकड़ किसी व्यवहारिक समस्या का समाधान ढूँढने या निर्णय लेने की ज़रूरत महसूस होने के दौरान ही बनती है, इसलिए सामूहिक जीवन में हर चीज़ की खुली जाँच की स्वतंत्रता और ज़िम्मेदारी एक बड़ा सामाजिक मूल्य बन जाती है"।[5]

गहराई से देखने पर पता चलता है कि यह सब 'संवाद प्रक्रिया' द्वारा ही संभव है, जो पाओलो फ्रेरे के अनुसार 'शिक्षायी अथवा सामाजिक चेतना' की एक प्रमुख पद्धति है। वह अपनी पुस्तक "उत्पीड़ितों के शिक्षाशास्त्र" में कहते हैं कि "संवादात्मक कर्म की विशेषता है – सहयोग; और सहयोग

[2] डीवी 1998: 328-329

[3] वही: 185

[4] वही: vi

[5] वही

संप्रेषण से ही संभव है। 'संवाद' एक अत्यंत आवश्यक संप्रेषण है। अतः, वह किसी भी प्रकार के सहयोग का आधार है"।[6] यह तभी संभव है, जब अनुभवों को दूसरों के नज़रिए से देखा जाए। ऐसा करने पर 'सामाजिक प्रक्रियाओं' में सभी की भागीदारिता सुनिश्चित हो सकेगी। भागीदारिता के लिए आवश्यक है - अनुभवों का लगातार नवीनीकरण होते रहना, अर्थात् जिन ढाँचों व प्रक्रियाओं का उपयोग कर अनुभवों को संप्रेषित करना है, उन्हें विशेष परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तित किया जाना चाहिए, अन्यथा 'संवाद प्रक्रिया' संभव नहीं हो सकेगी।

अनुभवों की इस परिवर्तनशील बुनावट को अपनाने पर ज्ञान की जो भी अवधारणात्मक समझ पैदा होगी वह निश्चित रूप से समाजिकता से आबद्ध होगी। वाइगॉत्स्की के अनुसार तो ज्ञान संरचना में सांस्कृतिक माध्यमों के अंतर्गत ग्राह्य होता है। इसके लिए बड़ों के निर्देशन व अनुकरण की भी आवश्यकता पड़ सकती है, अर्थात्त ज्ञान-निर्माण एकाकी नहीं है। अतः, किसी व्यक्ति अथवा बच्चे को समझने के लिए उसके संदर्भ के ज्ञान की जानकारी भी अनिवार्य है। तभी, "फ्रेरे ने भूख को एकाकी घटना न मानकर उसे समाज में मौजूद शक्तियों की जीवित भूमिका के परिप्रेक्ष्य में देखा। उन्होंने देखा कि इन शक्तियों ने शासित इंसानों की चेतना को कुंद बना रखा है"।[7] उनकी यह कुंद चेतना उन्हें उत्पीड़न करने को प्रेरित करती है, जिसमें "संपूर्ण शिक्षा व्यवस्था प्रमुख माध्यम बनी हुई है। ऐसी अवस्था में उत्पीड़ित मानवों में 'विवेचनात्मक चेतना' जगाना नामुमकिन है, जब तक कि शिक्षा का नया ढाँचा नहीं गढ़ लिया जाता"।[8]

शिक्षा का यह ढाँचा भी व्यक्तियों को संवेदनशील बनाए बगैर संभव नहीं है। कृष्णमूर्ति के अनुसार "यदि, आप जो कुछ आपके चारों ओर हो रहा है, उसके प्रति लापरवाह हैं, उसके प्रति निरपेक्ष हैं, तो आप संवेदनशील नहीं हो

[6] फ्रेरे 1997क: 121

[7] जोशी 1996: 118

[8] वही

सकते"।[9] फ्रेरे में हम इसी 'संवेदनशीलता' अथवा 'रिश्तों के मानवीयकरण' को देख सकते हैं। उनके अनुसार - "व्यवहार से अलग कोई ज्ञान नहीं होता"।[10] जोशी फ्रेरे की संवेदनात्मक सोच के बारे में बताते हुए कहते हैं कि "फ्रेरे चाहते हैं कि जहाँ शिक्षा उत्पीड़ित मानव की सदियों पुरानी जकड़न को तोड़े वहीं उसकी 'मुक्ति-प्रक्रिया' का भी 'मानवीयकरण' करे। इंसानी 'रिश्तों का मानवीयकरण' तभी संभव है जब मधुर समाज हो"।[11] असल में, ऐसा सामाजिक वातावरण ही 'प्रेम, सहभागिता, व ज़िम्मेदारी' को उत्पन्न कर सकता है। गाँधी जी भी यह मानते रहे हैं कि शिक्षा की मुख्य भूमिका है – "विश्व में प्रेम का परिवेश बनाना, जिसके लिए आज समस्त मानवता भूखी है"।[12] इस प्रेमपूर्ण व शांतिमय वातावरण अथवा समाज को गांधी जी अपनी 'सर्वोदय की अवधारणा' में पूरा होते हुए देखते हैं। 'सर्वोदय' का तात्पर्य है - सबका उदय और सबके द्वारा उदय। अपनी आत्मकथा 'सत्य के प्रयोग' में गांधी जी 'सर्वोदय' के दर्शन को निम्न तरीके से स्पष्ट करते हैं -

- "सबकी भलाई में हमारी भलाई निहित है।
- वकील और नाई दोनों के काम की कीमत एक-सी होनी चाहिए, क्योंकि आजीविका का अधिकार सबको एक समान है।
- सादा मेहनत-मजदूरी का, किसान का जीवन ही सच्चा जीवन है"।[13]

असल में, गांधी जी भारत के लोकमानस में कहीं गहरे घर कर गई 'छुआ-छूत', 'अस्पृश्यता', 'बौद्धिक श्रम की शारीरिक श्रम पर प्रधानता', 'शिक्षा व उत्पादकता के बीच अलगाव', इत्यादि समस्याओं से अच्छी तरह परिचित थे। यह सत्य है कि "'बुनियादी शिक्षा' समाज की परिस्थितियों के साथ सीधा

---

[9] कृष्णमूर्ति 1998: 14

[10] बेल व अन्य 2003: 74

[11] जोशी, वही: 120-121

[12] वही: 120

[13] गांधी 2002: 260

'संवाद' स्थापित करने की शिक्षा है; 'स्वावलंबन' की शिक्षा है"।[14] 'संवाद' से जुड़ने की यही चाह पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक विचारों का सार है। उनकी नज़र में 'संवाद' ही वह पद्धति है, जिसके ज़रिए उत्पीड़ित व उत्पीड़क का "मानुषीकरण" अथवा 'मानवीयकरण' होता है।

फ्रेरे के अनुसार "साक्षरता का कोई अर्थ तभी है, जब निरक्षर व्यक्ति दुनिया में अपनी स्थिति, अपने काम और इस दुनिया में बदलाव लाने की अपनी क्षमता को लेकर सोचने लगे। यही चेतना है। उन्हें पता चले कि दुनिया उनकी है"।[15] फ्रेरे के अनुसार शासित तबका ऐसी चेतना के प्रसार के मामले में बाधा है; "निरंकुश राज्य और सम्पन्न लोग नहीं चाहते कि किसान पढ़ने की प्रक्रिया में उठ खड़े हों। वस्तुत:, शिक्षा के आदर्श के लिए दलितों, किसानों, व मजदूरों को साक्षर व शिक्षित करना आवश्यक है। 'मानववाद' का भी यही संदेश है"।[16]

यहाँ यह प्रश्न ध्यातव्य है कि दलितों, किसानों और मज़दूर वर्ग से सम्बन्धित व्यक्तियों को उनकी परिस्थितियों विशेष के संदर्भ में कैसे शिक्षित किया जाए?, अर्थात् पाठ्यक्रम का स्वरूप क्या हो? इसके लिये फ्रेरे का मानना था कि "शिक्षा, कला, नीतिशास्त्र, कामवासना, मानव अधिकार, खेल, सामाजिक वर्ग, भाषा, दार्शनिक विचारधारा जैसी ज्ञान की शाखाओं पर चर्चा होनी चाहिए, जिससे पाठ्यक्रम की पुनर्रचना ठीक हो सके। पाठ्यचर्या में अल्पसंख्यकों के मूल्यों को भी शामिल करना चाहिए"।[17] स्पष्टत:, फ्रेरे लोकतांत्रिक प्रक्रिया व आलोचनात्मक सोच के सतत-सहभागी स्वरूप को लक्षित करते हैं, न कि उसके 'आभासी स्वरूप' को। उनकी नज़र में पाठ्यक्रम निर्माण "संकीर्ण" मानसिकता का द्योतक है।

---

[14] किरण 2006: 234

[15] पाण्डेय 2000: 167

[16] वही: 166

[17] वही: 167

इसके अलावा, फ्रेरे की मुक्ति की चाह उत्पीड़ित व उत्पीड़क दोनों के लिए रही है -

- उत्पीड़ित के प्रति इस रूप में कि वह उत्पीड़न की गहरी जड़ों को काट कर "समीक्षायी चेतना" में प्रवेश कर सके।
- उत्पीड़क के प्रति इस रूप में कि वह जाने-अनजाने अपने द्वारा किए उत्पीड़न व उत्पीड़ित के प्रति संवेदनशील हो सके।

'शोषक व शोषित' की मुक्ति असल में उनके 'वैचारिक अथवा सांस्कृतिक एकीकरण' से ही संभव होगी। यह बड़े संदर्भ में 'सामाजिक एकीकरण' है। 'कोठारी आयोग' ने अनुच्छेद 1.34[18] में यह माना है कि –

"एक शक्तिशाली एकतापूर्ण देश के निर्माण के लिए 'राष्ट्रीय एकीकरण' का बड़ा महत्त्व है। उसमें कई बातें शामिल हैं; और उसके विभिन्न पहलू आपस में एक-दूसरे से संबंधित हैं। उसके लिए आवश्यकता है–

- राष्ट्र के भविष्य में आस्था की;
- लोगों के रहन-सहन के स्तर में निरन्तर वृद्धि और बेकारी तथा देश के उन विभिन्न भागों के विकास में असमानता में कमी की, क्योंकि ये सभी बातें 'राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक' अर्थों में 'अवसर की समानता' की भावना को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक हैं;
- नागरिकता के मूल्यों और दायित्वों की एक गंभीर भावना की तथा लोगों में संपूर्ण राष्ट्र के प्रति, न कि किसी वर्ग के प्रति, बढ़ते हुए निष्ठापूर्ण तादात्म्य की;
- सरकारी सेनाओं की चारित्रिक दृढ़ता पर आधारित अच्छे और निष्पक्ष प्रशासन तथा केवल कानून की दृष्टि से ही नहीं, किन्तु समान व्यवहार आश्वासन की; और राष्ट्र के विभिन्न वर्गों की संस्कृति, परंपराओं, तथा जीवन-प्रकार के लिए आपसी सद्भावना और सम्मान की"।

[18] भारत सरकार 1968: 11

इसी प्रकार शिक्षा के ज़रिए 'सांस्कृतिक एकीकरण' को लेकर 'आचार्य राममूर्ति समिति' ने अग्रलिखित अनुशंसायें की हैं[19] -

1. "शिक्षा की सांस्कृतिक विषयवस्तु के अंतर्गत न केवल सांस्कृतिक धरोहर को शामिल करना चाहिए, वरन् प्रतिबिंबित करने वाली सांस्कृतिक परंपराओं को भी उसमें शामिल करना चाहिए; खासकर वे जो मौखिक एवं लोक परंपराओं की प्रतीक हैं।
2. छात्र समुदाय को शिक्षा की विषयवस्तु के माध्यम से देश की सांस्कृतिक परंपराओं का परिचय करवाया जाय; तथा उनमें 'समीक्षात्मक विश्लेषण' द्वारा स्वीकार करने की क्षमता विकसित की जाय"।

इन सिफ़ारिशों से साफ़ है कि शिक्षा ऐसी हो, जो अपने आसपास के जीवन अथवा माहौल से इस प्रकार जुड़ी हो कि सोचने वाला 'सक्रिय भूमिका' में रहे। यह सक्रिय भूमिका अपने अधिकारों व ज़िम्मेदारियों, दोनों के प्रति सजग होकर चलने पर बनती है। इसलिए, 'कोठारी आयोग' 'पड़ोसी स्कूल' की अवधारणा को सामने रखता था, जो 'सामान्य पाठशाला व्यवस्था' का ही एक हिस्सा थी। आयोग का यह स्पष्ट मानना था कि गरीब और आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए वर्ग के स्कूल तथा धनिक और सम्पन्न वर्गों के स्कूलों के बीच इस समय पार्थक्य की जो स्थिति दिख रही है, उसे हटाने या कम करने के लिए 'पड़ोसी पाठशाला योजना' को अपनाना चाहिए। इसीलिए आयोग ने कहा कि "शैक्षिक ढाँचे के सम्बन्ध में आयोग के समक्ष कई एक प्रस्ताव रखे गए। अधिकांशत:, ये देश के सभी भागों के लिए एक-समान स्कूली तथा कालेजी कक्षाओं के स्वरूप का अनुमोदन करते थे"।[20] असल में, आयोग 'पड़ोसी स्कूल' का अनुमोदन कर शिक्षा के ज़रिए 'राष्ट्रीय विकास' की ओर अग्रसर होना चाहता था। झा इस उद्देश्य को 'समावेशी शिक्षा' में देखते हैं। वे बच्चों की अलग-अलग योग्यताओं को लेकर मानते हैं कि "स्कूलों के अंदर एक

[19] भारत सरकार 1990: 250

[20] भारत सरकार 1968: 32

बार ये दीवारें टूट जाएँ, फिर तो स्कूल अपनी हदों से बाहर निकल आएंगे, अपने अलगाव को खत्म करेंगे और समुदाय की तरफ़ बढ़ेंगे"।[21] परन्तु, असल अड़चन यह है कि युग विशेष में सभी बच्चे स्कूल से कैसे जुड़ें? इसका प्रमुख कारण है - शोषित व्यक्ति का घेरेबन्द परिवेश में घुटन-भरा जीवन जीना। ऐसे में उनके लिए स्कूलों के अन्दर बनाई गई दीवारें तोड़ना नितान्त मुश्किल है।

दरअसल, शोषित वर्ग के ऊपर एक ऐसी जीवन-दृष्टि से जुड़ने का दबाब बना रहा है, जिससे वे शोषण सहने को विवश होते हैं। इसे पाओलो फ्रेरे "खामोशी की संस्कृति" कहते हैं। पाओलो फ्रेरे का चिंतन इस "खामोशी की संस्कृति" से बाहर निकालने को लक्षित है। यह "खामोशी की संस्कृति" स्थितियों विशेष का जैसे-का-तैसा होने का पर्याय है। इसके कारण भारत में घुटन-भरी छाया से शिक्षा जगत पीड़ित है। इसमें परिस्थितियों विशेष से सम्बद्ध शक्तियों का अपना एक अलग ताना-बाना है। समाज की परिस्थितियाँ विशेष तथा समाज की आवश्यकताएँ, शिक्षा प्रक्रिया को लगातार प्रभावित करती रहती हैं। वस्तुत:, यही शिक्षा का समग्र आधार है।

इस सामाजिक आधार में अलग-अलग उत्पीड़न के रूपों को समझकर ही पाओलो फ्रेरे ने समाज में "दखलअंदाज़ी की संस्कृति" को अपनाने पर बल दिया था। इससे शोषकों द्वारा अपनाई गई "आक्रमण की संस्कृति" कमज़ोर पड़ती है। परन्तु, वर्तमान शैक्षिक जगत में "दखलअंदाजी की संस्कृति" अभी ठीक से पनपी नहीं है। आज भी विद्यार्थी, शिक्षकों से धैर्य के साथ ज्ञान-वस्तु ले, रटंत कार्य करते हैं। शिक्षक सारा साल इस प्रकार पढ़ाते हैं, जैसे कि वह विद्यार्थियों के दिमाग रूपी बैंकों में पैसा जमा कर रहे हों; और परीक्षा में विद्यार्थियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वह सूद (ब्याज) समेत मूल वापस कर देंगे अथवा उगल देंगे। पाठ्यचर्या का ढाँचा इतना "संकीर्ण" है कि उसमें

[21] झा 2003: 21

'सृजनशीलता' के लिए बहुत कम अवसर बचता है। पाओलो फ़्रेरे इसे "बैंकीय शिक्षा" कहते हैं। उनके अनुसार[22] इसमें -

- "शिक्षक पढ़ाता है; और छात्र पढ़ाए जाते हैं।
- शिक्षक जानता है; और छात्र नहीं।
- शिक्षक सोचता है; और छात्रों को लेकर सोचा जाता है।
- शिक्षक बोलता है; और छात्र सुनते हैं - चुपचाप।
- शिक्षक अनुशासन लागू करता है; और छात्र अनुशासित होते हैं।
- शिक्षक अपनी मर्ज़ी का मालिक है; वह अपनी मर्ज़ी चलाता है; और छात्रों को उसकी मर्ज़ी के मुताबिक चलना पड़ता है।
- शिक्षक कर्म करता है; और छात्र उसके कर्म के ज़रिए सक्रिय होने के भ्रम में रहते हैं।
- शिक्षक पाठ्यक्रम बनाता है; और छात्रों को (जिनसे पाठ्यक्रम बनाते समय कोई सलाह नहीं ली जाती) वही पढ़ना पड़ता है।
- शिक्षक अपनी पेशेवरता को अपने ज्ञान से जुड़ा अधिकार समझकर उससे विद्यार्थियों की स्वतंत्रता का हनन करता है।
- शिक्षक अधिगम की प्रक्रिया का कर्त्ता होता है; और छात्र महज़ अधिगम की वस्तुएँ"।

"बैंकीय शिक्षा" की विशेषताओं का भारतीय शिक्षा जगत में होना ध्यातव्य है। यह इसका सूचक है कि यहाँ बच्चे ज्ञान के बोझ से त्रस्त हैं। ज्ञान के इस भार को हटाने हेतु 'यशपाल समिति' ने कई लक्ष्य बनाए थे। समिति ने कहा –

"स्कूल बैग का भार तो समस्या का एक पहलू है, दूसरा पहलू बच्चों की रोज़ की दिनचर्या से जुड़ा है। बपचन के शुरू के दिनों से ही बच्चे; विशेषकर

[22] फ़्रेरे, वही: 34-35

मध्यम वर्गों के बच्चे गृहकार्य ('होम वर्क'), 'ट्यूशन', इत्यादि लेने को विवश हो जाते हैं। अवकाश तो बालकों; विशेषकर शहरी बालकों की दिनचर्या में दुर्लभ बन गया है। बच्चों को रोज़ की दिनचर्या में अपनी सहज प्रवृत्ति या क्षमताओं को दिखाने का कोई अवसर नहीं मिलता। उन्हें खेलने, साधारण आनन्द लेने, सोचने-समझने और विश्व को जानने का समय नहीं मिलता"।[23]

इसी प्रकार, होल्ट अपनी पुस्तक में प्रचलित शिक्षा व्यवस्था की खामियाँ बताते हैं कि "हम कई-कई उपायों से बच्चों के इस विश्वास को डिगाते हैं कि हमारी आसपास की दुनिया में कोई अर्थ है। हम बच्चों को उनके सामान्य ज्ञान व वास्तविक दुनिया से भी काटते हैं"।[24] दुनिया से कटकर यही बच्चे दूसरों द्वारा गढ़े हुये शब्दों व प्रतीकों से खेलने लगते हैं; और बिना वास्तविक उदाहरण दिये हर घटना का 'सरलीकरण' करने लगते हैं। तभी ये बच्चे ऐसे लोगों में बदलने लगते हैं, "जो विश्व के मसलों की चर्चा के दौरान 'बृहद मृत्यु' या 'बृहद विनाश' जैसे शब्द गढ़कर उनका प्रयोग तो करें, पर इन शब्दों से संकेतित खून-खराबे व पीड़ा की कल्पना तक न कर पाएँ"।[25] असल में, "हम बच्चों के साथ ईमानदारी नहीं बरतते। हम उन्हें भी हमारे प्रति ईमानदार होने से रोकते हैं। बच्चे शुरू से ही यह सीख लेते हैं कि स्कूल और शिक्षकों को नापसंद करने की मनाही है"।[26]

फ्रेरे ऐसा मानते थे कि विद्यार्थी की 'रचनात्मक शक्ति' को कम-से-कम करने या उसे समाप्त करने तथा उनके 'भोलेपन या सहज विश्वसनीयता' को बढ़ाने की जो क्षमता "बैंकिंग शिक्षा" में है, उससे उत्पीड़कों के हितों की पूर्ति की जाती है। इन उत्पीड़कों को न तो इस बात की चिंता है कि यह दुनिया खुले रूप में सामने आए और न ही वे इसे बदली हुई देखना चाहते हैं।

---

[23] भारत सरकार 1993: 4

[24] होल्ट 2000: 91

[25] वही: 92

[26] होल्ट 2000: 99

यदि, हम पाओलो फ्रेरे की उपर्युक्त सोच को भारतीय संदर्भ में देखें, तो पाते हैं कि भारतीय समाज में 'औपनिवेशिक शिक्षा-प्रणाली' अपेक्षाकृत अधिक स्थायी है। भारतीय शासक वर्ग ने जानबूझकर या अनजाने में प्राचीन शासकों की पद्धतियाँ अक्षरशः अपना ली हैं। भारतीय शिक्षण संस्थान विशिष्ट वर्ग से बच्चों को समाज में प्रतिष्ठित पद प्राप्ति के लिए शिक्षित करते हैं, लेकिन जहाँ सामान्य या निम्नवर्गीय बच्चे पढ़ते हैं, उन शिक्षण संस्थाओं के साथ दोहरा चरित्र अपनाया जाता है। इन संस्थाओं का कार्य-स्तर अकसर घटिया होता है। यह दोहरा चरित्र उत्पीड़ितों और उत्पीड़कों के बीच की खाई को और अधिक गहरा करता जाता है।

स्वतंत्रता पश्चात् भारतीय चिंतकों ने 'तीसरी दुनिया' में शिक्षा के समस्त आधार में 'आमूल परिवर्तन' किए जाने की सिफारिशें कीं। परन्तु, शिक्षा-संरचना में सुधार के लिए जो भी प्रगतिशील और लोकोन्मुखी नवाचार के प्रस्ताव या उसके लिए प्रयत्न किए गए, निहित स्वार्थों ने, जिनकी जड़ें बहुत गहरी हैं, उन्हें असफल बना दिया। शिक्षा शून्य में संचालित नहीं होती। यह समाज की 'संस्कृति' और समाज पर पड़ने वाले बाह्य प्रभावों से अनुप्रेरित होती है। यदि, 'तीसरी दुनिया' की शिक्षा की बात की जाए, तो ध्यातव्य है कि पाओलो फ्रेरे के दृष्टिपटल पर 'तीसरी दुनिया' अथवा विकासशील देशों की 'सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक' स्थितियाँ पूर्णतः अंकित थीं।

1.2 अध्ययन की आवश्यकता

पाओलो फ्रेरे के विचारों को सामान्यतः 'तीसरी दुनिया' अथवा विकासशील देशों के संदर्भ में देखा जाता है। उनके विचारों के आलोक में 'तीसरी दुनिया' में भूख, गरीबी, कुपोषण, शोषण, इत्यादि के इर्द-गिर्द फैली सामाजिक बुनावट को समझने का प्रयास किया जाता रहा है। भारत को भी सामान्यतः 'तृतीय विश्व' की श्रेणी में शामिल माना जाता रहा है। भले ही जोशी की दृष्टि में "'तीसरे विश्व' की श्रेणी में वे देश शामिल हैं, जहाँ अभी तक व्यवस्थाओं विशेष में आधारभूत परिवर्तन नहीं लाया जा सका; और उत्पादन-संबंधों के स्वरूप निर्धारण का कार्य उत्पादक शक्तियों के हाथों में नहीं

पहुँचा"[27]; और वे भारत को 'तृतीय विश्व' की संकल्पना से 'प्रथम विश्व' की संकल्पना की ओर बढ़ता हुआ देखते हों, परन्तु भारत की स्थिति अभी भी काफ़ी हद तक 'तीसरी दुनियां' के देशों से इतर नहीं है। ऐसा इसलिए, क्योंकि काउटिन्हो के अनुसार "'तीसरी दुनिया' एक ऐसा संसार है, जो दूसरों के द्वारा खोजा गया, जिस पर आक्रमण किया गया, जिसे अधिनस्त बनाया गया, शासित किया गया; और तब इसे शिक्षित किया गया; और इसकी 'मदद' की गई"[28], अर्थात् इन देशों की 'सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक' व्यवस्थाओं में परिवर्तन किया गया, ताकि इन्हें तथाकथित रूप से आधुनिक बनाया जा सके। भारत की परिस्थितियाँ 'तीसरी दुनिया' की इस अवधारणा से विमुख नहीं है। असल में, भारतीय समाज में वे तत्त्व विद्यमान हैं, जो इसे 'तीसरी दुनिया' का देश मानने के लिए पर्याप्त हैं।

भारत की शिक्षा-संरचना को गहराई से देखने पर यह बात साफ़ तौर पर उभरकर सामने आती है कि भारत में समय-समय पर 'सामाजिक कल्याण' के संवैधानिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए संवैधानिक संशोधनों द्वारा कानूनी रास्ता अपनाया जाता रहा है। इसके मूल में मुख्यतः यही बात प्रतिबिम्बित होती है कि -

- शिक्षा की पहुँच सभी वंचितों व वर्गों तक हो सके।
- शिक्षा में 'सिद्धान्त व व्यवहारिकता का संतुलन' बना रहे।
- शिक्षा समाज से इतर केवल एकांगी प्रक्रिया न बनकर रह जाए।

भारत में शिक्षा को सर्वव्यापक बनाने के लिए किए गए विभिन्न प्रयास 'उदारीकरण', 'वैश्वीकरण', 'निजीकरण', इत्यादि वैश्विक प्रघटनाओं से अछूते नहीं रहे हैं। शिक्षा के क्षेत्र में 'वैश्वीकरण', 'उदारीकरण', व 'निजीकरण' से जहाँ भारत में एक ओर नए क्षेत्रों का सृजन हुआ है, तो वहीं दूसरी ओर 'विशिष्टीकरण' द्वारा शिक्षा से वंचित तबका और अधिक वंचित भी हुआ है।

---

[27] जोशी, वही: 135

[28] फ्रेरे, वही: xii-xiii

भारत में शिक्षा-संरचना 'राजनीतिक, आर्थिक, व सामाजिक' व्यवस्था के इर्द-गिर्द आकार ग्रहण करती रही है। अन्य शब्दों में, 'राजनीतिक, आर्थिक, व सामाजिक' प्रक्रियाएँ शिक्षा-संरचना में व्यापक फेरबदल का कारण रही हैं। भारत में भले ही शिक्षा व आर्थिक क्षेत्र में आरक्षण के ज़रिए 'सामाजिक स्तरीकरण' को दूर करने का प्रयास किया जाता रहा हो, परन्तु यह अभी भी वंचितों की सामाजिक स्थिति में सुधार का एक प्रबल औजार नहीं बन पाया है। उपर्युक्त भारतीय स्थितियों में सुधार के लिए शिक्षा की अहम् भूमिका हो सकती है। परन्तु, यह स्पष्टतः देखा गया है कि राजनीतिक संरचना अथवा राज्य-व्यवस्था राज्य के नागरिकों के कल्याण के लिए नीति बनाने की बजाय राज्य-संरचना को रूढ़ बनाने वाली व्यवस्था के पोषण का ज़रिया मात्र बनती जा रही है। गठबंधन सरकारों का चलन इस स्थिति में और वृद्धि करता प्रतीत होता है। फलस्वरूप, शिक्षा-संरचना और उसमें भी विशेषतः पाठ्यपुस्तकें विभिन्न राजनीतिक दलों की विचारधाराओं का प्रपत्र बनकर रह जाती हैं। इसके पीछे राजनीतिज्ञों द्वारा 'लाभ की स्थिति' छूट न जाने का डर कार्य करता है, जिसे फ्रेरे "स्वतंत्रता का भय" अवधारणा के अन्तर्गत रखते हैं।

दीर्घकाल से भारतीय 'औपचारिकेतर शिक्षा-तंत्र' प्रस्थापित करने हेतु प्रयास अनेक अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के माध्यम से किए गए हैं। परन्तु, अब यह 'औपचारिकेतर शिक्षा-तंत्र', 'सुरक्षा वाल्व', 'आक्रोश प्रतिस्थापन' व 'सस्ता या मुफ़्त, तो घटिया' जैसी वैचारिकी में बदल रहे हैं। इसी कड़ी में 'एसएसए' शिक्षा की बजाय सिर्फ़ पढ़ना-लिखना आने पर केन्द्रित होकर रह गया है।

कालांतर से भारत की पहचान धर्म समन्वयक की रही है। फलस्वरूप, भारत में अनेक संप्रदाय, धर्म व संस्कृतियाँ फली-फूलीं। एक ग्राम बनते विश्व में भारत 'आधुनिकता', 'उपभोक्तावाद', 'नस्लवाद', 'अकर्मण्यता', 'असमानुभूति', इत्यादि अवधारणाओं से अछूता नहीं रहा है। भारत में 'क्षेत्रवाद', 'संप्रदायवाद', 'धार्मिक उथलापन', 'अलगाववाद', 'शहरीकरण', 'सांस्कृतिक विघटन', 'राजनीतिक अस्थिरता', 'वर्गीय औद्योगिकीकरण', इत्यादि समस्याएँ पहले से अधिक जटिल रूप में सामने

आई हैं। शिक्षा जगत में भी से समस्याएँ हैं। ऐसे में - समकालीन भारतीय परिवेश के परिप्रेक्ष्य में पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक विचारों अथवा चिंतन को उसी रूप में देखा जाए, जिस रूप में वे 'तृतीय विश्व' से जुड़े रहे हैं, अथवा नए संदर्भों में उन्हें जांचा-परखा जाए?

उपर्युक्त चर्चा के अंतर्गत समकालीन भारतीय परिवेश के संदर्भान्तर्गत शिक्षा जगत पर दृष्टि डालें, तो पाओलो फ्रेरे के समग्र शैक्षिक विचारों के गहन विश्लेषण की प्रासंगिकता प्रमाणिक है। अतः, आवश्यक है कि समकालीन भारतीय परिस्थितियों में पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक विचारों को विवेचित-विश्लेषित कर सम्यक निष्कर्षों को समझा जाए। प्रस्तुत शैक्षणिक शोध अध्ययन इसी कड़ी में किया गया एक प्रयास है।

1.3 समस्या कथन

'समकालीन भारतीय परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक विचारों का विश्लेषणात्मक अध्ययन'

1.4 अध्ययन का तर्काधार

1.4.1 भूतकाल के संदर्भ में तर्काधार

भूतकाल में पाओलो फ्रेरे को केवल ब्राज़ील की परिघटनाओं विशेष के संदर्भ में ही समझा गया। भारत की भूतकाल की परिघटनाएँ विशेष ब्राज़ील की भूतकाल की परिघटनाओं विशेष से ज़्यादा अलग नहीं रहीं। यहाँ भी परिस्थितियों विशेष से जुड़े शोषण के इर्द-गिर्द ही शिक्षा व्यवस्था की रचना हुई है। फ्रेरे के शिक्षा सम्बन्धी विचार भारत की शिक्षा सम्बन्धी परिस्थितियों से जुड़े भूतकाल को समझने में बेहतर दिशा प्रदान कर सकते हैं। फलस्वरूप, अनेक शैक्षिक समस्याओं को समग्र रूप से समझना संभव हो सकता है; और वर्तमान में इन समस्याओं के निदान की ओर बढ़ा जा सकता है।

1.4.2 वर्तमान के संदर्भ में तर्काधार

वर्तमान में भारत में अभी भी शिक्षा की पहुँच सभी तक सुनिश्चित नहीं हो पाई है। आज भी भारत 'औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली' से जूझ रहा है। पाओलो फ्रेरे के शिक्षा सम्बन्धी विचारों को 'तृतीय विश्व' की परिस्थितियों के संदर्भ में जाना-समझा जाता रहा है; और चूँकि, भारत की परिस्थितियाँ भी काफ़ी हद तक 'तृतीय विश्व' की परिस्थितियों के समान ही हैं, अत: पाओलो फ्रेरे के 'शिक्षा सम्बन्धी विचारों' से भारत की समकालीन परिस्थितियों की और अधिक बेहतर समझ प्राप्ति की ओर उन्नमुख हुआ जा सकता है। परिणामत:, शिक्षा को ठीक प्रकार से नियोजित कर सभी तक इसकी गुणात्मक पहुँच को सुनिश्चित करके ही भारत में 'समग्र विकास' का मनोरथ पूरा किया जा सकता है।

1.4.3 भविष्य के संदर्भ में तर्काधार

प्रस्तुत अध्ययन से प्राप्त परिणाम भविष्य में शिक्षकों, विद्यार्थियों, शिक्षाविदों, शिक्षा-नियोजकों, इत्यादि हेतु इस रूप में लाभदायक हो सकते हैं कि वे 'सतत-सहभागी' संघर्ष व विमर्श द्वारा ऐसी स्थितियाँ ला सकते हैं, जिससे शिक्षा-विलग वंचित तबके को आगे लाना संभव हो। इसके अतिरिक्त, शिक्षा प्रणाली को भविष्य की परिस्थितियों के अनुरूप और अधिक व्यवस्थित किया जा सकना संभव हो सकता है। चूंकि, भविष्य सदैव निर्माणाधीन अवस्था में ही रहता है, इसलिए प्रस्तुत अध्ययन की प्राप्तियों से शिक्षा जगत को सबलता मिल सकती है। वस्तुत:, शिक्षा सम्बन्धी संभावनाओं की बेहतर समझ से ही लोगों को शिक्षित करने के उद्देश्य वास्तविक रूप से पूरे हो सकते हैं।

1.5 शब्दावली परिभाषा

1.5.1 भारतीय परिस्थितियाँ

भारतीय परिस्थितियों का अभिप्राय भारत की 'राजनीतिक, आर्थिक, व सामाजिक' परिस्थितियों से है।

1.5.2 शैक्षिक विचार

शैक्षिक विचारों का अभिप्राय 'शिक्षा सम्बन्धी विचार' हैं।

1.6 शोध प्रश्न

1.6.1 तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों विशेष के अंतर्गत पाओलो फ्रेरे के विचार किस प्रकार निर्मित अथवा रचित हुए?

1.6.2 तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों के आलोक में पाओलो फ्रेरे के विचार किस प्रकार निर्मित अथवा रचित हुए?

1.6.3 तत्कालीन आर्थिक परिस्थितियों के आलोक में पाओलो फ्रेरे के विचार किस प्रकार निर्मित अथवा रचित हुए?

1.6.4 पाओलो फ्रेरे की शैक्षिक दृष्टि में शिक्षा के उद्देश्यों का क्या स्वरूप है?

1.6.5 पाओलो फ्रेरे की शैक्षिक दृष्टि में शिक्षा की पद्धति का क्या स्वरूप है?

1.6.6 भारत की समकालीन सामाजिक परिस्थितियों में शिक्षा का क्या स्वरूप है; और होगा?

1.6.7 भारत की समकालीन राजनीतिक परिस्थितियों में शिक्षा का क्या स्वरूप है; और होगा?

1.6.8 भारत की समकालीन आर्थिक परिस्थितियों में शिक्षा का क्या स्वरूप है; और होगा?

1.6.9 भारत की समकालीन परिस्थितियों के अंतर्गत शिक्षा के स्वरूप को पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक चिंतन से किस प्रकार बेहतर समझा जा सकता है?

1.7 शोध उद्देश्य

1.7.1 पाओलो फ्रेरे के 'शिक्षा सम्बन्धी विचारों' पर तत्कालीन परिस्थितियों विशेष के प्रभाव का विश्लेषण करना।

1.7.2 पाओलो फ्रेरे के 'शिक्षा सम्बन्धी विचारों' के अन्तर्गत शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण व विश्लेषण करना।

1.7.3 पाओलो फ्रेरे के 'शिक्षा सम्बन्धी विचारों' में निहित शैक्षिक पद्धति अथवा पद्धतियों की पहचान व विश्लेषण करना।

1.7.4 भारत में समकालीन सामाजिक परिस्थितियों और शिक्षा की अन्तर्क्रियात्मकता का विश्लेषण करना।

1.7.5 भारत में समकालीन राजनीतिक परिस्थितियों व शिक्षा के सम्बन्ध को विशेलषित करना।

1.7.6 भारत में समकालीन आर्थिक परिस्थितियों व शिक्षा की आबन्धकता का विश्लेषण करना।

1.7.7 समकालीन भारतीय परिस्थितियों विशेष के बरक्स पाओलो फ्रेरे के 'शिक्षा सम्बन्धी विचारों' को विश्लेषित करना।

1.8 परिसीमन

1.8.1 प्रस्तुत अनुसंधान कार्य में केवल ब्राज़ील के शिक्षाशास्त्री व दार्शनिक पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक विचारों का गहन विश्लेषण किया गया है।

1.8.2 प्रस्तुत अध्ययन में काल खण्ड की लोचशीलता को ध्यान में रखकर मुख्यत: पिछले 10-15 वर्ष की भारत की समकालीन परिस्थितियों विशेष का अध्ययन किया गया है।

1.8.3 प्रस्तुत अनुसंधान में पाओलो फ्रेरे की पुस्तक "उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र" को अध्ययन का मूल आधार बनाया गया है।

1.8.4 प्रस्तुत अध्ययन को 'शिक्षा के समाजशास्त्र' शाखा के अंतर्गत विवेचित-विश्लेषित किया गया है।

1.8.5 प्रस्तुत अध्ययन 'तुलनात्मक तकनीक' अथवा उपागम की बजाय 'गुणात्मक-विश्लेषणात्मक तकनीक' अथवा उपागम पर आधारित है।

1.8.6 प्रस्तुत अध्ययन में 'अर्धसंरचित साक्षात्कार अनुसूची' में 'विषयवस्तु वैधता' हेतु 30 शिक्षाविदों से परामर्श लिया गया है।

1.8.7 प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत समझ को बेहतर करने हेतु 15 शिक्षाविदों से प्रत्यक्षत: व 'दूरभाषिक व्यक्तिगत साक्षात्कार' लिया गया है।

अध्याय 2
साहित्य समीक्षा

अध्याय 2

साहित्य समीक्षा

2.1 समीक्षागत परिप्रेक्ष्य

मानव ज्ञान के पक्ष – 'एकीकरण', 'स्थानान्तरण', एवं 'नए तथ्यों का संकलन' की अनुसंधान में उपादेयता है। मनुष्य भूतकाल से सीखे व रचे संज्ञान पर नवीन निर्मिति करता है। मनुष्य के ज्ञान में अटूट क्रमिकता एवं प्रगतिशीलता होती है। उसका फर्ज़ है - वह भूतकाल से उत्पन्न सीख को संशोधकर अगली पीढ़ी को नवीन ज्ञान से परिचित कराये; और ज्ञान के अनंत क्षेत्र में अपना अंश परिलक्षित करे। इससे ज्ञान सम्यक होता है; और उसका नवीनीकरण संदर्भों से जुड़ पाता है। वस्तुतः, यह जुड़ाव कई जटिल सामाजिक समस्याओं के समाधान को संभव बनाता है।

सर्वेक्षण द्वारा बहुत से अनुसंधान-प्रतिवेदनों की अच्छाइयों एवं कमियों को जान लेने के बाद शोधकर्त्ता अपने शोधकार्य के लिए आधारभूमि तैयार कर सकता है। शोधकर्त्ता द्वारा पूर्वसंचित ज्ञान एवं पूर्व में संपन्न हुए अनुसंधानों के विश्लेषण की पृष्ठभूमियों में ही नए अनुसंधानों की समस्याएँ एवं आवश्यकताएँ जन्म लेती हैं। अन्य शब्दों में, प्रत्येक शोधकर्त्ता की आधारभूमि - ये पूर्वसंचित ज्ञान एवं पूर्वसंपादित अनुसंधान ही होते हैं, जो उसे नवीन शोध समस्याओं के विवेचन-विश्लेषण हेतु प्रेरित करते हैं; और खोजे गए तथ्यों और ज्ञान को तार्किकता से आबद्ध करते हैं।

ध्यातव्य है कि शोध साहित्य एकत्रित ज्ञान के रूप में मनुष्य के अनुभवों, विचारधाराओं, व सिद्धान्तों का संस्कृति सम्बन्धी एक दस्तावेज़ है, जो शोधकर्त्ता को उसके अनुसंधान के लिए एक आधारभूमि प्रदान करता है। तभी, शोध समस्या को लेकर चुनाव करने के पहले अनुसंधानकर्त्ता के लिए बहुमूल्य साहित्य विशेष का ज्ञान रखना व तथ्यों को प्राप्त कर समीक्षा द्वारा उन्हें परखना

अत्यंत आवश्यक है। ऐसा करके अनुसंधानकर्त्ता प्रस्तावित समस्या के विभिन्न पहलुओं के तंतुओं से जुड़ता है। उसे पता चलता है कि उसे किस दिशा में अग्रसर होना है; और अनुसंधान में किन बातों का विशेष ध्यान रखना है। सभी अनुसंधान विशेषज्ञ साहित्य समीक्षा को लेकर एकमत हैं कि यह अनुसंधान का प्रथम पद है। इस सम्बन्ध में बेस्ट व काह्न भी कहते हैं कि "शोध विषय से संबंधित लेखों व पुस्तकों को खोजने के लिए परिशिष्टों और लेख सारांशों को उपयोग में लाना चाहिए; पुस्कालयाध्यक्षों की सहायता से कुंजी शब्दों को कंप्यूटर के ज़रिए खोजकर संबंधित साहित्य तक पहुँचा जा सकता है"।[29] स्पष्टत:, अन्य प्राणियों से भिन्न मानव को अतीत से प्राप्त ज्ञान को प्रत्येक पीढ़ी के साथ नवीन समीक्षागत ज्ञान के रूप में सांझा करना चाहिए। वास्तव में, ज्ञान के विस्तृत भण्डार में मानव का निरन्तर योगदान करना प्रत्येक क्षेत्र में मानव द्वारा किए गए प्रयासों की सफलता को सम्भव बनाता है।

स्पष्टत:, विषय के सम्बन्ध में उपयुक्त आधारभूमि तैयार करने के लिए उसकी सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि एवं उससे जुड़े साहित्य को पढ़ना होगा। यह अनुसंधान विषय - 'समकालीन भारतीय परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक विचारों का विश्लेषणात्मक अध्ययन' 'शिक्षा के समाजशास्त्र' विषय के अंतर्गत आता है; और अनुसंधानकर्त्ता ने अनुसंधान के उद्देश्यों के अंतर्गत शिक्षा-संरचना पर 'फ़ोकस' कर भारतीय परिवेश विशेष को विश्लेषित-विवेचित किया है। अतः, यहाँ शोधकर्त्ता के लिए प्रस्तुत अनुसंधान से जुड़े शोधों, लेखों, पुस्तकों, इत्यादि का सर्वेक्षण अपेक्षित है। इसी तथ्य के मद्देनज़र शोधकर्त्ता ने शोध विषय की दिशा में चलने से पूर्व साहित्य विशेष तथा शोधकार्यों का सर्वेक्षण किया। यद्यपि, अनुसंधानकर्त्ता को विषय के ज्ञान से जुड़ी सामग्री विशेष अपेक्षित मात्रा में उपलब्ध नहीं हो पाई, तथापि जितनी भी पठनवस्तु प्राप्त हुई, उसमें यह प्रयास किया गया कि पठनवस्तु में समकालीन भारतीय परिस्थितियों विशेष व पाओलो फ्रेरे के दार्शनिक चिंतन का समन्वय अवश्य हो।

---

[29] बेस्ट एंड काहन 2003: 48

2.2 सम्बद्ध पूर्व शोधों, पुस्तकों एवं लेखों का विश्लेषण

2.2.1 शोध

2.2.1.1 रस्तोगी (2000) ने अपने शोध में अग्रवर्णित उद्देश्यों का अनुशीलन किया था -

1. आचार्य रजनीश की 'मीमांसात्मक अवधारणाओं' की व्याख्या।
2. आचार्य रजनीश द्वारा प्रतिपादित 'मानव सम्बन्धी उपपत्तियों' का विशदीकरण एवं दार्शनिक विवेचन।
3. आचार्य रजनीश द्वारा प्रतिपादित शिक्षा सम्बन्धी दार्शनिक अवधारणाओं की व्याख्या।
4. आचार्य रजनीश द्वारा प्रतिपादित 'मानवनिष्ठ संकल्पनाओं' का सत्त्वविद्यात्मक परिप्रेक्ष्य एवं समीक्षा।

उपरोक्त उद्देश्यों की अभिपूर्ति हेतु शोधकर्त्री ने निम्नांकित निष्कर्ष निकाले-

1. रजनीश के अनुसार मनुष्य जाति जिस कुरुपता और अपंगता में फँसी है, उसके मूलभूत कारण शिक्षा में ही छिपे हैं। शिक्षा ने प्रकृति से मनुष्य को तोड़ दिया है। 'संस्कृति' उससे पैदा नहीं हो सकी है, उल्टे पैदा हुई है- विकृति। इस विकृति को ही प्रत्येक पीढ़ी नई पीढ़ियों पर थोपती है।
2. रजनीश के अनुसार चिंतन का केंद्र व्यक्ति है। शिक्षा का केंद्र धर्म है और धर्म है - मानव चेतना का विज्ञान।
3. शिक्षा की आवश्यकता है। शिक्षा का अर्थ है कि हम 'जीवन की कला' सोच सकें।
4. शिक्षा मनुष्य को चालाक बनाती है कि शिक्षित आदमी दूसरे लोगों को कैसे साधन बना सके। शिक्षा ऐसी हो, जो महत्वाकांक्षा रहित हो, प्रतिस्पर्धा रहित हो, और प्रेम केंद्रित हो।
5. मन के सम्बन्ध में शिक्षा देना बहुत ज़रूरी है।
6. वर्तमान शिक्षा प्रणाली में शारीरिक क्रियाकलापों, खेल, नृत्य आदि को पर्याप्त महत्व नहीं मिला है।

7. आज की स्त्री, पुरुषों के लिए गढ़ी गई शिक्षा प्राप्त कर अपने 'स्त्रैण गुणों' को खो रही है।
8. रजनीश के अनुसार जिस दिन शिक्षक विद्रोही होगा, उस दिन दुनिया में हर रोज़ नया समाज पैदा हो सकता है।
9. रजनीश का कहना है - बच्चों को निषेध सिखाओ और विधेय तक उन्हें स्वयँ पहुँचने दो।
10. प्रत्येक व्यक्ति अलग है, लेकिन हम एक-जैसी शिक्षा देते हैं। यह दुर्भाग्यपूर्ण है।
11. सृजनात्मक व्यक्ति कभी भी हिसंक नहीं हो सकता।
12. जो शिक्षा चल रही है, वह बिल्कुल ही अपर्याप्त, अधूरी और सतही है। यह न केवल अधूरी है, बल्कि नुकसानदेह भी है, क्योंकि प्रतिस्पर्धा पर आधारित है।
13. एक भी शिक्षित व्यक्ति ढूँढ पाना असंभव है, क्योंकि सम्पूर्ण शिक्षा ही कहीं नहीं है।

2.2.1.2 कुमार (1998) ने अपने अनुसंधान के अग्रलिखित उद्देश्य निर्धारित किए थे –

1. स्वतंत्रता पश्चात् भारतीय परिवेश विशेष का आकलन करना।
2. समाज व शिक्षा का राजनीतिक आबन्ध जानना।
3. विभिन्न राजनैतिक विचारधाराओं की दृष्टि से भारतीय शिक्षा का आकलन करना।
4. राजनैतिक दलों विशेष की शिक्षा नीतियों का अध्ययन करना।
5. यह जानना कि समकालीन राजनैतिक दलों की सरकारों ने बदलते अंतर्राष्ट्रीय 'राजनैतिक-आर्थिक' तंत्रानुरूप भारतीय शिक्षा में कौन-कौन सी नवीन सोच को अग्रसरता दी है।

इस शोध के निष्कर्ष –

1. भारत ने 300 मिलियन निरक्षर व्यक्तियों की बड़ी फ़ौज के साथ 21वीं शताब्दी में प्रवेश किया है। ये तथ्य एक तरफ़ा संकेत करते हैं कि राजनैतिक दलों ने शिक्षा को उच्च प्राथमिकता प्रदान नहीं की है।
2. प्राथमिक शिक्षा पर खर्च तुलनात्मक रूप से अन्य स्तरों से बहुत कम किया गया है। अधिकतर देशों की तुलना में भारत की हालत और भी दयनीय है।
3. विश्व बैंक प्रतिवेदन के अंतर्गत भारत के 3-5 करोड़ बच्चे अभी भी स्कूल नहीं जाते हैं। इनमें से अधिकतर गरीबी के कारण कम उम्र में ही कारखानों तथा खतरनाक उद्योगों में 'बाल-श्रमिक' का जीवन अपनाने को विवश हैं।
4. राजनीतिक दलों ने अपने घोषणा-पत्रों में बाल-हितों की पैरवी और पहरेदारी की कभी खुलकर चर्चा नहीं की।
5. दुनिया में अनाज का प्रमुख उत्पादन देश होने के बावजूद 5 साल से कम उम्र के कुपोषित बच्चे सर्वाधिक गिनती में भारत में ही हैं; और कुल विश्व में अपेक्षित न्यूनतम से कम वज़न के साथ पैदा होने वाले 19 करोड़ शिशुओं में से 7.2 करोड़ शिशु भारतीय हैं।
6. आज 50 वर्ष बाद कांग्रेस की नीतियाँ, उद्देश्य व पाठ्यक्रम संविधान आधारित समाजवादी ढाँचे का रुख नहीं ले सके। अन्य 'पार्टियों' को सही अवसर की तलाश है।

2.2.1.3 कुमार (2006) द्वारा किया गया शोध, मूलतः एक दस्तावेजी अध्ययन था, जिसके निम्नांकित उद्देश्य थे –

1. सैद्धान्तिक विकास-क्रम (राज्य तथा शिक्षा के अंतर्सम्बन्धों) का अध्ययन करना।
2. 86वें संविधान नियामन के अन्तर्गत 'शिक्षा हक' को लेकर स्थिति विशेष का अध्ययन-विवेचन करना।

3. 86वें संविधान नियामन के तहत प्रतिस्थापित 'शिक्षा के मौलिक हक' को लेकर अध्ययन करना।

4. 86वें संविधान नियामन के बाद गैर स्कूली बच्चों और उनके परिजनों की परिवर्तित दशाओं की समीक्षा करना।

शोध के निष्कर्ष –

1. संविधान के अनु. 21 तथा अनु. 38, 39(ई)(एफ़), 41 व 45 को क्रमवार ढंग से पढ़ने की हिदायत देते हुए उच्चतम न्यायालय ने उन्नीकृष्ण बनाम् आन्ध्र प्रदेश (1993) के निर्णय में कहा था कि संविधान 0-14 वर्ष आयु-वर्ग के सभी बच्चों हेतु 'शिक्षा हक' प्रदान करता है, जबकि अनु. 21(ए) के दायरे में 6-14 वर्ष आयु-वर्ग के बच्चों को ही 'शिक्षा हक' मिला है।
2. यदि, संशोधन पूर्व संवैधानिक अनुच्छेद 45 को ज्यों-का-त्यों भाग तीन में शामिल किया जाता, तो उन 0-6 वर्ष की आयु वर्ग के 16 करोड़ बच्चों (15.78 करोड़ पुरुष-बच्चे तथा 8.19 करोड़ स्त्री-बच्चे, जनसंख्या 2001 के अनुसार) की अतिरिक्त ज़िम्मेवारी विधिक रूप से सरकार पर आ पड़ती।
3. सरकार ने 0-6 आयु-वर्ग के अंतर्गत बच्चों की शुरुआती देखभाल और शिक्षा ('ईसीसीई') को संशोधित अनुच्छेद 45 के अंतर्गत भाग 4 से राज्य (सत्ता) की ज़िम्मेदारी पर डाल दिया।
4. सरकार ने अनुच्छेद 21(ए) के तहत 16 करोड़ (0-6 वर्ष की आयु) बच्चों को शामिल न करके स्वयं को विधिक दायित्व से बचाते हुए इसे उसी स्थिति में छोड़ दिया, जिस स्थिति में अब तक वह 86वें संविधान संशोधन पूर्व (अनु. 45 के अंतर्गत) था। अब इसकी ज़िम्मेदारी को सभी के लिए शिक्षा के नाम पर वैश्विक 'ऐजेन्सियों' द्वारा संचालित कार्यक्रमों ('ईएफ़ए', 'एसएसए', 'डीपीईपी', इत्यादि) के हवाले कर दिया गया है।
5. अनु॰ 21(ए) में राज्य ने 'जैसा (कानूनन) राज्य उचित समझे' के आधार पर अपने किसी भी सत्ताई (वैचारिक) अभियान को शिक्षा का दर्ज़ा देने की गुंजाईश बनाई है।

6. एक ओर, 86वां संविधान संशोधन शिक्षा के अधिकार अनु. 21(ए) की घोषणा करता है, तो वहीं दूसरी ओर अनु. 51(ए)(के) के द्वारा परिजनों पर स्वयं के बालकों की शिक्षा के मौके मुहैया कराने का दायित्व डालकर अपनी ज़िम्मेदारी से बचने की कोशिश करने की तरफ़ बढ़ता भी नज़र आता है।

2.2.1.4 कुमारी (2003) द्वारा किए गए शोधकार्य के अग्रलिखित उद्देश्य थे–

1. संवैधानिक विधि के अंतर्गत सांविधानिक शिक्षा उपबंधों का विश्लेषण करना।
2. संविधान में उल्लिखित शिक्षा से जुड़े उपबंधों का उल्लेख करना।
3. शिक्षा के संदर्भ में 'शैक्षिक समानता' का अर्थ स्पष्ट करना।
4. शिक्षा के संदर्भ में 'संवैधानिक समानता' का विवेचन करना।

इस विवरणात्मक शोध में शोधकर्त्री ने अधोवर्णित निष्कर्ष प्राप्त किए –

1. स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् किए गए अनेक प्रयासों के बाद भी जिन कारणों से शैक्षिक अवसरों के समकरण की समस्या बनी हुई है, वे हैं - निर्धनता एवं आर्थिक असमानता, घर का वातावरण, सामाजिक स्तरीकरण, लिंग-भेद, और शैक्षिक विकास में असमानता।
2. संविधान के अंतर्गत कानून के समक्ष सभी समान हैं; व हर बाशिंदे को जाति, जन्म स्थान, धर्म, मूलवंश आदि के भेदभाव के बिना अपनी योग्यताओं के विकास के लिए समान अवसर प्रदान किए जाएँगे। इसी के साथ समानता की स्थापना हेतु राज्य बच्चों, महिलाओं, तथा अन्य पिछड़े वर्गों को कुछ विशेष सुविधाएँ प्रदान करेगा। संविधान में अवसर-समानता व 'अस्पृश्यता' के अंत को लक्षित कर शिक्षा 'मौलिक हक' में वर्गीकृत है।
3. 'अवसर की समानता' तब तक संभव नहीं होगी, जब तक संरचना में आमूल बदलाव न किया जाय।
4. 93वें संविधान नियामन (13 दिसंबर, 2002) के आलोक में अनुच्छेद 21(क) के अनुसार 'शिक्षा प्राप्ति हक़' एक मूल हक़ होगा। इससे पूर्व

शिक्षा 'नीति निर्देशक अंग' में समाहित थी। पढ़ाई-लिखाई को 'मौलिक हकों' के अंतर्गत इसलिए रखा गया है, क्योंकि 'नीति निर्देशक अंग' पर कोई बाध्यकारी शक्ति नहीं है, जबकि 'मौलिक हकों' को कार्यान्वित करना राज्य की ज़िम्मेवारी है।

5. संविधान के तहत अनु॰ 14, 15, 16, 21(क), 28, 29, 30, 45, 46, 51क(ट), 337, 350(ख), व 351 शैक्षिक समानता की संकल्पना के ठोस आकार एवं स्वरूप से जुड़े हैं।

2.2.2 पुस्तकें

2.2.2.1 आचार्य (2001) शिक्षा को एक सामाजिक प्रक्रिया मानता है; और कहता है कि समाज से अलग हटकर किसी देश की शैक्षिक गतिविधियों पर विचार नहीं किया जा सकता। लेखक राष्ट्र, समाज, परिवार और विद्यालय व्यवस्था के आपसी सम्बन्धों की जटिलता पर विचार किए बिना शैक्षिक गतिविधियों पर विचार का कार्य पूरा नहीं मानता। लेखक का मानना है कि इस जटिल प्रक्रिया को पूरी तरह समझने के लिए सुसंगत सामाजिक दृष्टिकोण भी उतना ही अनिवार्य है, जितना शैक्षिक आँकड़े एवं अन्य सामग्री। लेखक ने पश्चिम बंगाल के संदर्भ में अपनी पुस्तक लिखी है। पुस्तक में संकलित निबंधों में प्राक्-ब्रिटिश देशज शिक्षा, औपनिवेशिक शिक्षा और राजनीतिक पहलुओं पर गौर किया गया है। इस दृष्टि से अलग-अलग समय पर लिखे गए इन लेखों में एकसूत्रता और समानता है। पुस्तक में लेखक ने विवेचना दी है - देश के सत्ता संपन्न तबके का मत या उसकी 'सांस्कृतिक प्रवृत्ति' ही देश की शिक्षा व्यवस्था पर असर रखती है। शिक्षा की दिशा के निर्धारण में इसकी नियामक भूमिका है। लेखक के अनुसार उपनिवेशिक काल में भारत में ऐसी शिक्षा थी, जिसका जनाधार संकुचित था; जिसमें बहुसंख्यक वर्ग के लिए मुश्किल से ही कोई जगह थी। शिक्षा में अँग्रेज़ी भाषा माध्यम के तहत यह प्रवृत्ति आज भी बरकरार है। इससे निकलने वाली और भी विकृतियाँ हैं, जिसने हमारी संस्कृति, समाज, और शिक्षा पर ख़राब असर डाला है।

2.2.2.2 ऑटवे (1972) ने अपनी पुस्तक में शिक्षा एवं समाज के मकड़जाल को लेकर विवेचना की है। ऑटवे के अनुसार प्रत्येक समाज के सदस्यों में सामाजिक तौर-तरीकों की चेतना अंतर्निहित है; और उनमें एक-समान मूल्यों और लक्ष्यों की वजह से एकता होती है। प्रत्येक समाज तंत्र में बालकों का लालन-पालन व शिक्षा निश्चित विधियों के तहत है। ऑटवे ने पुस्तक में इंग्लैण्ड के प्रजातांत्रिक समाज की पृष्ठभूमि में 'शिक्षा तथा समाज' की आबंधकता को विश्लेषित किया है; और विवेचन किया है कि विद्यालय किस प्रकार छात्रों में प्रजातांत्रिक भावनाओं की निर्मिति में समुचित विधि से जुड़ सकते हैं। यद्यपि, इनके दृष्टांत इंग्लैण्ड और वेल्स के संदर्भ में है, परन्तु जो सामान्य निष्कर्ष उन्होंने निकाले हैं, उन्हें अन्य प्रजातांत्रिक देशों में भी व्यवहार में लाया जा सकता है।

2.2.2.3 एवॉलास (1999) ने अपनी पुस्तक में ग्रामीण व शहरी दोनों तरह के गरीब बच्चों के शिक्षा जगत को विशद दृष्टि से वर्णित किया है। पुस्तक में लातीनी अमेरिका के चार देशों में किए गए अध्ययन शामिल किए गए हैं। पुस्तक में यह उद्धरित है कि पुस्तक के ये अध्ययन केवल आँकड़ों के संग्रह मात्र नहीं हैं। एवॉलास बच्चों के अनुभवों को विश्लेषण का आधार बनाकर बच्चों व शिक्षकों के मध्य घटतीं 'संवादी घटनाओं' का सूक्ष्म अवलोकन करती हैं। मूलतः, इस पुस्तक में चार लैटिन अमेरिकी देशों - चिली, बोलीविया, कोलंबिया, व वेनेजुएला के जटिल हालातों में पढ़ने-पढ़ाने वाले छात्रों-शिक्षकों तथा पाठ्यचर्या के विश्लेषण को लक्ष्य बनाया गया है। विश्लेषण के तहत न केवल यह पता चला कि शिक्षक-छात्र, परिजन-अध्यापक, व विद्यार्थी-विद्यार्थी तंतुओं का ताना-बाना कैसा अन्तर्सम्बन्धित जटिल जाल बनाता है, बल्कि यह भी जाना गया कि सड़क पर खोमचा लगाने वाले स्कूलों को ले करके क्या विचार रखते हैं; तथा अध्यापकों के उत्साह पर अधिकारियों के तकाज़े क्या प्रभाव डालते हैं। कुल मिलाकर शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े और आर्थिक दृष्टि से अभावग्रस्त 'तीसरी दुनिया' के देशों के अध्यापक, प्रशिक्षकों, प्रशासकों, व माता-पिता के लिए यह पुस्तक उपयोगिता रखती है।

2.2.2.4 किरण (1995) अपनी पुस्तक में तार्किक विश्लेषण से शैक्षिक जगत का गहन चिंतन-मनन करते हैं। पुस्तक में संविधान के मूल के अंतर्गत भारतीय शिक्षा नीतियों और प्रतिवेदनों को भी प्रमाण के रूप में जोड़ा गया है, जिससे पुस्तक की शैली विशेष तौर पर सहज हुई है। लेखक ने अध्यायों को एक-दूसरे से जोड़कर भारतीय शिक्षा जगत को समग्रता के साथ लक्षित किया है। इस 'समग्र कोशिश' में लेखक ने भारतीय परिवेश विशेष का विश्लेषण-विवेचन समझाया है। किताब के विभिन्न अध्यायों; जैसे - 'शिक्षा और समता', 'शिक्षा और साक्षरता', तथा 'भारतीय युवा वर्ग और शिक्षा' में लेखक ने भारतीय परिवेश विशेष में शिक्षा को केंद्र में रखकर समझने-बूझने का सारबद्ध प्रयास किया है। पुस्तक की भाषा-शैली जटिल विश्लेषण को भी सहजता के साथ प्रस्तुत करती है, जिससे शैक्षिक जगत से जुड़े प्रतिवेदनों और शिक्षा नीतियों का भाव ठीक प्रकार से परिलक्षित किया जा सकना संभव हो सका है। कुल मिलाकर, पुस्तक शैक्षिक चिंतन के प्रति विवेकपूर्ण समझ पैदा करती है।

2.2.2.5 किरण (2006) द्वारा अपनी पुस्तक को चार खण्डों के अंतर्गत चौंतीस पाठों में बाँटा गया है। पुस्तक के पहले, दूसरे, व चौथे खण्ड में लेखक ने क्रमश: शिक्षा के सैद्धांतिक, विचारधारात्मक, व ज्ञानमीमांसात्मक पक्ष का विस्तृत विश्लेषण किया है। किताब में तीसरे खण्ड का जुड़ाव 'वैचारिक शिक्षा चिंतन' की समग्र समझ प्राप्ति से है, इन्हीं विचारकों में से एक हैं – पाओलो फ्रेरे। लेखक ने पुस्तक के अठारहवें अध्याय - 'शिक्षा "खामोशी की संस्कृति" का पर्याय नहीं' के अंतर्गत घोषणा की है - फ्रेरे का शिक्षाशास्त्र, वस्तुत: 'शोषण के विरुद्ध परिवर्तन का शिक्षाशास्त्र' है। लेखकानुसार फ्रेरे शिक्षा को समाज को बदलने का एक सशक्त साधन मानते थे, क्योंकि शिक्षा से व्यक्ति जिज्ञासु बनते हैं; और जिज्ञासु होना मनुष्य की इंसानीयत का पर्याय है। लेखक स्पष्ट करता है - फ्रेरे केवल वंचित विशेष की स्थितियों में ही परिवर्तन नहीं लाना चाहते थे, बल्कि वे उत्पीड़कों की 'आत्मलीनता' में भी जागृति चाहते हैं। तभी, फ्रेरे का चिंतन एकांगी नहीं था; वे सभी की भलाई का रास्ता खोज रहे थे। अध्याय को पढ़ने से यह भी पता चलता है कि फ्रेरे यह विश्वास करते थे कि हर व्यक्ति में समझने, बूझने, और सोचने की शक्तियाँ विद्यमान होती हैं। आवश्यकता है - उन तरीकों की, जो उनकी स्थितियों-परिस्थितियों के

अनुकूल हों। इन तरीकों की पहचान करने से ही शोषण के विरुद्ध 'सतत-सहभागी' प्रयास करने संभव हो सकते हैं।

2.2.2.6 कुमार (1990) ने शिक्षा को लेकर फैली उदासीनता और राज्य की शिक्षा नीति को अबोध भाव से स्वीकारने की मनोवृत्ति को चोट देने के उद्देश्य से यह पुस्तक लिखी है; तथा इसके माध्यम से शिक्षा से संबंधित मसलों को समझने का एक सार्थक नज़रिया दिया है। लेखक ने किताब में 'राज, समाज, और शिक्षा' में सम्बन्ध को ब्रिटिश राज के दौरान तथा स्वतंत्रोपरांत भी देखा है। पुस्तक में बच्चों के जीवन से जुड़े सूक्ष्म आयामों को परिलक्षित किया गया है, जो उनके व्यक्तित्व को ढालने में अपनी भूमिका अदा करते हैं। पुस्तक में लेखक ने 'कक्षा का ढाँचा' अध्याय में विश्लेषित किया है कि हर ऊँची कक्षा तक पहुँचने की शिक्षा बच्चे को आमंत्रित करने के स्थान पर उसके रास्ते में बाधा बनकर खड़ी है। पाठ-दर्शन विद्यार्थी को अनुभव से जुड़ी आज़ादी नहीं देता, बल्कि वह उसके प्रत्येक अनुभव को पूर्व निर्धारित योजना के तहत मूल्यबद्ध कर देता है। पुस्तक के परिशिष्ट 'शिक्षा में हस्तक्षेप' में लेखक ने लिखा है कि देश में लोकतंत्र की जड़ों को मजबूत बनाने में शिक्षा ने मदद नहीं दी, न ही उसने सामाजिक व्यवस्था की जमीन से 'सामंती और औपनिवेशिक तत्त्वों' को निकालने में मदद की। हमारी शिक्षा व्यवस्था ने तर्क और विवेक की भाषा को लोकप्रिय नहीं बनाया। संस्थानों की शिक्षा सत्य से, जीवन से, अपने परिवेश और पर्यावरण से जी चुराना सिखाती है। अत:, आज हम शिक्षा का राजनैतिक सन्दर्भ पहचानने के साथ-साथ इसकी पुनर्रचना में शिक्षा का आधार तय करें।

2.2.2.7 जोशी (1996) ने दो खण्डों के अंतर्गत अपनी पुस्तक को ग्यारह हिस्सों में बाँटा है। पुस्तक के पहले खण्ड के अंतर्गत लेखक ने आदिवासियों की दिनचर्या पर 'उद्योगिकीकरण' व 'आधुनिकीकरण' के प्रभावों को जाँचा है। दूसरे खण्ड में लेखक ने उन शिक्षा विधियों को विवेचित किया है, जिससे आदिवासियों को ऐसे शिक्षित कर सकते हैं कि वे शोषणकारी परिवेश में बदलाव ला सकें। किताब में दूसरे खण्ड के दसवें अध्याय - 'शिक्षाः मुक्ति की निरंतर प्रक्रिया' में लेखक द्वारा फ्रेरे के शिक्षा-दर्शन का सारगर्भित

सिंहावलोकन किया गया है। लेख में प्रौढ़ शिक्षा का उद्देश्य साक्षरता की बजाय शिक्षित करने से आबद्ध है। लेख में यह दर्शाया गया है कि शिक्षा-दर्शन तत्कालीन हालात में व्याप्त "उत्पादन सम्बन्धों" से सतत प्रभावित है। लेखक ने 'तृतीय विश्व' के बारे में बात कर उस प्रक्रिया को इंकित किया है, जिसके द्वारा पहले तो ये देश साम्राज्यवादी देशों की खपत मंडी बन गए; व फिर उनमें 'वर्ग-संघर्ष' व "संकीर्णतावाद" के बीज पनपने लगे। लेखक के अनुसार "संकीर्णतावाद" से मुक्ति तभी संभव है, जब व्यक्ति 'रेडिकल' हो। लेखक ने फ्रेरे द्वारा प्रतिपादित शिक्षा सम्बन्धी अवधारणाओं; जैसे – "संकीर्णतावाद", "मानुषीकरण", 'संवाद', "शिक्षा की बैंकिंग अवधारणा", इत्यादि का विस्तार से विश्लेषण कर उसे संदर्भ विशेष में समझा है। लेखक के अनुसार वर्तमान 'भारतीय शिक्षा व्यवस्था' यथास्थितिवादी है। इसने 'संवाद' रहित व्यवस्था के ज़रिए "खामोशी की संस्कृति" को बढ़ाया है; और शैक्षिक जगत की रूढ़िबद्धता के प्रति सभी को मूक-दर्शक मात्र बना डाला है।

2.2.2.8 दूबे (2000) का अपनी पुस्तक में दृष्टिकोण, मुख्यतः 'तीसरी दुनिया' के सम्बन्ध में 'शिक्षा और समाज की अंतर्क्रिया' को समझने का रहा है। पुस्तक में लेखक द्वारा समय-समय पर दिये गए चौदह भाषण और लेख संकलित हैं। लेखक पुस्तक की भूमिका में बताता है कि शिक्षा 'परंपरा सम्बन्धी धरोहर' को सतत आगे बढ़ाती है। किताब के दूसरे अध्याय में लेखक ने भारत की 'औपनिवेशिक विरासत' को शिक्षा के संदर्भ में रखकर, सामने उपस्थित जटिलताओं के आलोक में विश्लेषण को देखा-समझा है। किताब के अन्य अध्यायों में लेखक ने 'उच्च शिक्षा', 'शिक्षक-शिक्षा', 'अनुसूचित जाति', 'आधुनिकीकरण', 'सार्वजनिक शिक्षा', इत्यादि बिंदुओं के सम्बन्ध में भारतीय शिक्षा में सन्निहित अंतर्विरोधों व अंतर्द्वंद्वों को इक्कीसवीं सदी के पटल पर रखकर विश्लेषित-विवेचित किया है। लेखक घोषित करता है कि आज का 'भारतीय शिक्षा जगत' अनेक द्वंद्वों से ग्रस्त है। एक साथ कई विपरीत और विरोधी लक्ष्यों को पाने की कोशिश में वह स्वयं लक्ष्यहीन बन गया है। शिक्षा का पर्यावरण इतना विषाक्त हो चुका है कि उसमें सुधार के पौधे पनप ही नहीं सकते। लेखक इस विकृति की जड़ 'परंपरा के राजनीतिकरण' में पाता है। उसके अनुसार, शिक्षा ने हमें सच्चा इतिहास बोध नहीं दिया; और न हममें

'सांस्कृतिक विवेक' पनपाया। जटिलता हल करने की दिशा में शिक्षा का योगदान नगण्य रहा है। व्यवस्था में न प्रतिबद्धता है, न विराट कल्पना। हम आज किंकर्तव्यविमूढ़ता की विचित्र-सी स्थिति में हैं। इस स्थिति से उबरने के तरीके और रास्ते हमें ही खोजने होंगे।

2.2.2.9 नाईक (1998क) द्वारा अपनी पुस्तक में यह घोषित किया गया है - अभी 'सबके लिए प्रारंभिक शिक्षा' से सम्बद्ध 'राष्ट्रीय संकल्प' पूरा करना शेष है। पुस्तक में प्रस्तुत अध्ययन शिद्दत के साथ यह अहसास कराता है कि विगत सौ वर्षों के अपने इस राष्ट्रीय लक्ष्य को हासिल करने तथा जनता को दिए वचन को पूरा कर दिखाने के लिए हमें कैसी सामूहिक सोच और पक्के इरादों को अमल में लाने के लिए सघन प्रयासों की आवश्यकता पड़ेगी। सुविख्यात शिक्षाविद् और विचारक नाईक ने अपनी समीक्षात्मक पुस्तक में 'सर्वव्यापी शिक्षा' की दिशा में अतीत में किए गए प्रयासों की ऐतिहासिक पृष्ठभमि देते हुए उनकी विशेषताओं और असफलताओं के कारणों का विश्लेषण किया है; तथा प्राथमिक शिक्षा के परम्परागत प्रतिमानों से हटकर समय-समय पर संशोधन के लिए आजमाए गए अभिनव विकल्पों और वैकल्पिक कार्य नीतियों का सटीक विवेचन किया है। पुस्तक में जहाँ अंग्रेज़ों की प्रचलित 'आधुनिक शिक्षा प्रणाली' में 'बुनियादी संरचनात्मक परिवर्तन' लाने के लिए गोखले, पारुलेकर, महात्मा गाँधी, आचार्य विनोबा भावे, और सी. गोपालाचारी जैसे मनीषियों के शैक्षिक प्रयोगों का वर्णन है, वहीं उनके पूरा न हो पाने की वजहों को बताया भी है। लेखक ने शिक्षा आयोग (1964-66) की महत्त्वपूर्ण सिफारिशों; जैसे – 'पड़ोसी विद्यालय की अवधारणा', 'पाठ्यक्रम में क्रांतिकारी रूपान्तरण', 'बहुल प्रदेश और अंशकालिक पाठ्यक्रम' की ओर ध्यान दिलाया है, ताकि पूरे देश के लिए एक-सी लोचशील शिक्षा प्रणाली हो।

2.2.2.10 नाईक (1998ख) द्वारा रचित पुस्तक में इन प्रश्नों को लेकर सोचा गया है - 'समानता, गुणवत्ता, और संख्यात्मक विस्तार' के सम्प्रत्यों को शैक्षिक क्षेत्र में किस ढंग से समझा और क्रियान्वित किया गया है?, इस प्रयत्न में अभी तक कितनी सफलता मिली?, और इन लक्ष्यों को प्रभावकारी बनाने

हेतु किन उपायों को अपनाना चाहिए? तीन अध्यायों में बंटी पुस्तक में पिछले 160 वर्षों में भारतीय शिक्षा के उन्नयन को लक्षित कर वर्तमान संसार में शैक्षिक पुनर्गठन की मुख्य परिपाटियों पर भी दृष्टि डाली गई है। इसके अतिरिक्त, क्या शिक्षा में साम्यता व गुणवत्ता को लक्षित करने के प्रयास हुये? क्या शिक्षा-फैलाव, उसकी गुणवत्ता के विकास, व समान अवसरों के प्रावधान की हमारी उपलब्धियाँ समाज के मूल संगठन पर कुछ विशेष प्रभाव डाल पाई हैं? इन्हीं समस्याओं पर गहन चिंतन करते हुए लेखक द्वारा विश्लेषण किया गया है। लेखक ने तीनों शैक्षिक लक्ष्यों को साथ लेकर चलने के कुछ सुझाव भी पुस्तक में दिए हैं, ताकि 'समग्र विकास' की ओर बढ़ा जा सके।

2.2.2.11 फ्रेरे (1997क) द्वारा लिखित पुस्तक शिक्षा सम्बन्धी 'शास्त्रीय रचना' मानी गई है। पुस्तक चार भागों में बंटी हुई है। पहले अध्याय के अंतर्गत लेखक ने "उत्पीड़ितों के शिक्षाशास्त्र" के औचित्य को सामने रखा है। लेखक का यह मानना रहा है कि उत्पीड़नकारी परिस्थितियों में बदलाव तभी संभव है, जब उत्पीड़क व उत्पीड़ित दोनों मिलकर संघर्ष करें। दूसरे अध्याय में लेखक का शिक्षा सम्बन्धी विभिन्न अवधारणाओं; जैसे – "बैंकिंग शिक्षा", "संवादात्मक शिक्षा", "समस्या उठाऊ शिक्षा", 'पारस्परिक प्रक्रिया के रूप में शिक्षा', "पूर्णतर मनुष्य बनाने वाली शिक्षा", इत्यादि पर 'फ़ोकस' है। पुस्तक का तृतीय अध्याय यह 'फ़ोकस' करता है - 'संवाद' के ज़रिये "आलोचनात्मक चेतना" जागृत करने में किन-किन बिन्दुओं को दृष्टिगत रखना चाहिए? लेखक के अनुसार 'संवाद' तब तक संभव नहीं है, जब तक 'संवाद' कर्म में संलग्न व्यक्तियों के अनुभव 'संवाद' में सन्निहित न हों; और व्यक्ति 'पारस्परिकता का भाव' न रखें। लेखक ने चौथे अध्याय में उत्पीड़न के औज़ार के रूप में 'संवाद विरोध' और उत्पीड़नकारी परिवेश से विलगता की कड़ी के तौर पर "संवादात्मकता" की गहरी पड़ताल की है। लेखक ने 'संवाद विरोध' और "संवादात्मक कर्म" की विशेषताओं को स्पष्ट करने के लिए अनेक उदाहरणों का प्रयोग भी किया है। यद्यपि, पुस्तक की भाषा शैली थोड़ी कलिष्ट है, परन्तु लेखक ने एक कोशिश की है कि उत्पीड़न के खिलाफ़ प्रयासरत कर्मियों को यह पुस्तक एक उत्तर-कुंजी उपलब्ध करा सके।

2.2.2.12 फ्रेरे (1997ख) ने पुस्तक में, मुख्यतः 'प्रौढ़ साक्षरता' को केन्द्र में रखकर शिक्षा संरचना में उलझाव व सुलझाव का विवेचन किया है। पुस्तक के शुरू में फ्रेरे कहते हैं - "शिक्षा मुक्ति के लिए सांस्कृतिक कार्रवाई" है। इसे फ्रेरे किताब के प्रथम हिस्से में विस्तारित करते हैं। किताब के अनुवादक के अनुसार पाओलो फ्रेरे के लिए "भर्त्सना" और "घोषणा" की संकल्पना' ज़रूरी है। "भर्त्सना" 'आलोचनात्मक क्षमता' से जुड़ी हुई है; और "घोषणा" 'यूटोपिया' से। ये दोनों ही मिलकर "विवेकीकरण" की प्रक्रिया को मुमकिन बनाते हैं, जो "सांस्कृतिक कार्रवाई" की बुनियाद है। फ्रेरे के लिए 'प्रौढ़ साक्षरता', वस्तुतः एक "सांस्कृतिक कार्रवाई" है, जो उत्पीड़ितों को अपनी स्थिति के प्रति सजग करती है। इससे वे स्वयं को हीन समझने की अवस्था से बाहर निकल पाते हैं। फ्रेरे 'प्रौढ़ साक्षरता' के लिए "जननशील शब्दों", जो कि व्यक्तियों के ठोस यथार्थ से जुड़े होते हैं, लक्षित करते हैं। किताब के दूसरे भाग में फ्रेरे "सांस्कृतिक कार्रवाई" और "विवेकीकरण" के अतंर्सम्बन्ध को विवेचित करते हैं। उनकी नज़र में "विवकीकरण" की बुनियादी शर्त "चेतस प्राणी" का होना है। "चेतस प्राणी" केवल संसार में होता भर ही नहीं है, बल्कि वह संसार के प्रति जागरुक व सहभागी भी होता है। इसी कारण वह सामाजिक परिस्थितियों में बदलाव की ओर अग्रसर हो पाता है।

2.2.2.13 फ्रेरे (1998) ने अपनी पुस्तक को चार अध्यायों में विभाजित किया है। पुस्तक में फ्रेरे ने यह समझाने का प्रयास किया था कि किसी भी तरह का शिक्षण सतत-सीखने के बिना संभव ही नहीं है, अर्थात् यदि किसी व्यक्ति विशेष या विद्यार्थियों को ठीक से सीखाना है, तो शिक्षकों को पहले स्वयं में उन परिस्थितियों की समझ पैदा करनी होगी, जिसमें विद्यार्थी रहते हैं। सीखना एक तरफ़ा नहीं होता, बल्कि शिक्षक को भी विद्यार्थियों से सीखने को तैयार रहना होगा। पुस्तक में फ्रेरे यह भी स्पष्ट करते हैं कि शिक्षण का अर्थ केवल 'जानकारियों का हस्तांतरण' करना मात्र नहीं है, बल्कि शिक्षण के लिए शिक्षक में 'जिज्ञासु प्रवृत्ति', 'वास्तविकता की समझ', 'मानवीयता', 'दूसरे के प्रति आदर का भाव', 'परिवर्तनगामी सोच', 'मिलकर संघर्ष करने का भरोसा', इत्यादि गुणों का समावेश होना भी ज़रूरी है। फ्रेरे का यह भी मानना था कि हमें यह सीखना होगा कि दूसरों को सुनना क्यों आवश्यक है, स्वतंत्रता

का असल अर्थ क्या है, 'संवाद' कैसे किया जाता है और शिक्षा के ज़रिए व्यक्तियों की विश्व में सक्रिय भागीदारी कैसे बढ़ाई जा सकती है। पुस्तक को पढ़कर यह भी पता चलता है कि व्यक्तियों में निर्णय लेने की ऐसी क्षमता का विकास किया जाना चाहिए, जो "विवेकीकरण" की प्रक्रिया को बढ़ा सके; और उनमें विश्व की बेहतर समझ का निर्माण कर सके।

2.2.2.14 फ़्रेरे (2010) ने अपनी पुस्तक को 7 हिस्सों में बाँटा है। अंत में एना मारिया एराउजो फ़्रेरे के द्वारा स्पष्टीकरण हेतु अनेक टिप्पणियाँ भी दी गई हैं। फ़्रेरे ने पुस्तक "संकीर्णतावाद" की कमियाँ दर्शाने के लिखी थी, ताकि "उत्पीड़ितों के शिक्षाशास्त्र" पर लोगों का भरोसा बढ़ सके। पुस्तक के आलोक में फ़्रेरे यह प्रयास करते हुए नज़र आते हैं कि सभी को यह समझना होगा कि 'भ्रष्टाचार' लोकतंत्र के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती है। वह 'व्यवहारवादी विमर्शों' से भी दूर रहने के लिए कहते हैं, ताकि समाज में शिक्षा के ज़रिए वास्तविक परिवर्तन लाया जा सके। पुस्तक में फ़्रेरे सच्चाईयों का सामना करके 'आशाविहीनता की स्थिति' से बचने को इंकित करते हैं; और राजनीतिज्ञों को प्रत्यक्ष "आचरण" करने को कहते हैं। इससे ही सामाजिक बदलाव के रास्ते पर चलने में सहायता मिल सकेगी। असल में, किताब के अंदर फ़्रेरे ने घटनाओं विशेष का पुनरावलोकन कर उन्हें "उत्पीड़ितों के शिक्षाशास्त्र" के संदर्भ में विवेचित करने का 'समग्र प्रयास' किया है।

2.2.2.15 बेल व अन्य (2003) द्वारा संपादित पुस्तक माइल्स हॉर्टन व पाओलो फ़्रेरे की आपसी बातचीत के रूप में लिखी गई है। अतः, यह एक 'बोलती किताब' है। यह किताब मुख्यतः सबल होने की उस रणनीति की कहानी है, जो संभवतः पिछड़े लोगों की एकमात्र उम्मीद है। यह 'बोलती किताब' मंत्रमुग्ध करने वाला 'समाजशास्त्रीय आख्यान' है, जो वंचितों की स्थिति का सिर्फ़ आकलन ही नहीं करता, बल्कि उन रणनीतियों की पहचान भी करता है, जिन्हें अपने विकट हालात बदलने के लिए वंचितों को लाज़िमी तौर पर अपनाना चाहिए। वस्तुतः, यह पुस्तक उन तमाम लोगों के लिए एक 'घोषणा-पत्र' है, जो उत्पीड़तों के 'सामाजिक सबलीकरण' के लिए संघर्ष कर रहे हैं। यह किताब छः अध्यायों – 'परिचय', 'निर्माण काल', 'विचार',

'शिक्षा-कर्म', 'शिक्षा', और 'सामाजिक परिवर्तन व चिंतन' में विभाजित है। 'विचार' नामक पाठ में फ़्रेरे ने यह बताया है - "व्यवहार से अलग ज्ञान का अस्तित्व नहीं है"। किसी भी प्रकार की जानकारी प्राप्त करने के लिए हमारे पास किसी-न-किसी प्रकार के सिद्धान्त आधारित व्यवहार का होना आवश्यक है। इसके लिए वह 'स्वावलंबन' को आवश्यक मानते हैं, जो लोकतांत्रिक माहौल की उपज होता है। फ़्रेरे के अनुसार विद्यार्थियों का पाठ्यचर्या के नियोजन में भाग लेना, शिक्षा में लोकतांत्रिक माहौल को मजबूत करता है।

2.2.2.16 भारती (2004) द्वारा रचित पुस्तक में इन प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास किया गया है कि 'दलित विमर्श' क्या है?, उसकी अर्थवत्ता क्या है?, उसका संक्षिप्त इतिहास क्या है?, उसके विविध आंदोलन क्या है?, और उसका राजनीति तथा साहित्य में विकास किस प्रकार हुआ? लेखक के अनुसार "'दलित विमर्श' सिर्फ एकांगी विमर्श नहीं है"। लेखक इस बात को भी नए सिरे से विश्लेषित करता है कि समस्या विशेष से जुड़े निराकरण हेतु आर्थिक दृष्टिकोण के अतिरिक्त धार्मिक व्यवस्था की जाँच-पड़ताल की जानी क्यों आवश्यक है। पुस्तक के 'संक्षिप्त इतिहास' नामक भाग में दलित समस्या को ऐतिहासिक क्रम में 'विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग', 'वर्ण का जाति में परिवर्तन', व 'वर्गीय असमानता के सिद्धान्त' के अंतर्गत विभिन्न दृष्टिकोणों से परखने पर ज़ोर दिया गया है। पुस्तक का तीसरा अध्याय 'दलित आंदोलनों', 'डॉ. अंबेडकर का आंदोलन', 'हरिजन आंदोलन', व 'कम्युनिस्ट आन्दोलन' के प्रभावों को विश्लेषित करता है। लेखक ने 'हरिजन व दलित राजनीति' के फ़र्क को भूतकाल के संदर्भ में विवेचित करते हुए उसका मूल्यांकन स्वतंत्रता के पश्चात् के नवीन परिवेश के संदर्भ में देखा है। इस किताब की एक विशेषता यह भी रही है कि लेखक ने इसमें 'दलित विमर्श' में हुए बदलावों के सरोकारों को समझने की भी पहल की है। समग्र रूप से यह इंकित होता है कि अपनी सहज दृष्टि से लेखक आयामों विशेष को इस पुस्तक में बखूबी पेश कर सका है।

2.2.2.17 यादव व शर्मा (1997) किताब में वह विश्लेषण करते हैं, जो विकास प्रक्रियाओं से जुड़ा हुआ है; जैसे – 'निर्धनता की नीति', 'पार्टियों की भूमिका', 'जनजातीय आंदोलन', 'महिला और विकास', 'धर्मनिरपेक्षता',

'शैक्षिक योजना निर्माण', 'जन आंदोलन', इत्यादि। लेखकों के अनुसार गरीबी जैसी समस्या को संसाधनों के आबंटन, आय-वितरण, व विकास-लाभ के वितरण को आधार मानकर समग्रता में विश्लेषित किया जाना चाहिए। लेखकों ने 'राष्ट्रीय एकीकरण', 'आरक्षण', 'धर्मनिरपेक्षता', व 'महिला मंच' को शैक्षिक संदर्भ के अंतर्गत समझा है। उनके अनुसार 'धार्मिक वैमनस्यता', 'आरक्षण', व 'महिला उत्पीड़न' का अन्तर्क्रियात्मक शोधन हो, जिससे जटिलताओं विशेष को समग्र रूप से समझा जा सके। इस पुस्तक में विभिन्न अध्यायों को पढ़कर यह दृष्टि मिलती है - सभी प्रश्न विकास की प्रक्रिया से आबद्ध हैं। विकास के लोकतांत्रिक ढाँचे के अंतर्गत 'न्याय', एक परंपरागत समाज में 'धर्मनिरपेक्षीकरण' व 'आधुनिकीकरण' के प्रयास, और एक महाद्वीपीय आकार की भौगोलिक इकाई की विविधताओं को सहेजते हुए 'राष्ट्रीय एकीकरण' की खोज ने भारत में अनेक नई शक्तियों और आंदोलनों को जन्म दिया है, जिसमें 'वामपंथी आंदोलन', 'महिला आंदोलन', 'जनजातीय आंदोलन', 'जनाधिकार आंदोलन', 'दलित आंदोलन', और 'अधुनातन उच्च जातियों के आंदोलन' भी उल्लेखनीय है। इन आंदोलनों ने विभिन्न क्षेत्रों में विकास के प्रयत्नों को नये आयाम प्रदान किए हैं; तथा समसामयिक राजनीतिक संस्थाओं व प्रक्रियाओं को गहन रूप से प्रभावित किया है।

2.2.2.18 रज़ा (1996) ने अपनी पुस्तक में उपनिवेशकाल के दौरान शिक्षा के सामाजिक स्वरूप पर विशेष चर्चा की है। लेखक की दृष्टि में उपनिवेशवादी शासकों से विरासत में मिली शिक्षा प्रणाली के ढाँचे की खामियों को दूर करना, स्वतंत्रता उपरांत पहली ज़िम्मेदारी थी, ताकि हमारा देश 'औपनिवेशिक अल्पविकास' की अवस्था से निकलकर विकास के आत्मनिर्भर रास्ते पर चल सके। इस प्रक्रिया के तहत शिक्षा को विकास प्रक्रिया से सम्बद्ध और उसका महत्त्वपूर्ण अवयव माना गया। लेखक ने शिक्षा व्यवस्था को उप-व्यवस्था मानकर जाँचा-परखा है। पुस्तक में शिक्षा के बदलते आदर्शों और ज़मीनी यथार्थ के बीच उभरने वाले अन्तर्विरोधों का विवेचन 'आनुभाविक अनुसन्धानों' से प्राप्त निष्कर्षों के आलोक में विवेचित है। किताब का आधार फलक बहुत व्यापक है। इसमें 'साक्षरता कार्यक्रम', प्राथमिक शिक्षा, 'प्रौढ़

शिक्षा', और अनुसन्धान, सभी को एक ही जगह प्रस्तुत करने का सराहनीय उपक्रम किया गया है।

2.2.2.19 रुहेला (1999) का अपनी पुस्तक में मुख्य 'फ़ोकस', 'शैक्षिक समाजशास्त्र' से इतर 'शिक्षा के समाजशास्त्र' पर केन्द्रित है। वर्तमान संदर्भ में समाजशास्त्र के सिद्धान्तों, संप्रत्ययों, व शोध निष्कर्षों का समुचित उपयोग करते हुए इस पुस्तक की रचना की गई है। 'भारत में नई शिक्षा-नीति' नामक अध्याय में लेखक आलोचना करता है - शिक्षा-नीति में समानता की बात है, लेकिन यह नहीं बतलाया गया है कि आज तथाकथित 'पब्लिक स्कूल शिक्षा' तथा 'सामान्य शिक्षा' में जो भयंकर विषमता बढ़ती जा रही है, उसे कैसे रोका और कम किया जायेगा। वस्तुत:, उत्तम शिक्षा इतनी मँहगी होती जा रही है कि वह उच्च वर्ग से इतर परिवारों के लिए दिनोंदिन अप्राप्य होती जा रही है। शिक्षा व अर्थ के सम्बन्ध में लेखक 'भारतीय अर्थव्यवस्था और शिक्षा' नामक अध्याय में यह बात उद्घाटित करता है कि शैक्षिक अर्थशास्त्री शिक्षा को ज्ञान प्राप्ति के एक सशक्त माध्यम के तौर पर नहीं देखते। वे उसे एक 'निवेश' मानते हैं। असल में, लेखक शिक्षा में बढ़ती राजनैतिक घुसपैठ की ओर बरबस ही ध्यान आकृष्ट कर लेता है। लेखक का स्पष्ट मानना है कि राजनीति को शिक्षा से दूर रखने का प्रयास करना आज के भारतीय संदर्भ में अनुचित होगा, क्योंकि ऐसा करना अब न तो सम्भव ही है; और न ही किसी के हित में है। असल में, सही राजनीति से शिक्षा संस्थाएँ चलाना लक्षित हो; और शिक्षा संस्थान भी सत्यनिष्ठता से कार्य को लक्षित करें। इसके अतिरिक्त, लेखक 'पश्चिमीकरण', 'नैतिकता', 'धर्मनिरपेक्षता', व 'नगरीकरण' से उपजी शैक्षिक समस्याओं को भी अपने विश्लेषण का हिस्सा बनाता है।

2.2.2.20 सक्सेना (2000) ने अपने शोध प्रबंध के आधार पर पुस्तक लिखी है। जन संगठनों और जन संगठनों से जुड़े विद्यार्थी संगठनों की शिक्षा के प्रति जिज्ञासा ने ही लेखिका को इस पुस्तक को लिखने के वास्ते अभिप्रेरित किया। पुस्तक में लेखिका का मूल 'फोकस' 'शिक्षा व जन आंदोलनों' के अंतर्सम्बन्धों का विश्लेषण करना व 'गैर सरकारी शैक्षणिक प्रयासों' को समझने का रहा है। पुस्तक 3 हिस्सों में बंटी हुई है। प्रथम भाग में लेखिका औपचारिक

शिक्षा की सीमाओं, जटिलताओं, व विकल्पों की जाँच-परख करती हैं। इसके अंतर्गत लेखिका यह बात उद्घाटित करती है कि आर्थिक अभाव और सामाजिक उत्पीड़न से उपजी जो असफलतायें बच्चों की अपनी आत्मछवि, आत्मसम्मान, आत्मविश्वास पर चोट करती हैं, उनकी समझ शिक्षा जगत में न के बराबर है। असल में, ये असफलतायें बच्चों की असफलतायें न होकर शिक्षा व्यवस्था की असफलतायें हैं। लेखिका ने विश्लेषित किया कि मज़दूर वर्ग शिक्षा को अपने विकट पर्यावरण से छुटकारे के तौर पर देखते हैं, परन्तु शिक्षा प्राप्त कर भी बच्चों का बेरोजगार रह जाना मज़दूर वर्ग में हताशा भरता है। लेखिका औपचारिक शिक्षा का ऐतिहासिक विश्लेषण करते हुए उसमें आए नीतिगत परिवर्तनों को सामाजिक संदर्भ में विश्लेषित कर यह मानती हैं – शिक्षा व 'जनवादी आंदोलनों' में जुड़ाव हो। पुस्तक का दूसरा भाग सामाजिक संदर्भों में शैक्षिक सिद्धांतों के पुनरावलोकन पर 'फोकस' करता है। अंतिम भाग में लेखिका ने विभिन्न कार्यक्रमों को विस्तार देकर 'शिक्षा सम्बन्धी सिद्धान्तों' को व्यवहारिक रूप देने व समग्रता में समझने का प्रयास किया है।

2.2.2.21 सद्रोपाल (2000) की पुस्तक उन संपादित, अनूदित व रूपांतरित लेखों-आलेखों का संकलन है, जो लेखक द्वारा पूर्व में विभिन्न संदर्भों में लिखे गए। लेख किसी तिथिक्रम में नहीं रखे गए हैं, लेकिन मुद्दों व विचारों के आधार पर उनको छह खंडों में विभाजित किया गया है। प्रथम खंड में लेखक द्वारा सत्तर के दशक के 'होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम' का ज़िक्र किया गया है। लेखक विवेचित करता है - इस कार्यक्रम ने बताया था कि स्कूली-तंत्र की जड़ता को सामाजिक प्रक्रिया के ज़रिए चुनौती देना संभव है। दूसरे खंड में लेखक ने विभिन्न लेखों-आलेखों में यह विश्लेषित किया कि भारत में 'प्रौढ़ साक्षरता कार्यक्रम' से गरीब बच्चों की शिक्षा को दबा दिया गया। किताब के तीसरे खंड के अंतर्गत 'बस्ते के बोझ', 'विद्यालयी पाठ्यक्रम में राजनीति की घुसपैठ', व 'गरीब बच्चों की शिक्षा के संवैधानिक दायित्वों की अंतर्क्रिया' को विश्लेषित-विवेचित किया गया है। चौथे खंड में लेखक ने पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के स्वरूप में निहित विसंगतियों, 'समान स्कूल व्यवस्था' को न अपनाने पर हुए एक हादसे विशेष, व शिक्षा में बढ़ते 'केंद्रीयकरण' को जाँच-पड़ताल का विषय बनाया है। पाँचवें हिस्से में लेखक, मूलतः 'महिला समानता',

'शिक्षा हक', एवं 'बाल अधिकारों' का विश्लेषण कर उद्देश्य निर्धारित करता है - शिक्षा नीति जनवादी होनी चाहिए। पुस्तक के अंतिम खंड में शिक्षा जन क्रान्ति के आबन्ध को परिभाषित करने और 'वर्तमान शिक्षा नीति' के विकल्प को सैद्धांतिक स्तर पर खोजा गया है।

2.2.3 लेख

2.2.3.1 उदित (2005) ने संप्रग सरकार द्वारा पारित उस विधेयक के विश्लेषण के रूप में अपना लेख लिखा था, जिसमें अल्पसंख्यक संस्थानों को छोड़कर बाकी सभी शिक्षण संस्थान पिछड़ों व दलितों के कानूनी 'आरक्षण' से आबद्ध कर दिये गए थे। लेखक के अनुसार अल्संख्यक शिक्षण संस्थानों को भी पिछड़ों व दलितों के आरक्षण से जोड़ना चाहिए। लेखक विवेचित करता है - अल्पसंख्यकों के पास एक ऐतिहासिक अवसर था कि वे वंचितों का अपने यहां स्वागत करें। तभी 'सामाजिक सद्भाव' और 'धर्मनिरपेक्षता' मजबूत होती। लेखक के अनुसार यदि, यह कानून बनता कि अल्पसंख्यकों की संस्थाओं में भी पिछड़े व दलितों के लिए 'आरक्षण' हो, तो किसी तरीके से भी संविधान के अनुच्छेद 30 का उल्लंघन नहीं होता। लेखक यह तर्क रखता है कि यदि, मौजूदा बिल के दायरे में अल्पसंख्यक संस्थाएं नहीं आती हैं, तो बहुसंख्यक इसका दुरूपयोग करते हुए भारी पैमाने पर ऐसी संस्थाएं चला लेंगे; और सामाजिक ज़िम्मेदारी से बचे रहेंगे। लेख को पढ़कर लेखक की यह मान्यता दिखती है - 'आरक्षण' प्रावधान मौलिक परेशानियों का हल तो नहीं है, लेकिन पिछड़ों को कुछ क्षेत्रों में राष्ट्र की मुख्य धारा में आने में मदद मिलेगी।

2.2.3.2 ओम्नी (1994) द्वारा लिया गया 'साक्षात्कार' अथवा बातचीत फ्रेरे के जीवन, उनके शिक्षा-दर्शन व समाज-दर्शन से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं पर रोशनी डालती है। "उत्तर-पूर्वी ब्राज़ील के एक छोटे से नगर रैसिफ़े में 1921 में फ्रेरे का जन्म हुआ"। स्वयं के अनुभव के अंतर्गत फ्रेरे ने यह समझा कि गरीबी व भूख बच्चे की सीखने की क्षमता को कैसे प्रभावित करती है। फ्रेरे बताते हैं – साक्षरता व शिक्षित होने का कोई मतलब तभी तक है, "जब निरक्षर

व्यक्ति दुनिया में अपनी स्थिति, अपने काम और इस दुनिया को परिवर्तित करने की अपनी क्षमता पर सोचने लगे। उन्हें पता चलता है - दुनिया उनकी है, प्रभुत्व-संपन्न वर्ग की नहीं"। इस बातचीत में फ्रेरे "आलोचनात्मक चेतना" को ईसा मसीह से मिले प्रेम रूपी विश्वास व मार्क्स के विचारों से मिली तार्किक दृष्टि के योग के अंतर्गत रखते हैं। उनके अनुसार छात्र "आलोचनात्मक चेतना" रूपी ज्ञान प्राप्त कर शक्ति-संपन्न बनते हैं। फ्रेरे यह बात भी उद्घाटित करते हैं - यह कहा जाना कि 'ड्रॉप-आउट' स्वाभाविक है, मूलतः व्यवस्था की असफलता पर परदा डालने की एक लुभावनी धारणा है। "बच्चे विद्यालय छोड़ते नहीं हैं, वे निकाल दिए जाते हैं"। बातचीत में फ्रेरे ब्राज़ीली शिक्षा की अड़चनों को विवेचित करते हैं। संयुक्त राज्य अमरीका की शिक्षा व्यवस्था पर पूछे गये एक प्रश्न के उत्तर में वह कहते हैं कि "तटस्थ शिक्षा प्रणाली जैसी किसी चीज़ का कोई अस्तित्व नहीं है"। इसके अलावा ब्राज़ील के सम्बन्ध में फ्रेरे 'औपनिवेशिक नौकरशाही' के ज़रिए 'आधुनिकीकरण' को सिरे से खारिज करते हैं। फ्रेरे 'मानक भाषा' की पढ़ाई के विरोधी नहीं है। परन्तु, वह चाहते हैं कि शुरूआत 'जन-संस्कृति' व 'जन-भाषा' से हो। इस बातचीत में फ्रेरे ने अपने बचपन से जुड़ी उन घटनाओं का खुलासा भी किया है, जिसका सम्बन्ध सामंतवादी व्यवस्था विशेष व गरीबों की परिस्थितियों की जटिल बुनावट से था।

2.2.3.3 पपनै व पाराशर (2005) ने अपने आलेख में 'योजना आयोग' के उस मंतव्य को विस्तार से समझाया है, जिसमें उच्च शिक्षा को महँगा बनाए जाने के प्रति प्रतिबद्धता व्यक्त की गई है। लेखकों से 'योजना आयोग' के अध्यक्ष 'मोंटेक सिंह अहलुवालिया' बातचीत में उच्च शिक्षा को महँगा करने को कहते हैं। उनके मतानुसार "उच्च शिक्षा का विस्तार समय की ज़रूरत है; और सरकार के पास इसके लिए धन नहीं है। लिहाज़ा, यह फ़ीस बढ़ाने जैसे विकल्पों से ही संभव है"। अपनी इस बात को वह यह कहकर तार्किक ठहराते हैं - "हमारी कुल आबादी का 7 प्रतिशत (संबंधित उम्र के लोग) जो उच्च शिक्षा प्राप्त करता है, साधन संपन्न है"। गरीब बच्चों की उच्च शिक्षा में स्थिति को लेकर उनका मानना है कि "वे बामुश्किल 1 प्रतिशत हैं; और इनके लिए 100 प्रतिशत छात्रवृत्ति व शिक्षा कर्ज़ की व्यवस्था की जानी चाहिए"। लेखकों

का ऐसा मत है - 'योजना आयोग' उपर्युक्त बातों के आधार पर गरीब बच्चों से जुड़ी शिक्षा ज़िम्मेवारी को शिक्षा कर्ज़ के नाम पर उनके परिजनों के कंधों पर रखता है। असल में, 'योजना आयोग' की यह मंशा सरकार अथवा राजनीति में शिक्षा को 'निवेश' अथवा 'पण्य' मानने की ओर संकेत करती प्रतीत होती है।

2.2.3.4 सद्गोपाल (2003) ने अपना आलेख कैलाश सत्यार्थी के आलेख 'कहाँ से आएगा शिक्षा के लिए पैसा' से उपजे भ्रमों के तार्किक निवारण हेतु प्रतिक्रिया स्वरूप लिखा था। इस लेख में लेखक का स्पष्ट मानना है कि बच्चों को शिक्षित करने के लिए 'अंतर्राष्ट्रीय वित-पोषक एजेंसियों' से धन जुटाना एकमात्र रास्ता नहीं है। असलीयत तो यही है कि सरकार का इन एजेंसियों की ओर देखना अपने कर्त्तव्यों से मुँह चुराना है। लेखक यह सिद्ध करता है कि शिक्षा सम्बन्धी '93वां संविधान संशोधन', मूलतः भ्रामक मान्यताओं पर टिका है। इस संशोधन के जरिए सरकार ने 0-6 वर्ष के बच्चों से शिक्षा का हक छीन लिया, 6-14 वर्ष के बच्चों को 'घटिया शिक्षा' देने का निर्णय कर लिया, व अनु. 51(क)(ट) के ज़रिए अपने कर्त्तव्य को परिजनों के कंधों पर डाल दिया। लेखक यह भी सिद्ध करता है कि 'डीपीईपी' के ज़रिए सरकार ने 'प्रारंभिक शिक्षा' की संकल्पना को 'प्राथमिक शिक्षा' से स्थानान्तरित कर दिया। अंत में, लेखक 'समानान्तर शिक्षा', 'पैरा-शिक्षक', व 'शिक्षा हेतु वित्त आबंटन में कमी' को एक सोची-समझी नीति के अंतर्गत रखता है।

2.3 पूर्व कार्यों के संदर्भान्तर्गत प्रस्तुत अनुसंधान की स्थिति

यद्यपि, भारतीय शैक्षिक जगत में विभिन्न समस्याग्रस्त पहलुओं और पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक चिंतन के विभिन्न पक्षों को उजागर करने हेतु कई सम्बन्धित शोध और चिंतनशील कार्य हुए हैं; तथा सारबद्ध लेखों को लिखा गया है, तथापि इन कार्यों में अनुसंधानकर्त्ता द्वारा निम्नांकित अंतरालों अथवा रिक्तियों की पहचान की गई –

2.3.1 भारतीय शैक्षिक जगत में व्याप्त जटिलताओं को समग्रता में समझने के प्रयास का अभाव।

2.3.2 भारतीय शैक्षिक जगत में 'शैक्षिक समाजशास्त्र' से इतर 'शिक्षा के समाजशास्त्र' और 'शिक्षा के समाजदर्शन' के अंतर्गत विवेचन-विश्लेषण करने का अभाव।

2.3.3 पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक चिंतन को उनके 'समाजदर्शन' से जोड़कर समग्र रूप से विश्लेषित न कर पाना।

2.3.4 पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक चिंतन की प्रासंगिकता को उनके द्वारा प्रतिपादित केवल प्रचलित अवधाराणाओं पर 'फ़ोकस' कर ज़ोरपूर्वक घोषित करने का प्रयास करना।

2.3.5 पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक चिंतन में निहित 'शैक्षिक उद्देश्यों व पद्धतियों' सम्बन्धी स्पष्ट पहचान न कर पाना।

2.3.6 पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक विचारों को समकालीन व तत्कालीन परिवेशीय समरूपता के बरक्स विश्लेषित करने के प्रयास का अभाव।

2.3.7 पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक चिंतन को समकालीन भारतीय परिवेश विशेष के संदर्भान्तर्गत समग्रतापूर्वक विश्लेषित करने का अभाव।

उपर्युक्त बिन्दुओं के सम्बन्ध में यह अनुसंधान पाओलो फ्रेरे के समग्र 'शिक्षा सम्बन्धी विचारों' की सहायता से भारत की शिक्षा से जुड़ी परिस्थितियों विशेष की बेहतर समझ को लक्षित करने से जुड़ा हुआ एक सचेतन प्रयास है, ताकि बेहतर परिस्थितियों के निर्माण की ओर सहभागी रूप से अग्रसर हुआ जा सके।

अध्याय 3
शोध पद्धतिशास्त्र

अध्याय 3
शोध पद्धतिशास्त्र

3.1 पद्धतिशास्त्रगत परिप्रेक्ष्य

शोध अध्ययन के अंतर्गत शोध क्षेत्र से संबंधित आँकड़ों व जानकारी की प्राप्ति हेतु सजग पूर्व-तैयारी सन्निहित होती है। ऐसा इसलिए, ताकि आँकड़ों व जानकारी के संदर्भ में प्राप्त परिणामों व 'सामान्यीकरण' को वैध ठहराया जा सके। इसके अतिरिक्त, 'गुणात्मक प्रकृति अथवा उपागम' से संबंधित आँकड़ों की प्राप्ति को सुन्निश्चित करने के लिए एक शोधक से अपेक्षित है कि वह शोध की व्यवस्थित प्रक्रिया का ठीक प्रकार से अनुपालन करे। इस हेतु शोधार्थी को यथोचित 'शोध विधि' व 'उपकरणों' चुनाव करना होता है, ताकि प्राप्त आँकड़े यथासंभव विश्वसनीय, वैध व पर्याप्त हो सकें। अनुसंधान की प्रकृति से ही यह निश्चित करना संभव है कि आँकड़े प्राप्ति में कौन-सी विधि, उपकरणों, समष्टि, प्रतिदर्श की संख्या, व 'प्रतिचयन विधि' का अनुपालन होगा।

ध्यातव्य है - मानव शुरू से ही जिज्ञासु प्रवृत्ति का होता है। "उसमें अज्ञात को जानने की, नवीनता को ढूँढ निकालने की, और अपने ज्ञान भंडार की निरन्तर श्रीवृद्धि करने की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है; एवं इसी प्रवृत्ति के कारण ही मानव पशु से इतना भिन्न है"।[30] यह भिन्नता ही मानव को तथ्यों को बिना प्रश्नचिह्न लगाए स्वीकारने से रोकती है। इस प्रकार तथ्यों पर प्रश्नचिह्न लगाना विषय विशेष के सम्बन्ध में शोधन है। लेकिन, "यह शोध कार्य मनमाने ढंग से नहीं किया जाता, अपितु कुछ निश्चित या 'वैज्ञानिक पद्धति' को भी

[30] मुकर्जी व दुबे 1993: 1

अपनाना होता है। शोध कार्य के लिए अपनाई गई इन 'वैज्ञानिक पद्धतियों' को ही शोध का पद्धतिशास्त्र कहा जाता है"।[31]

अनुसंधान पद्धतिशास्त्र वास्तव में उस एक या एकाधिक 'वैज्ञानिक पद्धति' को बताता है, जिसे कि शोधकर्त्ता अपने अध्ययन कार्य हेतु प्रयुक्त करता है। इस अर्थ में शोध के पद्धतिशास्त्र की अवधारणा उस पद्धति, उपकरण व प्रविधि की अवधारणाओं से जुड़ी हुई है, जिनका उपयोग 'वैज्ञानिक निष्कर्ष' तक पहुँचने के लिए होता है। स्पष्टत:, अनुसंधान में प्रयुक्त होने वाले तर्कों और शोध को निर्देशित करने वाले सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्यों को ही शोध के पद्धतिशास्त्र के रूप में समझा गया है।

3.2 अध्ययन काल-खण्ड

काल-खण्ड के संदर्भ में अनुसंधान परिसीमन बहुत ही महत्त्वपूर्ण होता है। अनुसंधान में अध्ययन चूँकि, काल सापेक्ष होता है, इसलिए इसका सीधा असर शोध तथ्यों या आँकड़ों की गुणवत्ता पर पड़ता है। यह भी ध्यातव्य है कि शोध काल-खण्ड के निर्णय में इतिहासिक घटनाएँ भी अपनी महती भूमिका रखती हैं। इन घटनाओं के आलोक में ही शोधकर्त्ता को शोध से संबंधित तथ्यों या आँकड़ों का विवेचन-विश्लेषण करना पड़ता है। इसलिए, शोध अध्ययन काल-खण्ड का निर्णय करने के उपरान्त भी यह तर्कसंगत है कि शोध अध्ययन काल-खण्ड को सदैव ही लोचशील बनाए रखना चाहिए, ताकि प्राप्त तथ्यों व आँकड़ों का वास्तविक समग्र विश्लेषण और उनकी बारम्बार जाँच करना सम्भव हो सके।

उपर्युक्त आवश्यक बिन्दुओं के बरक्स ही प्रस्तुत अध्ययन में भारतीय परिस्थितियों के संदर्भ में समकालीनता का ध्यान रखा गया है। इस हेतु मुख्यत: पूर्व के 10-15 वर्षों में भारत में बदलती परिस्थितियों विशेष के सम्बन्ध में शिक्षा जगत को शोध काल-खण्ड हेतु विवेचित-विश्लेषित किया गया है, परन्तु काल-खण्ड की 'लोचशीलता' के आलोक में आवश्यकतानुरूप भारत के

[31] वही

'शैक्षिक इतिहास' में परिलक्षित मुख्य दस्तावेज़ों व वैश्विक वैचारिक विमर्शों का भी विश्लेषण हेतु शोध में उपयोग किया गया है।

3.3 'शोध अभिकल्प' में प्रयुक्त विधि

अध्ययन में 'अनुसंधान अभिकल्प' 'वर्णनात्मक' है। किसी विषय या समस्या के निहित यथार्थता पर 'फ़ोकस' कर गुणात्मक उपागम के ज़रिए वर्णनात्मक विवरण को परिलक्षित करना ऐसे 'अनुसंधान अभिकल्प' के अंतर्गत एक लक्ष्य होता है। इस हेतु यथार्थ एवं वास्तविक सूचना प्राप्ति हेतु विशेष सावधानी अनिवार्य है, जो 'गुणात्मक प्रकृति' की होती है। असल में, 'वर्णनात्मक अध्ययन' "परिघटनाओं की विद्यमान स्थिति के सम्बन्ध में संबंधित परिशुद्ध सूचना प्राप्त करने के लिए और जब भी संभव हो, खोजे हुए तथ्यों से वैध सामान्य निष्कर्ष निकालने के लिए"[32] प्रयुक्त होता है। अध्ययन में "केवल 'आँकड़ों का संग्रहण' नहीं, बल्कि इसमें 'आँकड़ों का मापन', 'वर्गीकरण', 'विश्लेषण', 'तुलना', व 'व्याख्या' भी जुड़ी हुई है"।[33] इसके अतिरिक्त, 'वर्णनात्मक अध्ययन' विधि "कम वैज्ञानीकी आडम्बर वाली होती है। इसमें अनुसंधायक चरों में हेर-फेर नहीं करता; घटना के घटने की व्यवस्था नहीं करता। वस्तुतः, इससे वह घटनाएँ जुड़ी होती हैं, जो पहले ही घट चुकी हैं; और वर्तमान से संबंधित हैं"।[34] स्पष्टत:, 'वर्णनात्मक अध्ययन' में यथार्थ स्थिति के अलग-अलग पदों के मध्य आबन्ध लक्षित होता है। क्योंकि, ये घटनायें बीत चुकी होती हैं या वर्तमान में घट रही होती हैं, अतः शोधार्थी उपयुक्त चरों या मापदण्डों के चयन के पश्चात् उनका तार्किक विवेचन करता है। विवेचन हेतु आगमन-निगमन, गुणात्मक-विश्लेषणात्मक, इत्यादि तकनीकों या उपागमों की सहायता अपेक्षित होती है।

---

[32] कौल 1998: 461

[33] वही

[34] वही: 462

इसी प्रकार, 'वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प' 'शिक्षा के समाजशास्त्र अथवा समाजदर्शन' के अंतर्गत 'शैक्षिक चिंतन' को समझने व समकालीन घटनाओं के विवेचन में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। प्रस्तुत अनुसंधान का मूल पाओलो फ्रेरे के 'शिक्षा सम्बन्धी चिंतन' को 'तत्कालीन परिस्थितियों' व 'समकालीन भारतीय परिस्थितियों व घटनाओं' के बरक्स विश्लेषित-विवेचित करना है। इसी लिए अनुसंधान में 'वर्णनात्मक शोध अभिकल्प' को लिया गया है। इस अभिकल्प के अंतर्गत पूर्वनिर्धारित उद्देश्यों की अभिपूर्ति हेतु पाओलो फ्रेरे द्वारा रचित व उनके विचारों की समीक्षा पर आधारित उपलब्ध साहित्य व भारतीय समकालीन परिस्थितियों विशेष पर रचित उपलब्ध साहित्य को यथासंभव 'वर्णात्मक अनुसंधान अभिकल्प' के अंतर्गत निर्धारित अग्रलिखित 'मापदण्डों' की सहायता से 'गुणात्मक-विश्लेषणात्मक उपागम' के ज़रिए विश्लेषित किया गया है। इसी प्रक्रिया के अनुपालन द्वारा 'अर्धसंरचित साक्षात्कार अनुसूची' का उपयोग कर शिक्षाविदों से प्राप्त तथ्यों को प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से अध्ययन में तार्किक विश्लेषण हेतु प्रयुक्त किया गया है।

3.4 प्रतिचयन

कौल के अनुसार प्रतिचयन एक "ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें अपेक्षाकृत छोटी संख्या में व्यष्टि, उनके माप, वस्तुएँ, या घटनाएँ छाँट ली जाती हैं; और उनका विश्लेषण करके ऐसे परिणाम निकाले जाते हैं, जो पूरी समष्टि के लिए सही हों"।[35] अन्य शब्दों में, प्रतिचयन प्रक्रिया के द्वारा शोधार्थी अपेक्षाकृत कम समय व कम व्यय में एक बड़े क्षेत्र या समष्टि का तार्किक अध्ययन कर पाता है; और शोध प्राप्तियों को यथासंभव 'सामान्यीकरण प्रकिया' के अंतर्गत ला पाता है अथवा गुणात्मक विश्लेषणपरक शोध अध्ययनों की प्रक्रिया व उनसे प्राप्त निष्कर्षों में यथासंभव सम्पूर्ण समष्टि के विचारों को सन्निहित कर पाता है। स्पष्टत:, प्रतिचयन प्रक्रिया शोधार्थी के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण समझी जा सकती है। प्रतिचयन प्रक्रिया पर ही अनुसंधान के मध्य प्राप्त आँकड़े बहुत हद

[35] वही: 117

तक निर्भर करते हैं। वस्तुत:, प्रतिचयन प्रक्रिया शोध अध्ययनों में महती भूमिका रखती है।

3.4.1 समष्टि या जनसंख्या

कौल के अनुसार "समष्टि से तात्पर्य कुछ विशिष्ट मनुष्यों के समुदाय, अमानवी इकाइयों; जैसे – वस्तुओं, शिक्षा संस्थाओं, समय इकाई, भौगोलिक क्षेत्र, गेहूँ के मूल्य, व्यक्तिगत वेतन से होता है; कुछ लोग इसे विश्व कहते हैं"[36], अर्थात् समष्टि से अभिप्राय विश्व के उस 'मानवी या अमानवी' भाग से है, जहाँ से शोधार्थी यथोचित 'प्रतिचयन विधि' को अपनाकर अपने अनुसंधान के समस्त अथवा कुछ आँकड़े इकट्ठे करता है या जिस पर अनुसंधान प्राप्तियों को बड़े संदर्भ में विस्तारित करता है या जिससे आबंधित विचारों को अनुसंधान प्रक्रिया और शोध निष्कर्षों में सन्निहित करता है। यदि, शोधार्थी समष्टि चुनाव के प्रति सजग न रहे, तो आगे चलकर इससे उसकी अध्ययन तार्किकता या वैधता प्रभावित हो सकती है।

यद्यपि, प्रस्तुत अध्ययन मुख्य तौर पर दस्तावेज़ों व विभिन्न वैचारिक विमर्शों में निहित तथ्यों के विश्लेषण-विवेचन पर लक्षित है, तथापि विश्लेषण को गुणात्मक बनाने के लिए शोधकर्त्ता द्वारा भारत में 'स्नातक व परास्नातक शिक्षक-शिक्षा' से जुड़े विभिन्न शिक्षाविदों से 'व्यक्तिगत बातचीत' के माध्यम से अग्रवर्णित 'अर्धसंरचित साक्षात्कार अनुसूची' में पूछे गए प्रश्नों की संरचना और प्रश्नों से मिले तथ्यों को तर्कशील बनाया गया है; ताकि अनुसंधान उद्देश्यों की अभिपूर्ति हेतु पाओलो फ्रेरे के 'शिक्षा सम्बन्धी विचारों' व 'समकालीन भारतीय परिस्थितियों' के बरक्स उचित दृष्टि प्राप्त की जा सके।

3.4.2 प्रतिदर्श या व्यष्टि या न्यादर्श

रायजादा के अनुसार "अनुसंधान का अंतिम लक्ष्य ऐसे सिद्धांत या 'सामान्यीकरण' का विकास करना होता है, जो व्यक्तियों, घटनाओं या

[36] वही

वस्तुओं के समूह पर लागू होती है"।[37] इस अंतिम लक्ष्य तक पहुँचने के लिए यद्यपि, समूह के प्रत्येक सदस्य के अध्ययन की ओर अग्रसर होना चाहिए, तथापि "समूह के प्रत्येक सदस्य का अध्ययन करना संभव नहीं होता और न ही अक्सर आवश्यक होता है; विशेषकर उस स्थिति में जब समूह के सदस्यों की संख्या बहुत बड़ी हो"।[38] समान्यत:, समूह के जिन सदस्यों को लेकर उनके ज़रिए अध्ययन करते हैं, उन्हें प्रतिदर्श की संज्ञा दी जाती है। इसके अतिरिक्त, प्रतिदर्श को समष्टि का 'उचित प्रतिनिधित्व' भी करना चाहिए, जिससे शोध से प्राप्त निष्कर्ष तार्किक हो सकें; और वे बड़े संदर्भों में वर्णित हो सकें।

शोध गुणात्मकता को ध्यान में रखते हुए शोधकर्त्ता द्वारा अग्रवर्णित 'प्रतिचयन विधि' को अपनाकर भारत में 'स्नातक व परास्नातक शिक्षक-शिक्षा' से जुड़े विभिन्न शिक्षाविदों में से 15 शिक्षाविदों का चुनाव कर 'साक्षात्कार' के ज़रिए वाँछित सूचना प्राप्त की गई; और पूर्व जानकारियों व तथ्यों को अग्रलिखित 'निर्धारित मापदण्ड' की सहायता से गहनतापूर्वक जाँचा-परखा गया। इसके अतिरिक्त, शोधकर्त्ता द्वारा अनुसंधान में प्रयुक्त 'अर्धसंरचित साक्षात्कार अनुसूची' के प्रश्नों की संरचना को तर्कसंगत बनाने के लिए अग्रवर्णित 'प्रतिचयन विधि' को अपनाकर भारत में 'स्नातक व परास्नातक शिक्षक-शिक्षा' से जुड़े 30 शिक्षाविदों से भी परामर्श लिया गया।

3.4.3 'प्रतिचयन विधि'

किसी भी शोध अध्ययन में उचित रीति द्वारा समष्टि से वांछित प्रतिदर्श का चयन करना महत्त्वपूर्ण है। इसके लिए 'यादृच्छिक' व 'अयादृच्छिक' विधियाँ प्रयुक्त प्रयुक्त हुई हैं। इन विधियों के प्रयोग के बावजूद, शिक्षाविदों द्वारा जो बात अत्याधिक महत्त्वपूर्ण समझी गई है, वह है – अनुसंधान किसी भी विधि से किया जाए, 'अनुसंधान सदैव सत्यनिष्ठता से होना चाहिए'। तभी, प्रस्तुत अनुसंधान में अनुसंधानकर्त्ता द्वारा अनुसंधान की गुणात्मकता के बरक्स

[37] रायजादा 1997: 250

[38] वही

'सोद्देश्य अथवा उद्देश्यपरक प्रतिचयन विधि' के प्रयोग द्वारा समष्टि से प्रतिदर्श का चयन किया गया। असल में, 'सोद्देश्य प्रतिचयन विधि' के अंतर्गत अनुसंधानकर्त्ता का सारा 'फ़ोकस' शोध उद्देश्यों से सम्बद्ध गुणात्मक आँकड़ों के संग्रहण में लगा रहता है। यद्यपि, इस विधि में अप्रायिकता का समावेश होता है, तथापि यह विधि 'विवरणात्मक अध्ययनों' की गुणात्मकता वृद्धि में बहुत लाभकारी है।

कई दफ़ा विधियों की कलिष्टता से समष्टि में से प्रतिनिधि प्रतिदर्श का चुनाव नहीं हो पाता या ऐसे प्रतिदर्श का चुनाव हो पाता है, जो अनुसंधान उद्देश्यानुरूप वाँछित जानकारी नहीं रखते। इससे अनुसंधान उद्देश्यों को पूरा करने के मध्य शोधकर्त्ता हेतु काफ़ी कठिनाई उपस्थित हो सकती है। रायजादा के अनुसार 'यादृच्छिक विधि' में "यदि, वाँछित प्रतिदर्श छूट जाए, तो अध्ययन की व्याख्या अधूरी रह जाती है"।[39] उनके अनुसार 'सोद्देश्य प्रतिचयन विधि' में प्रतिदर्श का चयन करते समय शोधकर्त्ता को यह पता हो कि प्रतिदर्श में समष्टि के सभी महत्त्वपूर्ण गुण आ जाएँ।

उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में अनुसंधानकर्त्ता द्वारा 'अर्धसंरचित साक्षात्कार अनुसूची' की प्रश्न संरचना को तर्कसंगत बनाने के लिए परामर्श हेतु भारत में 'स्नातक व परास्नातक शिक्षक-शिक्षा' से जुड़े 30 शिक्षाविदों और 'साक्षात्कार' हेतु 15 शिक्षाविदों को शोध की गुणात्मकता को ध्यान में रखकर 'अप्रायिकता विधि' के अंतर्गत 'सोद्देश्य अथवा उद्देश्यपरक प्रतिचयन विधि' को अपनाकर चयनित किया गया। इसके लिए यह भी ध्यान रखा गया कि उपर्युक्त सभी शिक्षाविद पाओलो फ्रेरे के शिक्षा दर्शन से परिचित हों; और इन्हें 'स्नातक अथवा परास्नातक शिक्षक-शिक्षा' के क्षेत्र में कम-से-कम 5-10 वर्षों का अध्यापन अनुभव हो।

[39] वही: 267

3.5 उपकरण विवरण

अनुसंधान में मनोवाँछित आँकड़ों की प्राप्ति में अनुसंधान उपकरण का चयन या निर्माण महत्त्व का विषय है। अनुसंधान में 'अनुसंधान उपकरण' चयन या निर्माण का आधार है - 'शोध अभिकल्प' कैसा है?; और अनुसंधानकर्त्ता 'संख्यात्मक' या 'गुणात्मक' किस प्रकार के आँकड़े संग्रहित करना चाहता है? अथवा आँकड़ों से 'संख्यात्मक' या 'गुणात्मक' किस प्रकार के निष्कर्ष निकालने हेतु प्रेरित है? यह भी महत्त्वपूर्ण है कि शोधकर्त्ता शोध में 'प्रमापीकृत उपकरणों' का प्रयोग कर रहा है या शोधकर्त्ता को अपने शोध से संबंधित 'प्रमापीकृत उपकरण' उपलब्ध हैं अथवा नहीं? या फिर शोधकर्त्ता को अपने शोध उद्देश्यों हेतु उपकरण निर्माण स्वयं तो नहीं करना होगा?, इत्यादि।

उपर्युक्त विवरण के आलोक में सच है - शोध के दौरान आँकड़ों विशेष की प्राप्ति हेतु उपकरण चयन महत्त्वपूर्ण है। इसीलिए, अध्ययन के अंतर्गत अनुसंधानकर्त्ता द्वारा अनुसंधान की गुणात्मक प्रकृति के बरक्स वाँछित आँकड़ों के सग्रहण हेतु अग्रवर्णित उपकरण निर्मित किया गया।

3.5.1 'अर्धसंरचित साक्षात्कार अनुसूची'[40]

तथ्यगत विश्लेषण हेतु 'साक्षात्कार प्रक्रिया' महत्त्वपूर्ण है। अनुसंधान समस्या के आलोक में 'साक्षात्कार' प्रयोग "शोध समस्या का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त करने, शोध समस्या का अध्ययन करने, और शोध समस्या की जाँच करने में किया जाता है"।[41] साक्षात्कार, "बातचीत के माध्यम से विचारों के आदान-प्रदान की सबसे पुरानी विधि है; शायद, इतनी पुरानी जितनी कि मानव के सामाजिक जीवन का इतिहास; और अब यह सूचना प्राप्त करने की सबसे अधिक उपयोग में आने वाली विधि है"।[42]

---

[40] देखिए परिशिष्ट 1

[41] श्रीवास्तव 2000: 218-219

[42] रायजादा, वही: 338

साक्षात्कार प्रक्रिया के अंतर्गत शोधक द्वारा अपने अध्ययन से संबंधित वाँछित सूचना प्राप्त करने के लिए 'साक्षात्कारदाता' विशेष का 'साक्षात्कार' करने का लक्ष्य तय होता है। इस हेतु जो प्रश्नावली प्रयुक्त हो, उसे 'साक्षात्कार अनुसूची' कहते हैं। इस अनुसूची का इस्तेमाल 'व्यक्तिगत व सामूहिक साक्षात्कार' लेने में उपयोगी है। 'साक्षात्कार अनुसूचियाँ' सामान्यत: 'संरचित' और 'असंरचित' में विभाजित हैं, लेकिन 'साक्षात्कार' अनुसूची का एक प्रकार 'अर्धसंरचित साक्षात्कार अनुसूची' भी है। यह साक्षात्कार अनुसूची न तो असंरचित होती है और न ही पूरी तरह से संरचित। इस प्रकार की 'साक्षात्कार अनुसूची' में 'अर्धौपचारिक वातावरण' में पूर्वनिर्धारित उद्देश्यों के आधार पर रचित प्रश्नों का प्रयोग करने के संग 'साक्षात्कारदाता से स्पष्टीकरण हेतु या अधिक संबंधित जानकारी प्राप्ति हेतु, या पूर्वज्ञात तथ्यों की जाँच करने के लिए तत्काल रचित 'सहायक प्रश्नों' का प्रयोग भी होता है।

प्रस्तुत अनुसंधान में पाओलो फ्रेरे की 'शैक्षिक दृष्टि' व भारत की समकालीन परिस्थितियों विशेष के अन्तर्गत उपस्थित 'शैक्षिक परिदृश्य' को समझने व विश्लेषित-विवेचित करने के संदर्भ में 'व्यक्तिगत साक्षात्कार' लेने हेतु एक 'अर्धसंरचित साक्षात्कार अनुसूची' की रचना की गई। इस अनुसूची में 18 पूर्वनिर्धारित प्रश्नों के अतिरिक्त शोध की गुणात्मकता और समग्रता हेतु और शिक्षाविदों से बातचीत के माध्यम से प्राप्त सुझावों के फलस्वरूप एक अन्य 19वां प्रश्न बाद में जोड़ा गया। तदोपरांत, 'साक्षात्कार अनुसूची' का उपयोग कर उपर्युक्त 'प्रतिचयन विधि' के आधार पर चयनित 'स्नातक-परास्नातक शिक्षक-शिक्षा' से जुड़े 15 शिक्षाविदों से शोध उद्देश्यों की पूर्ति हेतु 'प्रत्यक्षत: व दूरभाषिक' 'व्यक्तिगत साक्षात्कार' से जानकारी व तथ्यों को 'रिकार्डिंग'[43] के ज़रिए एकत्रित कर शोध में शामिल किया गया।

[43] 15 शिक्षाविदों के नामों के लिए परिशिष्ट 3 देखिये

3.5.2 उपकरण का निर्माण व वैधता

उपर्युक्त उपकरण निर्माण हेतु अनुसंधानकर्त्ता ने प्रथमत: सम्बद्ध साहित्य समीक्षा कर अनुसंधान रिक्तियाँ पहचानी। तदोपरान्त, शोध उद्देश्यों के अंतर्गत प्रश्न निर्माण कर उपकरण की 'वैधता' वृद्धि हेतु उपकरण की उपर्युक्त 'प्रतिचयन विधि' के आधार पर चयनित 'स्नातक व परास्नातक शिक्षक-शिक्षा' से जुड़े 30 शिक्षाविदों से जाँच करवाई गई[44], ताकि शोध उद्देश्यों के तहत उपकरण की 'विषयवस्तु या अंतर्वस्तु वैधता' को बढ़ाया जा सके।

इसके अतिरिक्त, 'साक्षात्कारदाता' विशेष से प्राप्त जानकारी को अन्य व्यक्तियों से बातचीत कर व अध्ययन सामग्रियों का प्रयोग कर विश्लेषण द्वारा जाँचा-परखा भी गया, ताकि शोध में तर्कसंगत विवेचन-विश्लेषण प्रस्तुत किया जा सके।

3.5.3 उपकरण के प्रश्नों की प्रकृति

उपर्युक्त उपकरण में प्रश्नों की अग्रलिखित विशेषताएँ सन्निहित हैं –

3.5.3.1 'अर्धसंरचित साक्षात्कार अनुसूची' में सभी प्रश्न 'खुले मुख' वाले हैं, ताकि 'साक्षात्कारदाता' से अनुसंधान उद्देश्यों के तहत विस्तार से अधिकाधिक तथ्यगत सूचना प्राप्त की जा सके; व 'साक्षात्कारदाता' को बिना किसी झिझक या असहजता के अपनी बात उदाहरणों व तर्कों के साथ कहने का पूरा मौका मिल सके।

3.5.3.2 'अर्धसंरचित साक्षात्कार अनुसूची' में सभी प्रश्न गुणात्मक प्रकृति के हैं, ताकि आँकड़ों की प्राप्ति शोध के गुणात्मक विवेचन-विश्लेषण को तार्किक रूप से संभव बना सके; और जानकारियों में गहनता का समावेश हो सके।

3.5.3.3 यथासंभव 'अर्धसंरचित साक्षात्कार अनुसूची' के सभी प्रश्नों की भाषा को सरल रखा गया है; ताकि 'साक्षात्कारदाता' को प्रश्नों को समझने में

[44] जाँच हेतु निर्धारित प्रारूप में शिक्षाविदों को भेजी गई प्रश्नावली के लिए परिशिष्ट 2 देखिए।

कोई कठिनाई अनुभव न हो; और वह सहज रूप से वाँछित प्रतिक्रियाओं व जानकारियों को शाब्दिक रूप से अभिव्यक्त कर सकें।

3.5.3.4 उपकरण के प्रश्न पाओलो फ्रेरे के 'शैक्षिक विचारों', 'भारतीय समकालीन परिस्थितियों', फ्रेरे से सम्बद्ध 'तत्कालीन परिस्थितियों', व शिक्षा आबंधकता को विवेचित-विश्लेषित करते हैं, जिससे अनुसंधान उद्देश्यों सम्बन्धी वाँछित तथ्य प्राप्ति में वृद्धि हुई।

3.5.3.5 'अर्धसंरचित साक्षात्कार अनुसूची' में पहले से 'संरचित' प्रश्नों के अतिरिक्त 'तत्काल रचित' ऐसे प्रश्न भी सन्निहित थे, जो 'साक्षात्कारदाता' को प्रश्नों को स्पष्ट करने के लिए या 'साक्षात्कारदाता' द्वारा कही गई बात का स्पष्टीकरण जानने हेतु या 'साक्षात्कारदाता' से अधिकाधिक जानकारी प्राप्ति हेतु शोधकर्त्ता द्वारा पूछे गए थे। इन तत्काल रचित प्रश्नों की सहायता से प्राप्त जानकारी जटिल न होकर सहज रूप से प्रस्तुत हो पाती है।

3.6 आँकड़ों के संग्रहण या एकत्रीकरण की प्रक्रिया

शोधकर्त्ता ने शोध उद्देश्यों की पूर्ती हेतु अग्रलिखित प्रक्रिया का अनुपालन कर आँकड़ों के संग्रहण को सुनिश्चित किया –

3.6.1 पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक विचारों से संबंधित समग्र उपलब्ध पठनवस्तु का यथासंभव शोधन कर अग्रलिखित 'निर्धारित मापदण्ड' द्वारा प्राप्त सूचनाओं व तथ्यों को वर्गीकृत कर विवेचित-विश्लेषित किया गया।

3.6.2 समकालीन भारतीय परिस्थितियों के अंतर्गत शैक्षिक विचारों के अध्ययन में 'शिक्षा', 'समाजशास्त्र', 'राजनीतिशास्त्र', व 'अर्थशास्त्र' से जुड़ी उपलब्ध पठनवस्तु का यथासंभव विश्लेषण कर अग्रलिखित 'निर्धारित मापदण्ड' द्वारा प्राप्त सूचनाओं को वर्गीकृत कर विवेचित-विश्लेषित किया गया।

3.6.3 'अर्धसंरचित साक्षात्कार अनुसूची' का इस्तेमाल कर 'प्रत्यक्षत:' व 'दूरभाषिक' 'व्यक्तिगत साक्षात्कार' के ज़रिए ज़रूरी आँकड़ों अथवा जानकारी को एकत्रित किया गया। यह भी प्रयास किया गया कि 'साक्षात्कार'

'अनौपचारिक वातावरण' में संभव हो सके, ताकि 'साक्षात्कारदाता' को झिझक या असहजता न महसूस हो। 'साक्षात्कार' की परिपूर्णता हेतु 'सहायक प्रश्नों' व 'स्पष्टीकरण कथनों' का प्रयोग कर प्रश्न विशेष को स्पष्ट भी किया गया; ताकि अधिकाधिक तथ्य प्राप्ति व प्राप्त तथ्यों के पुनर्परीक्षण, स्पष्टीकरण अथवा पुनर्मूल्यांकन को सुनिश्चित किया जा सके। प्रश्नों को पूछते समय 'प्रश्नों के दोहराव' से भी बचा गया, अर्थात् यदि 'साक्षात्कारदाता' द्वारा अगले प्रश्न का जवाब भी पूर्व में पूछे गए प्रश्न में ही दे दिया गया हो, तो उनसे अगला प्रश्न विशेष नहीं पूछा गया।

इसी प्रकार, पूर्वनिर्धारित प्रश्नों के क्रम में भी 'साक्षात्कारदाता' द्वारा दिये गए उत्तरों के अनुसार आवश्यकतानुरूप परिवर्तन भी किया गया, ताकि 'साक्षात्कार प्रक्रिया' बाधित न हो। इसके अतिरिक्त, 'साक्षात्कारदाता' विशेष की सुविधानुसार कुछ साक्षात्कारदाताओं से अलग-अलग समय में एक से अधिक बार भी बातचीत की गई।

3.7 विश्लेषण हेतु निर्धारित शोध मापदण्ड

3.7.1 पाओलो फ्रेरे के 'शिक्षा सम्बन्धी विचार' -

3.7.1.1 परिस्थितियों विशेष के संदर्भान्तर्गत उन पक्षों अथवा विन्दुओं की पहचान व विश्लेषण करना, जिनके अंतर्गत पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक विचार रचित हुए।

(क) सामाजिक पक्ष

(ख) राजनीतिक पक्ष

(ग) आर्थिक पक्ष

3.7.1.2 पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक चिन्तन में सन्निहित 'शिक्षा के उद्देश्यों एवं पद्धतियों' की पहचान व विश्लेषण करना।

3.7.2 समकालीन भारतीय परिस्थितियाँ -

3.7.2.1 शिक्षा के संदर्भ में अंतक्रियात्मक पक्षों अथवा बिन्दुओं की पहचान व विश्लेषण करना।

(क) सामाजिक पक्ष

(ख) राजनीतिक पक्ष

(ग) आर्थिक पक्ष

3.7.3 पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक विचार और समकालीन भारतीय परिस्थितियाँ -

3.7.3.1 शिक्षा के सन्दर्भ में पाओलो फ्रेरे की 'तत्कालीन परिस्थितियों' व 'समकालीन भारतीय परिस्थितियों' में सन्निहित समरूपी पक्षों अथवा बिन्दुओं की पहचान व विश्लेषण करना।

(क) शैक्षिक-सामाजिक परिस्थितियाँ

(ख) शैक्षिक-राजनीतिक परिस्थितियाँ

(ग) शैक्षिक-आर्थिक परिस्थितियाँ

3.7.3.2 भारत की समकालीन नवीन व भिन्न परिस्थितियों के बरक्स बेहतर समझ हेतु पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक विचारों का विश्लेषण करना।

(क) शैक्षिक-सामाजिक परिस्थितियाँ

(ख) शैक्षिक-राजनीतिक परिस्थितियाँ

(ग) शैक्षिक-आर्थिक परिस्थितियाँ

3.8 आँकड़ों के विश्लेषण में प्रयुक्त 'तकनीक या उपागम'

प्रस्तुत अनुसंधान में, चूँकि प्राप्त आँकड़े गुणात्मक प्रकृति के हैं, इसलिए शोध के आँकड़ों का विवेचन करने के लिए शोधकर्त्ता द्वारा 'गुणात्मक-विश्लेषणात्मक तकनीक या उपागम' को प्रयुक्त किया गया। प्राप्त आँकड़ों को

गुणवत्तापरक विश्लेषण से जाँचा-परखा गया है, अर्थात् आँकड़ों को उपर्युक्त 'निर्धारित मापदण्ड' की सहायता से छोटे-छोटे हिस्सों में बाँटकर, हिस्सों को एक-दूसरे के साथ अंतर्संबंधित कर समग्र रूप से विश्लेषित किया गया है। गुणात्मक आँकड़ों की विवेचना के सम्बन्ध में कौल ने कहा है कि गुणात्मक आँकड़ों के विश्लेषण का अर्थ है – "व्यवस्थित सामग्री का उसमें निहित तथ्यों की खोज के लिए अध्ययन। यह अध्ययन यथासंभव दृष्टिकोणों से या तो नए तथ्यों को जानने या पहले से ज्ञात तथ्यों की पुन: व्याख्या हेतु होता है"।[45] ऐसे "विश्लेषण के लिए अधिकतर 'अंतर्वस्तु विश्लेषण', 'आगमनिक विश्लेषण', व 'तर्कसंगत विश्लेषण' का प्रयोग किया जाता है"।[46] इस अनुसंधानान्तर्गत चूँकि, अनुसंधान संबंधित तथ्य एकत्रण में विभिन्न लिखित सामग्रियों; जैसे - लेखों, शोधों, पुस्तकों, प्रलेखों अथवा दस्तावेज़ों, और सम्प्रेषण सामग्री; जैसे – 'बातचीत' अथवा 'साक्षात्कार' का इस्तेमाल हुआ है, इसलिए उपर्युक्त 'निर्धारित मापदण्ड' का प्रयोग करके प्राप्त आँकड़ों को विवेचित-विश्लेषित किया गया; और समकालीन भारतीय परिस्थितियों के बरक्स पाओलो फ़्रेरे के 'शैक्षिक विचारों' को गहनता के साथ समझा गया।

[45] कौल, वही: 201

[46] वही

अध्याय 4

विश्लेषण एवं निर्वचन (अर्थनिर्धारण)

अध्याय 4

विश्लेषण एवं निर्वचन (अर्थनिर्धारण)

4.1 विश्लेषण व निर्वचनगत परिप्रेक्ष्य

किसी भी अनुसंधान में उद्देश्य अभिपूर्ति हेतु प्राप्त तथ्यों, दत्तों या आँकड़ों के सम्यक विश्लेषण, व अर्थनिर्धारण की आवश्यकता होती है, ताकि निष्कर्षों तक पहुँचा जा सके। इस प्रकार निष्कर्षों तक पहुँचने के पीछे यह धारणा काम कर रही होती है कि "एकत्रित तथ्यों के ढेर के पीछे कहीं कुछ और महत्त्वपूर्ण तथा रहस्य बताने वाली कुछ और बात भी है; और सुव्यवस्थित तथ्यों को समस्त अध्ययन से संबंधित करने पर उनका महत्त्वपूर्ण-सा मान्य अर्थ प्रकट हो जाता है"।[47] अत:, तथ्यगत विश्लेषण के आलोक में "घटना का सप्रमाण निर्वचन किया जा सकता है; तथ्यों या आँकड़ों का विश्लेषण करना 'सारिणीयन या प्रक्रियाकरण' के बाद अगला महत्त्वपूर्ण कदम है"।[48] अत:, "एक अध्ययनकर्त्ता जब तथ्यों को 'प्रक्रियाकरण' के द्वारा उन्हें व्यवस्थित क्रम में रखकर उनका विश्लेषण और निर्वचन करता है, केवल तभी अध्ययन में वैज्ञानिकता का गुण आता है"।[49] अत:, शोध में आँकड़ों का विश्लेषण व अर्थनिर्धारण लोचशील 'पूर्वनिर्धारित मापदण्डों' की सहायता से किया जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचनान्तर्गत स्पष्ट है कि आँकड़ों के विश्लेषण का पर्याय है – तथ्यों में निहित "अर्थों को निर्धारित करने हेतु विषय सामग्री का अध्ययन करना, जटिल कारकों को खण्डित करके सरल अंशों में विभाजित करना, तथा व्याख्या के उद्देश्य से उन अंशों या अंगों को नवीन व्यवस्था के संदर्भ में

[47] त्रिवेदी और शुक्ला: 293

[48] वही

[49] वही: 264

संयोजित करना"।[50] इस प्रकार के विश्लेषण के लिए "सचेत, लचीले एवं सुलझे हुए मस्तिष्क की आवश्यकता होती है। प्रत्येक कदम पर सावधानी आवश्यक है। समानतायें, विविधताएँ, प्रवृत्तियाँ तथा महत्त्वपूर्ण कारण – सभी पर ध्यान देना चाहिए"।[51] इसके अलावा, आँकड़ों के विश्लेषण के लिए तथ्यगत सूचनाओं को बारीक हिस्सों में बाँटकर उन्हें पुनः संगठित करना चाहिए, जिससे तथ्यों के बीच नए सम्बन्धों का पता लगाया जा सके। इसके लिए "दत्तों का अध्ययन यथासंभव अधिक-से-अधिक दृष्टिकोणों से किया जाना चाहिए"।[52] इसके अलावा, आँकड़ों के विश्लेषण के तहत ध्यातव्य है कि "विश्लेषित परिणामों का अर्थनिर्धारण अथवा व्याख्या भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है। वस्तुत:, विश्लेषण अर्थनिर्धारण का एक पक्ष है"।[53] आँकड़ों व तथ्यों के अर्थनिर्धारण से ही विश्लेषण को गहराई से समझा जा सकना संभव हो पाता है।

उपर्युक्त विवेचित प्रक्रिया के अनुपालन के अंतर्गत प्रस्तुत अनुसंधान के उद्देश्यों के संदर्भ में आँकड़ों या तथ्यों का विश्लेषण व निर्वचन विस्तार अग्रलिखित है –

4.2 पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक विचारों पर तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव

पाओलो रेगलस नीव्स फ्रेरे का जन्म "लेटिन अमेरिका के देश ब्राज़ील के पेरनामब्यूको राज्य के रेसिफ़े नगर में 19 सितम्बर, 1921 को हुआ"।[54] उनका परिवार "चार बच्चों वाले मध्यमवर्गीय परिवार के तहत आता था"।[55] तभी, फ्रेरे लिखते हैं – "हमारी पारिवारिक स्थिति मध्यम वर्ग और कामगार के बीच

[50] सिंह और शर्मा 2004: 233

[51] वही

[52] वही

[53] रायजादा 1997: 460

[54] फ्रेरे और मसीडो 1998: 12

[55] राबर्ट्स 2000: 3

की थी"।[56] 'लैटर टू क्रिस्टीन' में लिखी टिप्पणी के अनुसार फ़्रेरे ने अपने बचपन में गरीबी और भूख के सम्बन्ध में अधोवर्णित "दो तरह के बच्चों के समूह देखे -

1. जिन्हें उनके परिवार की तरह अच्छा भोजन प्राप्त था।
2. उन बच्चों का समूह, जो बस्ती के सीमांतक पर रहता था व गरीबी और भूख से जूझता था"।[57]

इस प्रकार भूख व गरीबी से संबंधित उपर्युक्त दोनों परिस्थितियों से फ़्रेरे का बचपन अछूता नहीं था। वह "उत्पीड़ितों के शिक्षाशास्त्र" के माध्यम से व्यक्तियों में 'विघटनकारी परिस्थितियों' के प्रति चेतना चाहते थे। इसके अलावा, फ़्रेरे को "बचपन से ही 'सामंतवादी', 'पूंजीवादी', 'साम्राज्यवादी', 'नस्लवादी', और 'फ़ासीवादी' उत्पीड़न के विभिन्न रूप देखने को मिले"।[58] तभी, डोनेल्डो मसीडो के साथ बातचीत में फ़्रेरे कहते हैं कि – "जब मैंने उन विभेदनकारी प्रक्रियाओं से 'साक्षात्कार' किया, जो सामाजिक विघटन का भाग थीं; और जिनके अंतर्गत मेरा समाजीकरण हुआ था, तब से मैंने अपने अंदर आक्रोश का संचार महसूस किया"।[59] फ़्रेरे ने प्रत्यक्षत: कई बार सत्ता प्राप्त गोरे वर्ग द्वारा अपने काले सेवकों के साथ किए गए 'शाब्दिक अत्याचार' को देखा। उनके अनुसार यह "मनोवैज्ञानिक हिंसा का ही एक रूप है; व जिसमें काले लोगों को उप-मानव और कई दफ़ा पालतू पशुओं से भी गया-गुज़रा समझा जाता था"।[60] स्पष्टत:, फ़्रेरे 'सामाजिक शोषण' को 'सामाजिक एकीकरण' के मार्ग में एक चुनौती के रूप में देखते थे। इसीलिए वे उत्पीड़नकारी परिस्थितियों के प्रति 'सतत-सहभागी' संघर्ष को "उत्पीड़तों के शिक्षाशास्त्र" में पर्याप्त महत्त्व दिया करते थे।

---

[56] ओम्नी 1994: 184

[57] राबर्ट्स, वही

[58] फ़्रेरे 1997क: xiii

[59] फ़्रेरे और मसीडो 2001: 170

[60] वही

1929-1933 के विश्व आर्थिक संकट का ब्राज़ील की अर्थव्यवस्था पर भी प्रभाव पड़ा। ऐसे में फ्रेरे का परिवार दरिद्रता का शिकार हो गया। इसका प्रभाव फ्रेरे की शिक्षा पर भी पड़ा। तभी फ्रेरे कहते हैं – "1929 में शेयर बाज़ार में आई भारी गिरावट ने जब ब्राज़ील की अर्थव्यवस्था को प्रभावित करना आरंभ किया, तो मेरे परिवार के पास प्रायः खाने के लिए पर्याप्त भोजन नहीं होता था। मैं स्कूल में पीछे छूट गया"।[61] फ्रेरे ने जब सामाजिक संगठन को समझना चाहा, तो उन्हें लगा कि सामाजिक असंगतता का दोष नियती को नहीं दिया जा सकता, बल्कि इसके लिए सामाजिक गठन को समझना होगा। उन्हें लगा - सामाजिक गठन में असंगतता के उन कारणों को ढूँढ सकते हैं, जिसका सम्बन्ध लोगों की भूख व गरीबी अथवा शोषण से है। तभी, वह कहते हैं – "1929 में शेयर बाज़ार में आई भारी गिरावट से पहले हमारे परिवार की स्थिति कामगार और मध्यम वर्ग के बीच की थी। मेरे ऐसे दोस्त थे, जो मेरी अपेक्षा कम खाते थे और कहीं ज़्यादा फटे-पुराने कपड़े पहनते थे"।[62] फ्रेरे पर इन दोनों स्थितियों का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने यह महसूस किया कि समाज के गठन में ही कहीं कोई कमी है। इसलिए, वे अक्सर स्वयं से यह प्रश्न पूछा करते थे कि – "यह कैसे संभव है कि ईश्वर कुछ लोगों को गरीब रचना चाहता है, कुछ को अमीर?" इस सम्बन्ध में फ्रेरे ने माना - "समाज में जो वर्ग-भेद हैं, उसके लिए न तो ईश्वर को ज़िम्मेदार मानना चाहिए, न नियति को"।[63]

अतः, फ्रेरे का चिंतन बचपन से ही सामाजिक संरचना को 'नियतिवादी दृष्टिकोण' से परे 'आलोचनात्मक चेतनता' के अंतर्गत जानने-पहचानने की ओर अग्रसर होने लगा था, जिसकी स्पष्ट छाप उनके 'शिक्षा सम्बन्धी विचारों' पर पड़ी। उन्होंने प्रभुत्व की भूख को मानव की भोजन के प्रति भूख के बरक्स रखकर देखना शुरू कर दिया। वह यह समझने लगे थे - कुछ व्यक्तियों का कम भोजन प्राप्त करना और फटे-पुराने कपड़े पहनना व कुछ लोगों का बेहतर भोजन प्राप्त करना और अच्छे कपड़े पहनना मानवीय अक्षमताओं के कारण न होकर

[61] ओम्नी, वही

[62] वही

[63] वही

कुछ लोगों के 'प्रभुत्ववादी संगठित प्रयासों' का परिणाम है। तभी, उन्होंने "ग्यारह वर्ष की आयु में यह शपथ ली कि - दुनिया से भूख को कम करने के लिए मैं हर संभव उपाय करूँगा"।[64]

"जब फ्रेरे दस वर्ष के थे, तो उनका परिवार रेसिफ़े से 11 मील दूर जोबोआटाओ आ गया। उनके पिताजी ने कुछ समय 'आर्मी' में काम किया व बाद में 'मिल्ट्री पुलिस' में। बीमारी ने उन्हें सेवानिवृत्ति लेने के लिए मजबूर कर दिया; व सन् 1934 में उनकी मृत्यु हो गई"।[65] इसके बाद, "फ्रेरे की माता ने अपने बच्चों को अपने पति की मृत्योपरांत मिली पेंशन सहायता से पाला (लेटर टू क्रिस्टीना)"।[66] फ्रेरे के जीवन व शैक्षिक चिंतन पर अपनी माँ के विचारों का बड़ा प्रभाव पड़ा। अपनी माता के जीवन से उन्होंने विनम्र होना व यथार्थवादी होना सीखा। रामशक्ल पाण्डेय के अनुसार अपनी माँ से जुड़ी अधोलिखित दो घटनाओं[67], जिनका वर्णन फ्रेरे ने अमेरिका की 'ओम्नी पत्रिका' हेतु दिए 'साक्षात्कार' में किया है, ने फ्रेरे को शैक्षिक दृष्टि से यह सोचने के लिए प्रेरित किया कि दूसरों को प्यार किया जाए; व दूसरों की मदद की जाए।

4.2.1 पहली घटना

"एक दिन मेरे भाईयों और मैंने अपने पड़ोसी की मुर्गी पकड़ ली, जो हमारे बाड़े में घूम रही थी। हमने उसे मार डाला। मेरी माँ ने मुर्गी के चीखने की आवाज़ सुनी और वह दौड़ी आई। मैंने सोचा वह हमें दण्ड देगी; उस मुर्गी को पड़ोसी को लौटा देगी; और उससे हम लोगों को क्षमा कर देने के लिए कहेगी। किन्तु, उसने उसे उठाया, रसोई में गई, और हम सबने उसे खाया। उस दिन दोपहर का भोजन कितना सुंदर रहा। माँ बड़ी 'यथार्थवादी' थी। उसकी मृत्यु के बाद काफ़ी समय तक मैं इस घटना को भूले रहा। जब वह वहाँ खड़ी हुई थी, तो कभी मृत

[64] वही

[65] राबर्ट्स, वही: 4

[66] वही

[67] पाण्डेय 2005: 164

मुर्गी को देखती और कभी हम लोगों के चेहरों को। वह यह तय करने की कोशिश कर रही थी कि वह उस मुर्गी को लौटा दे या फिर हमें खिला दे। कई बार मुझे ताज़्ज़ुब हुआ है कि इस संकल्प में वह कितनी मानसिक हलचल से होकर गुज़री होगी"।

इस प्रकार, उपर्युक्त घटना के आधार पर यह कहा जा सकता है - फ्रेरे को 'यथार्थवादी' बनाने में उनकी माँ के व्यवहार की एक प्रमुख भूमिका थी। अपनी माँ के व्यवहार पर अनुचिंतन करने के कारण फ्रेरे यह देखने में समर्थ हो पा रहे थे कि आदर्शों के संग अपने आसपास की परिस्थितियों के 'वास्तविक ज्ञान' अथवा 'यथार्थ' को जानने की ज़रूरत भी है। तभी, फ्रेरे शोषण के शिकार लोगों की शोषण-मुक्ति के लिए शिक्षाशास्त्र के माध्यम से 'यथार्थवादी' होने को कहते हैं। उनके अनुसार "उत्पीड़ितों को अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष शुरू करने में समर्थ होने के लिए यथार्थवादी होना पड़ेगा। उन्हें उत्पीड़न के यथार्थ को ऐसी बंद दुनिया के रूप में हरगिज़ नहीं देखना चाहिए, जिससे निकल पाना संभव नहीं"।[68] इसके विपरीत, यथार्थ का ज्ञान अथवा 'यथार्थवादी' होना तो व्यक्ति को शोषण-मुक्ति के प्रयासों के प्रति आशावान बनाता है।

4.2.2 दूसरी घटना

"मेरे माँ मुझे किसी ऐसे स्कूल में प्रवेश दिलाना चाहती थीं, जिसमें पैसा न देना पड़े। एक दिन वह इसी तलाश में दिनभर भटकती रही, फिर लौटकर बोलीं - बेटे मुझे एक ऐसा आदमी मिला है, जो अपने स्कूल के दरवाज़े तेरे लिए खोल देगा। बस उसकी एक शर्त है; और वह यह कि - तुम पढ़ने-लिखने से प्यार करो। उस व्यक्ति ने मुझे अपने स्कूल में नाम लिखाने की अनुमती दे दी, हालाँकि मेरी माँ से उसका कोई परिचय नहीं था। वह स्कूल शहर के सर्वश्रेष्ठ स्कूलों में से एक था। उस व्यक्ति ने अपने उदाहरण द्वारा मुझे यह दर्शाया कि दूसरों को प्यार करना क्या होता है। उसी ने मुझे दूसरों की सहायता करने का महत्त्व समझाया। मुझे इस कथन पर कभी विश्वास नहीं हुआ कि - 'मैं अपना

[68] फ्रेरे, वही: 12

निर्माता स्वयं हूँ'। अपना निर्माण स्वयं करने वालों का अस्तित्व नहीं है। शहर के जिन कोनों में तथाकथित स्वनिर्मित लोग रहते हैं, वहाँ बहुत से अनाम लोग छिपे रहते हैं। हम अपने आपको अकेला नहीं रहने देना चाहते। मैंने अपने शिक्षण की समाप्ति उसी स्कूल में की थी"।

इस प्रकार उपर्युक्त घटना ने फ्रेरे को अपनी जटिल परिस्थितियों के प्रति आक्रोशित होने की बजाय मानवीय जटिलताओं को एक बड़े संदर्भ में समझने और 'प्रेमविहीनता की स्थिति' के विरुद्ध अग्रसर होने की प्रेरणा प्रदान की। यही सामाजिक प्रेरणा आगे चलकर उनके 'शिक्षा सम्बन्धी चिंतन' से जुड़ी।

सामाजिक संदर्भ देश विशेष की शासकीय परिस्थितियों से निरंतर प्रभावित रहता है। ध्यातव्य है - अपनी लाभ की स्थिति को दीर्घकालिक रखने हेतु राजसत्ता प्रायः जनता के विकट परिवेश के प्रति अनदेखी बनाए रखती है। असल में, लोगों का विकट स्थिति में पहुँच जाना सत्ता की निरंकुशता का पर्याय है। फ्रेरे ने स्वयं के जीवन में राजसत्ताई निरंकुशता के कई रूपों को क़रीब से देखा व सहा। उदाहरण के लिए – "1934 में जब पाओलो फ्रेरे तेरह वर्ष के थे, ब्राज़ील की कम्युनिस्ट 'पार्टी' ने 'फ़ासीवाद' तथा 'साम्राज्यवाद' के विरुद्ध मोर्चा बनाने के लिए जनता का आह्वान किया। फलस्वरूप, 1935 में 'नेशनल लिब्रेशन एलाएंस' नामक एक लोकप्रिय मोर्चा बना"।[69] यह एलायंस इसका प्रतीक था - लोग शोषण से त्रस्त थे। उत्पीड़न के विरुद्ध की जा सकने वाली विरोधी कार्रवाही के मद्देनज़र "देशी अल्पतन्त्र और विदेशी साम्राज्यवाद के सेवक 'गेटूलियो बर्गास' ने 'एलाएंस' पर प्रतिबंध लगा दिया। इसके बावज़ूद, जन-आंदोलन बंद नहीं हुए। कई दूसरे शहरों की तरह फ्रेरे के नगर 'रेसिफ़े' में भी सशस्त्र विद्रोह हुआ"।[70] इन क्रांतिकारी विरोधों को, यद्यपि ज़ोर-ज़बरदस्ती से कुचल दिया गया, तथापि लोगों के मन में क्रांतिकारी विचार पनपते रहे। इन सभी क्रांतिमय घटनाओं का प्रभाव फ्रेरे की किशोरावस्था पर पड़ा।

---

[69] फ्रेरे, वही: xiv

[70] वही: xv

इसके अतिरिक्त, साठ का दशक आते-आते लेटिन अमेरिकी देशों में 'साम्राज्यवाद' के कारण काफ़ी उथल-पुथल हो चुकी थी। कर्ज़ व सहायता के रूप में आया धन ब्राज़ील के कृषकों को मज़दूर वर्ग में बदल रहा था। इसके अतिरिक्त, फ्रेरे की तत्कालीन परिस्थितियों के शोषणकारी रहने के बावजूद क्रांतिकारी नेतृत्व की कमी व शासकों द्वारा "मिथ्या उदारता" का प्रकटीकरण करने के कारण जनता का विरोध केवल आक्रोश तक ही सीमित हो गया था। जनता के इस आक्रोश को दबाने के लिए ब्राज़ील में 'तानाशाही संस्कृति' का उपयोग किया गया। जो सरकार ज़रा-सा भी लोगों की भलाई का कार्य करने लगती, उसे साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा हटा दिया जाता। तभी, 1961 में ब्राज़ील में 'गोलार्ट' के नेतृत्व में बनी व्यापक जनवादी राष्ट्रीय मोर्चे की सरकार को अपनी प्रगतिशीलता व जनहितकारी कामों; जैसे - 'राष्ट्रीय साक्षरता अभियान' के चलते 1964 में तख़्ता पलट का सामना करना पड़ा। तदोपरांत, "सैनिक प्रशासन ने अमेरिकी 'सहायता' से ब्राज़ील का 'आधुनिकीकरण' करना शुरू किया; और साथ-ही शुरू किया ऐसा राजनीतिक दमन, जैसा ब्राज़ील के इतिहास में पहले नहीं घटा"।[71] इस दमन का प्रभाव फ्रेरे के चिंतन पर पड़ा। दमन के दौरान लोगों के सम्पूर्ण 'विधाई लोकतांत्रिक अधिकारों' को समाप्त कर दिया गया। लोकतंत्र के समर्थक लोगों को या तो मार डाला गया या जेलों में डालकर यातनाएँ दी गईं। इसके अतिरिक्त, शिक्षकों को भी नहीं बख़्शा गया। "शिक्षकों को, जिनमें आम लोगों के अलावा पादरी और 'प्रोफ़ेसर' भी थे, सबसे पहले पकड़ा गया। उनमें पाओलो फ्रेरे भी थे। उन्हें पहले तो पकड़कर जेल में डाल दिया गया; और फिर देश से निर्वासित कर दिया गया"।[72]

निर्वासन के दौरान फ्रेरे बोलिविया से होते हुए चिली पहुँचे। वहाँ उन्होंने 'यूनेस्को' व 'चिलियन इंस्टीट्यूट फॉर मैक्सिको एगरेरियन रिफॉर्म' से संबंधित 'साक्षरता कार्यक्रम' में हिस्सा लिया। चिली से फ्रेरे मैक्सिको पहुँचे व तत्पश्चात् अमेरिका। वहाँ उन्होंने पुस्तक लेखन, कार्यशाला आयोजन, इत्यादि का कार्य

[71] वही: xvii

[72] वही

किया। 1970 में फ्रेरे अमेरिका से स्विट्ज़रलैण्ड पहुँचे। स्विट्ज़रलैण्ड में फ्रेरे ने 'वर्ल्ड काउंसिल ऑफ चर्चेस' के 'साक्षरता कार्यक्रमों' में हिस्सा लिया। साक्षरता कार्यों के सम्बन्ध में फ्रेरे ने इस दौरान गिनी-बिसाऊ, मोज़ाम्बिक, इत्यादि अफ्रीकी देशों की यात्रा की। 1980 में ब्राज़ील में राजनीतिक परिवर्तन हुआ; और 1964 में हुए उत्पीड़न से ग्रस्त सभी व्यक्तियों को साधारण क्षमा प्रदान कर दी गई। तदोपरांत, पाओलो फ्रेरे ब्राज़ील वापिस लौटे। इस समय तक "वह विश्व प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री और अत्यंत लोकप्रिय तथा आदरणीय व्यक्ति बन चुके थे। निर्वासन के दौरान ही लिखी गई उनकी पुस्तक - 'पैडागोजी ऑफ ऑप्रेस्ड' अँग्रेज़ी तथा अन्य अनेक भाषाओं में अनूदित होकर दुनियाभर में धूम मचा चुकी थी"।[73]

इस प्रकार, उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि फ्रेरे को अपने 'क्रांतिकारी शैक्षिक विचारों' की वजह से अपने देश ब्राज़ील में 'राजनीतिक उत्पीड़न' का सामना करना पड़ा। फ्रेरे ने शिक्षा और राजनीति का गहराई से विश्लेषण किया और पाया कि शिक्षा राजनीतिक परिस्थितियों से प्रभावित होने के साथ-साथ उन क्रांतिकारी परिस्थितियों की रचना में भी सहायक होती है, जो 'उत्पीड़नकारी राजनीतिक परिस्थितियों' में बदलाव लाने के लिए लोगों को आलोचनात्मक रूप से चेतन बनाती हैं। लोगों को आलोचनात्मक रूप से चेतन बनने से रोकने के लिए जहाँ एक ओर, राजनीतिक व्यवस्था प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष विरोध का तरीका अपनाती है, वहीं दूसरी ओर वह यह बताने का प्रयास भी करती है कि उसे लोगों की विकट परिस्थितियों के प्रति सहानुभूति है। परन्तु, फ्रेरे ऐसा नहीं मानते। शिक्षा से जनता और शासक वर्ग के सम्बन्ध पर विचार करते हुए वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि – "शिक्षा राजनीति है; व जिस प्रकार राजनीति वर्गीय है, शिक्षा भी है"।[74]

अत:, फ्रेरे के शैक्षिक विचार तत्कालीन 'आर्थिक, राजनीतिक, व सामाजिक' परिस्थितियों के प्रभाव व परिणाम से रचित हुए थे। फ्रेरे ने शोषितों की स्थिति को 'आर्थिक, राजनीतिक, व सामाजिक', तीनों पक्षों में देखने का

[73] वही: xvii-xviii

[74] वही: xvii

प्रयास किया। उन्होंने स्पष्ट तौर पर यह पाया कि परिवार के वित्तीय हालात बच्चों के रहन-सहन व अंततः, उन की शिक्षा को प्रभावित करते हैं। फ्रेरे का अपना जीवन इसका प्रमाण है। फ्रेरे ने अपने जीवन में 'नस्लवाद' जैसी सामाजिक स्थिति को गहराई से अनुभव किया। उन्होंने पाया कि 'नस्लवाद' नियति द्वारा प्रदत्त कोई अकाट्य स्थिति नहीं है, बल्कि शोषणकारी व्यक्तियों के कारण है। ऐसी स्थिति सदैव बनी रहती है। इसके लिए शासकीय व्यवस्था सुधार हेतु प्रयासों का विरोध करती है। इसका एक प्रमुख कारण प्रभुत्व की असीमित लालसा को माना जा सकता है, जो पीढ़ियों तक जारी रहने के कारण एक ऐसी समाजिकता की निर्मिति हेतु अग्रसर हो जाती है, जिसमें एक ओर 'वस्तुपरकतावादी उत्पीड़क' होते हैं व दूसरी ओर, उत्पीड़कों द्वारा बनाए गए 'आत्मपरकतावादी उत्पीड़ित'। इन उत्पीड़ितों को 'आत्मपरकतावादी' स्थिति से निकालने के लिए फ्रेरे उत्पीड़कों द्वारा निर्मित शिक्षा प्रणाली के बरक्स एक ऐसे शिक्षाशास्त्र की रचना करना चाहते थे, जिसकी पद्धति उत्पीड़कों की उत्पीड़ितों को नियतीवादी बनाने वाली पद्धति से भिन्न हो; व व्यक्ति को मनुष्य और मानव को पूर्ण इंसान बनाने वाली हो। अपनी इस आकांक्षा की पूर्ति फ्रेरे उत्पीड़ितों के उस शिक्षाशास्त्र में पूरी होते पाते हैं, जिसकी निर्मिति उत्पीड़ितों द्वारा पूर्ण मनुष्यता की प्राप्ति हेतु 'सतत-सहभागी' संघर्ष करते हुए की जाएगी, ताकि उत्पीड़क अपनी 'आत्मलीनता' के प्रति व उत्पीड़ित अपनी 'आत्महीनता' के प्रति चेतन हो सकें। असल में, इस स्थिति की प्राप्ति 'प्रेमविहीनता की स्थिति' के विरुद्ध अग्रसरता का ही पर्याय है। फ्रेरे 'प्रेमविहीनता की स्थिति' के विरुद्ध अग्रसरता को मार्क्स से मिले आलोचनात्मक विचारों व ईसा मसीह से मिले प्रेम, विनम्रता व स्नेह रूपी विश्वास के योग के रूप में देखते हैं। उनके अनुसार - "एक शिक्षाशास्त्री के रूप में ईसा मसीह ने मुझे प्रभावित किया। मैं उनके अतिप्राकृत आयाम पर विचार नहीं कर रहा हूँ। मैं उनके एक मानवीय पक्ष को लेता हूँ। उनकी कथनी और करनी में परस्पर संगति थी"।[75] फ्रेरे की नज़र में ईसा मसीह स्नेहमयी थे; और एक महान शिक्षक थे। मार्क्स के सम्बन्ध में फ्रेरे कहते हैं कि – "मार्क्स ने मुझे

[75] ओम्नी, वही: 178

उत्तेजित किया। मार्क्स ने मुझे ऐसे उपकरण दिए, जिनके आधार पर मैं समाज के अंतर्विरोधों को समझ सकता था। मार्क्स ने मुझे मुक्त किया, ताकि मेरे मन में आक्रोश का संचार हो सके"।[76] असल में, फ्रेरे तर्क और विश्वास दोनों को साथ लेकर चलना चाह रहे थे। इसलिए वह कहते हैं कि – "ईसा मसीह से मैं मार्क्स की तरफ़ गया, किन्तु उनमें से किसी पर भी प्रश्नचिह्न लगाने के अपने अधिकार को मैंने कभी नहीं छोड़ा। जिन लोगों के शब्दों की आप सराहना करते हैं, उन्हें निगल नहीं सकते"।[77]

अत:, फ्रेरे तर्क से उपजे विश्वास और 'प्रेमविहीनता की स्थिति' के विरुद्ध 'सतत-सहभागी' संघर्ष को पर्याप्त महत्त्व देते हैं। इसी लिए वह 'संवाद' को उत्पीड़ितों में "आलोचनात्मक चेतना" जागृति का सशक्त माध्यम मानते हैं। उनके अनुसार "'संवाद' एक ऐसा तरीका बन जाता है, जिसमें मानव अपने मानव होने का अर्थ समझते हैं"।[78] असल में, फ्रेरे 'संवाद' के ज़रिए उत्पीड़ितों में दबे आक्रोश को "उत्पीड़ितों के शिक्षाशास्त्र" के माध्यम से एक ऐसी दिशा देना चाहते थे, जिससे उत्पीड़ित अपने आसपास की परिस्थितियों विशेष के प्रति सजग हो सकें, उसमें अपनी भूमिका को पहचान सकें, व उत्पीड़नकारी परिस्थितियों को बदलने हेतु 'सतत-सहभागी' संघर्ष की ओर इस प्रकार अग्रसर हो सकें कि उनके संग उत्पीड़कों का "मानुषीकरण" भी संभव हो सके। कुल मिलाकर यही फ्रेरे के शिक्षा-दर्शन का सार माना जा सकता है।

4.3 पाओलो फ्रेरे के 'शिक्षा सम्बन्धी विचार'

पाओलो फ्रेरे के चिंतन में "अपने समय की प्रमुख विचारधारों – 'ऐतिहासिक भौतिकवाद', 'हेगेलीय द्वन्द्ववाद', 'अस्तित्ववाद', और 'परिघटनाशास्त्र' के विकसित रूपों का संश्लेषण मिलता है"।[79] इसी लिए उनके शिक्षा सम्बन्धी विचारों ने शिक्षकों, शिक्षाविदों, समाजविज्ञानियों,

[76] वही: 178-179

[77] वही: 178

[78] फ्रेरे, वही: 49

[79] वही: xix

धर्मविज्ञानियों, दर्शनशास्त्रियों, अर्थशास्त्रियों, राजनैतिक संघर्षकर्मियों, जन-आंदोलनकर्मियों और व्यवस्था-सुधारकों, इत्यादि को शिक्षा उद्देश्यों एवं पद्धतियों पर पुनर्विचार करने की प्रेरणा दी।

पाओलो फ्रेरे का शिक्षा-दर्शन उस समय विस्तार पाता है, जब अमेरिका में वर्ग-संघर्ष की राजनीति एक बड़ा विकराल रूप ले चुकी थी। यह समय पहली समाजवादी सरकार की स्थापना का समय था। "अफ्रीका और लैटिन अमेरिका में चल रहे मुक्ति आंदोलनों के कारण प्रगतिशील शक्तियों की स्थिति मजबूत हो रही थी"।[80] इसलिए, "अमेरिका ने 'एलाएंस फॉर प्रोग्रेस' परियोजना के तहत दक्षिणी अमेरिका के देशों में 'आर्थिक, राजनीतिक और शैक्षिक' कार्यक्रम चलाने के लिए अपनी तिजोरियाँ खोल दी थीं। ब्राज़ील का 'राष्ट्रीय साक्षरता अभियान' भी उसी पैसे से चलाया गया था"।[81] इस प्रकार चलाये गए तथाकथित साक्षरता अभियानों ने केवल उत्पीड़ित जनता को दबाने का ही काम किया। आगे चलकर "1963 में ब्राज़ील में हुए ईसाई धर्माध्यक्षों के राष्ट्रीय सम्मेलन में फ्रेरे की 'साक्षरता पद्धति' को चर्च के शैक्षिक कार्यक्रमों के लिए स्वीकृत किया गया"।[82] इसी प्रकार "1970 में जिनेवा की 'वर्ल्ड काउंसिल ऑफ चर्चेज' ने फ्रेरे को अपने शिक्षा-विभाग के सलाहकार के रूप में नियुक्त किया"।[83] इन सभी कारणों से भी उस वक़्त फ्रेरे के अधोवर्णित शिक्षा सम्बन्धी विचारों को व्यापक प्रचार-प्रसार मिला था। इसके अलावा, वैश्विक पटल पर कई शिक्षा चिंतकों को शिक्षा में नवाचारों को और अनुसंधान प्रवृत्ति को अपनाने की अभिप्रेरणा मिली। फलस्वरूप, शैक्षिक प्रयोगों को बढ़ावा मिला, पढ़ने-पढ़ाने के तरीकों पर प्रायोगिक अनुचिंतन में वृद्धि हुई, शिक्षा व्यवस्थापक सम्यक नीतियों को अपनाने को बाध्य हुए; और शिक्षा में 'आलोचनात्मक चिंतन' को केंद्र में रखकर सोचा जाने लगा।

---

[80] वही

[81] वही

[82] वही: xx

[83] वही

4.3.1 "समस्या-उठाऊ शिक्षा" अथवा "शिक्षा की समस्या-उठाऊ अवधारणा" अथवा "संवादात्मक शिक्षा" अथवा "शिक्षा की संवादात्मक अवधारणा"

"समस्या-उठाऊ शिक्षा" से अभिप्राय ऐसी शिक्षा से है, जिसमें "जमा करने वाले उद्देश्य"[84] का स्थान "मनुष्यों की समस्याओं को विश्व से उनके सम्बन्धों की समस्याओं के रूप में"[85] उठाने वाला उद्देश्य ले लेता है, अर्थात् "समस्या-उठाऊ शिक्षा" में शिक्षक व छात्र सहभागी भूमिका को अपनाकर तथा यह मानकर कि यथार्थ निरंतर बदलता रहता है, तदनुरूप मानव-विश्व सम्बन्धों में भी लगातार बदलाव आता है, जीवन के सम्मुख आई जटिलताओं को विश्व की घटनाओं से जोड़कर व 'संवाद' और आलोचनात्मक नज़रिए के अंतर्गत रखकर 'परिवर्तनशील वास्तविकता' को सतत विवेचित-विश्लेषित करने का प्रयास करते हैं। "समस्या-उठाऊ शिक्षा" को अधोवर्णित संदर्भों में भली-भाँति समझा जा सकता है।

4.3.1.1 शिक्षक-छात्र सम्बन्ध

"समस्या-उठाऊ शिक्षा" में शिक्षक व छात्र श्रवणकारी वस्तुएँ न होकर एक-दूसरे को शिक्षित करने वाले दो मनुष्य बन जाते हैं। ऐसा उन दोनों के बीच स्थित 'संवाद प्रक्रिया' के कारण संभव हो पाता है। इससे दो नए पद सामने आते हैं – "शिक्षक-छात्र"[86] व "छात्र-शिक्षक"[87]। अन्य शब्दों में, "समस्या-उठाऊ शिक्षा" में शिक्षक-छात्र सम्बन्ध सहभागी अन्वेषण-विश्लेषण से जुड़े होते हैं, जिसमें जहाँ एक ओर शिक्षक, शिक्षार्थियों को समीक्षाई चेतन बनाते हैं, वहीं दूसरी ओर छात्र भी शिक्षकों को आलोचनात्मक रूप से सतत चेतनशील बने रहने में मददगार होते हैं। अत:, "समस्या-उठाऊ शिक्षा" में "न तो कोई दूसरे को शिक्षित करता है, न स्वयं को। यहाँ मनुष्य एक-दूसरे को

---

[84] वही: 41

[85] वही

[86] वही: 53

[87] वही

शिक्षित करते हैं; और उनके बीच में होता है - विश्व, अर्थात वे संज्ञेय वस्तुएँ, जो 'बैंकीय शिक्षा' में शिक्षक की वस्तुएँ होती हैं"।[88]

4.3.1.2 शिक्षक की भूमिका

"समस्या-उठाऊ शिक्षा" में "शिक्षक एक जगह 'संज्ञानात्मक' और दूसरी जगह 'वर्णात्मक' नहीं होता। वह हमेशा 'संज्ञानात्मक' होता है; चाहे वह शिक्षा की कोई परियोजना तैयार कर रहा हो या छात्रों से 'संवाद' कर रहा हो"।[89] इस रूप में 'समस्या-उठाऊ शिक्षक' एक ऐसे चिंतनशील व चेतनशील प्राणी की भूमिका में होता है, जो 'संवाद प्रक्रिया' के माध्यम से छात्रों संग स्वयं व विश्व को समझने के वास्ते अन्वेषण में जुटा हो।

"समस्या-उठाऊ शिक्षा" में "शिक्षक महज़ वह नहीं रहता - 'जो पढ़ाता है'; छात्रों से 'संवाद' करते समय स्वयं भी उनसे पढ़ता है"।[90] इस प्रकार, 'समस्या-उठाऊ शिक्षक', मूलतः शिष्यत्व को प्राप्त शिक्षक अथवा "शिक्षक-छात्र"[91] होता है, जिसके अंदर सीखाने की बजाय निरंतर सीखने का तत्त्व होता है। वस्तुतः, वह छात्रों संग स्वयं को आलोचनात्मक रूप से सतत चेतनशील रखने का प्रयास करता है, अन्यथा शिक्षक-छात्र सम्बन्ध "बैंकीय शिक्षा" के "उन लम्बवत् साँचों ('पैटर्न')"[92] की भाँति बन सकते हैं, जिसके एक तरफ़ शिक्षक सर्वज्ञाता होता है; और दूसरी तरफ़ छात्र खाली बर्तनों की तरह, जिन्हें शिक्षक द्वारा सूचना रूपी ज्ञान से भरा जाना होता है।

इस प्रकार "समस्या-उठाऊ शिक्षा" में शिक्षक छात्रों का निर्देशक न होकर, वस्तुतः मार्गदर्शक है; वह स्वयं को इतना 'चेतनशील' रखता है कि वह छात्रों से भी सीख सके।

---

[88] वही: 41

[89] वही: 42

[90] वही: 41

[91] वही: 53

[92] वही: 41

4.3.1.3 छात्रों की भूमिका

"समस्या-उठाऊ शिक्षा" में छात्र "आलोचनात्मक सह-अनुसंधानकर्त्ता"[93] होते हैं; वे "दब्बू श्रोता"[94] नहीं रहते। बल्कि, 'संवादकर्मी अथवा "छात्र-शिक्षक"[95] अथवा विश्लेषण-विवेचन करने वाले अन्वेषक बनकर सम्मुख आईं समस्याओं को विश्व की घटनाओं-प्रक्रियाओं के साथ जोड़कर विश्लेषित करते हैं। तभी, फ्रेरे "समस्या-उठाऊ शिक्षा" में छात्रों के संदर्भ में लिखते हैं कि – "छात्र भी वे नहीं रहते 'जो पढ़ते हैं', बल्कि शिक्षक से 'संवाद' करते समय पढ़ने के साथ-साथ पढ़ाते भी हैं"।[96]

"समस्या-उठाऊ शिक्षा" में छात्रों की "समझ उतरोत्तर अधिक आलोचनात्मक होती जाती है"[97], क्योंकि 'समस्या-उठाऊ छात्र' अपनी व अन्यों की वास्तविक स्थिति और परिस्थितियों को विश्व की सतत प्रक्रियाओं के साथ जोड़कर विवेचित-विश्लेषित करते हैं। इससे वे मानवीय जटिलताओं को एक बड़े सामाजिक फ़लक के संदर्भ में रखकर देख पाते हैं; और इन जटिलताओं का बेहतर हल निकाल पाते हैं। तभी, फ्रेरे लिखते है कि – "छात्र ज्यों-ज्यों स्वयं को विश्व में और विश्व के साथ रखकर देखने से उत्पन्न होने वाली समस्याओं का सामना करते हैं, त्यों-त्यों उन्हें उतरोत्तर चुनौती मिलती है; और वे उसका सामना करना अपना कर्त्तव्य समझने लगते हैं"।[98] फ्रेरे के अनुसार छात्र इस चुनौती को बड़े संदर्भ में दूसरी जटिलताओं संग जोड़ लेते हैं; और "जब वे इस चुनौती का जवाब देते हैं, उनके सामने नई चुनौतियाँ आती हैं, जिनसे नई सूझबूझ पैदा होती है; और छात्र धीरे-धीरे स्वयं को प्रतिबद्ध मानने लगते हैं"।[99] इस प्रकार, 'समस्या-उठाऊ छात्र' मानवीय

---

[93] वही: 42
[94] वही
[95] वही: 53
[96] वही: 41
[97] वही: 42
[98] वही
[99] वही

समस्याओं को एक बड़े संदर्भ में विवेचित-विश्लेषित करने के कारण नवीन सूझबूझ से ओत-प्रोत होते हैं। वे विश्व की समस्याओं को अड़चन की बजाय ज्ञान प्राप्ति की संभावना समझते हैं, जो उन्हें नवीन संदर्भों से जोड़ती है। ये नवीन संदर्भ 'समस्या-उठाऊ छात्र' को विश्व के प्रति 'आलोचनात्मक रूप से चेतन' बनाते हैं।

4.3.1.4 ज्ञान

"समस्या-उठाऊ शिक्षा" में ज्ञान 'अविष्कारी और पुनराविष्कारी' है, क्योंकि "समस्या-उठाऊ शिक्षा" में यथार्थ परिवर्तनशील होता है; और चूँकि, मानवीय परिस्थितियाँ विश्व की प्रक्रियाओं से जुड़ी हैं, तो मानवीय समस्याओं के निदान और सुलझाव से उपजा ज्ञान भी परिवर्तनशील होता है, अर्थात् "समस्या-उठाऊ शिक्षा" में ज्ञान का निर्माण सततशील है। अन्य शब्दों में, "समस्या-उठाऊ शिक्षा" मनुष्यों को ऐसे प्राणी मानती है, जो संभवन की प्रक्रिया में हैं; और ऐसे यथार्थ के अंदर तथा उसके साथ रहते हैं, जो उन्हीं की तरह अधूरा और संभव होता हुआ यथार्थ है"।[100] अतः, वास्तविकता व मानवीय समस्याओं से जुड़ा ज्ञान परिवर्तनशील होता है। "समस्या-उठाऊ शिक्षा" में शिक्षक व छात्र 'संवाद प्रक्रिया' के माध्यम से ज्ञान का सतत निर्माण करते हैं। इस रूप में वे अपने व विश्व के सम्बन्धों के बारे में बेहतर समझ प्राप्त करते हैं। ये समझ उन्हें यथार्थ को ज्यों-का-त्यों स्वीकार करने से रोकती है; और यथार्थ से जुड़े कई पक्षों के प्रति आलोचनात्मक बनाती है। वस्तुतः, इसी से ज्ञान 'अविष्कारी और पुनराविष्कारी' होता है।

4.3.1.5 'सक्रियता' व 'सृजनात्मकता'

"समस्या-उठाऊ शिक्षा" में छात्र "आलोचनात्मक चेतना" से 'लैस' 'संवाद प्रक्रिया' में शिक्षक संग संलग्न होते हैं। उनके लिए ज्ञान अविष्कारी-पुनराविष्कारी होता है। वे "शिक्षक से 'संवाद' करते समय पढ़ने के साथ-साथ

[100] वही: 45

पढ़ाते भी हैं"।[101] इस रूप में "समस्या-उठाऊ शिक्षा" में छात्रों की सक्रियता "बैंकीय शिक्षा" के छात्रों की सक्रियता की भाँति मशीनीकृत अथवा अनुपालक की नहीं होती, बल्कि उनकी सक्रियता "आलोचनात्मक चेतना" का पर्याय व समस्याओं के समाधान की ओर प्रवृत्त होती है। वास्तव में, इसे सृजनात्मकता का आधार माना जा सकता है, क्योंकि आलोचनात्मक रूप से चेतन मनुष्य ही समाज में 'प्रेमविहीनता की स्थिति' को बड़े संदर्भ में समझकर उसके समाधान की ओर बढ़ सकता है। अन्य शब्दों में, एक सृजनात्मक सोच वाला व्यक्ति ही पूर्ण मनुष्य बन सकता है। इस सम्बन्ध में फ्रेरे लिखते हैं कि – "'समस्या-उठाऊ शिक्षा' सृजनात्मकता को अपना आधार बनाती है; तथा यथार्थ पर सच्चा चिंतन और कर्म हेतु अग्रसर करती है। कारण यह है – 'जिज्ञासा' और 'सृजनात्मक रूपान्तरण' में संलग्न होने पर ही 'प्रामाणिक मनुष्य' बन सकते हैं"।[102]

अत:, 'समस्या-उठाऊ छात्र' यथार्थ पर सतत चिंतन करने के कारण व मानवीय समस्याओं को बड़े वैश्विक संदर्भ में देखने के कारण 'वास्तविक-सक्रिय' अथवा 'सृजनात्मक' होते हैं; 'समस्या-उठाऊ छात्र' विश्व की समस्याओं के पीछे छिपी वास्तविकताओं के प्रति ज्ञानी होते हैं, अर्थात् विश्व में घट रहीं जटिलताओं को लेकर जब छात्र चेतन व आलोचनात्मक होते हैं, तो उनकी प्रतिक्रिया सही अर्थों में तभी वास्तविक सक्रियता में बदल जाती है। ऐसे में जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वह उनके यथार्थ से आबंधित होता है। असल में, छात्रों को अधिगम को इसी रूप में लेना चाहिए, क्योंकि इसी प्रकार का अधिगम उन्हें सामाजिक जटिलताओं के हल की ओर अग्रसर करता है। इस अधिगम रूपी अग्रसरता को नवीन ज्ञान की सतत सृजनशीलता के रूप में भी समझा जा सकता है।

उपर्युक्त विश्लेषण अधोरचित आरेख अथवा आकृति 1 के माध्यम से समझा जा सकता है –

---

[101] वही: 41

[102] वही: 44-45

आकृति 1

'समस्या-उठाऊ शिक्षा' अथवा 'संवादात्मक शिक्षा'

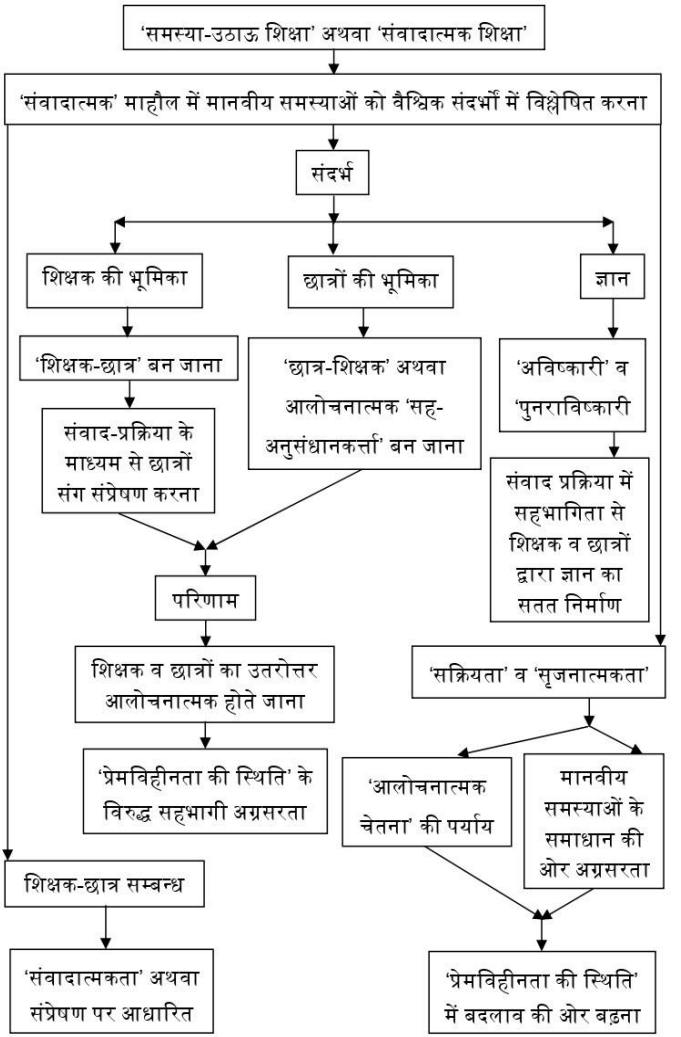

4.3.2 "बैंकीय शिक्षा" बनाम "समस्या-उठाऊ शिक्षा" ("संवादात्मक शिक्षा")

"बैंकीय शिक्षा" व "समस्या-उठाऊ शिक्षा" ("संवादात्मक शिक्षा") के संदर्भ में पूर्वोक्त विश्लेषण के आधार पर निम्नांकित अंतर किए जा सकते हैं –

तालिका 1

"बैंकीय शिक्षा" बनाम "समस्या-उठाऊ शिक्षा" ("संवादात्मक शिक्षा")

"बैंकीय शिक्षा"	"समस्या-उठाऊ शिक्षा"
इसमें शिक्षक 'वर्णनकारी कर्त्ता' व छात्र 'दब्बू श्रोता' की भूमिका निष्पादित करते हैं।	इसमें शिक्षक 'संज्ञानकारी कर्त्ता' व छात्र 'संवादकर्मी' की भूमिका निष्पादित करते हैं।
इसमें यथार्थ एक तथ्य होता है।	इसमें यथार्थ सतत परिवर्तनशील होता है।
इसमें मनुष्य व विश्व अलग-अलग होते हैं।	इसमें मनुष्य व विश्व एक-दूसरे पर असर डालते हैं।
यह प्रेषण से आबंधित है।	यह संप्रेषण अथवा 'संवाद' से आबंधित है।
ऐसी शिक्षा के समर्थक यांत्रिकता में भरोसा करते हैं।	ऐसी शिक्षा के समर्थक सृजनात्मकता में भरोसा करते हैं।
यह शिक्षा 'आचरण' की विरोधी होती है।	यह शिक्षा 'चिंतन व कर्म में पूरकता' की समर्थक होती है।
इसमें "संकीर्णतावाद" व 'प्रतिक्रिवाद' को बल मिलता है।	इसमें "आलोचनात्मक चेतना" पर बल होता है।
इसमें उद्देश्य - समाज के अनुरूप मनुष्यों को ढालना है।	इसमें उद्देश्य - शोषणकारी सामाजिक जटिलताओं को बदलना है।
ऐसी शिक्षा में सूचना ही ज्ञान है।	ऐसी शिक्षा में मनुष्य-विश्व सम्बन्ध को समझना ज्ञान है।
यह शिक्षा व्यक्ति की समस्याओं को उसके आलस, कामचोरी व अक्षमता का परिणाम मानती है।	यह शिक्षा व्यक्ति की समस्याओं को समग्र वैश्विक प्रक्रियाओं के संदर्भ में विवेचित-विश्लेषित करती है।

4.3.3 "यथार्थ वास्तव में एक प्रक्रिया है, जो निरंतर बदलती रहती है"।[103]

फ्रेरे का मानना है कि व्यक्ति के आसपास की परिस्थितियाँ निरंतर परिवर्तनशील हैं; और इस परिवर्तन का प्रभाव व्यक्ति के जीवन पर लगातार पड़ता रहता है। परन्तु, "बैंकीय शिक्षा" के अंतर्गत छात्र इस प्रभाव से अनजान ही बने रहते हैं। फ्रेरे के अनुसार "बैंकीय शिक्षा" में शिक्षक द्वारा छात्रों को प्रदान किए गए सूचना रूपी ज्ञान का उनके अनुभव जगत से सम्बन्ध नहीं होता। तभी वह लिखते हैं - "बैंकीय दृष्टिकोण का उपयोग करने वाले जानबूझकर या अनजाने ही (अनजाने इसलिए कि वे जो कुछ कर रहे हैं, वह केवल अमानुषिक बनाने वाला काम है) यह देखना भूल जाते हैं कि उनकी 'जमाओं' में यथार्थ के बारे में"[104] पर्याप्त समझ नहीं है। इन अंतर्विरोधों का समाधान भी तब तक संभव नहीं है, जब तक छात्र यह न समझ लें कि वे और जगत एक-दूसरे पर असर डालते हैं; और इस नाते दोनों ही परिवर्तनशील हैं, अर्थात् वास्तविकता का ज्ञान परिवर्तनशील है; और "ज्ञान होता है - अविष्कार और पुनराविष्कार करने से, उस बेचैन, अधीर, सतत और आशायुक्त जिज्ञासा से, जिसकी पूर्ती के लिए मनुष्य विश्व में, विश्व के साथ और एक-दूसरे के साथ सक्रिय हैं"।[105] सारतः - "बैंकीय शिक्षा" शिक्षक की यथार्थ के बारे में 'वस्तुपरकतावादी समझ' को ही छात्रों की समझ में रूपांतरित करती है, ताकि छात्र कभी न जान पाएँ कि वे भी ज्ञान का निर्माण कर सकते हैं, अथवा अपने आसपास की चीज़ों को स्वयं पहल कर समझ सकते हैं व बदल सकते हैं; तथा "वे भी शिक्षक को शिक्षित करते हैं"[106], अर्थात् "बैंकीय शिक्षा" के अंतर्गत यथार्थ की परिवर्तनशीलता में यकीन न करके यथार्थ को अकाट्य समझा जाता है, जिसे सूचना के रूप में अपने पास सहेजकर रखा जा सकता है।

उपर्युक्त विश्लेषण को अधोरचित आरेख अथवा आकृति 2 के माध्यम से समझा जा सकता है –

---

[103] वही: 37

[104] वही: 36

[105] वही: 34

[106] वही

आकृति 2

यथार्थ एक प्रक्रिया के रूप में

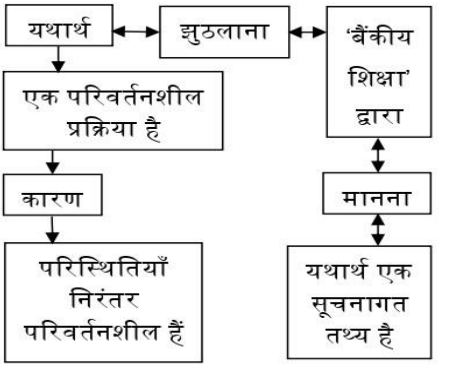

4.3.4 "पारस्परिक मानुषीकरण"

दो व्यक्तियों में "पारस्परिक मानुषीकरण" का अर्थ उस प्रक्रिया से है, जिसमें दोनों व्यक्ति अपने आसपास की परिस्थितियों व 'प्रेमविहीनता की स्थिति' के प्रति आलोचनात्मक रूप से चेतन हो पाते हैं। चूँकि, "बैंकीय शिक्षा" में "आलोचनात्मक चेतना" की कोई जगह नहीं होती, इसलिए उसके अंतर्गत शिक्षक व छात्रों के बीच "पारस्परिक मानुषीकरण" संभव नहीं हो पाता। फ्रेरे की दृष्टि में शिक्षा व्यवस्था के संदर्भ में "पारस्परिक मानुषीकरण" मानववादी और क्रांतिकारी शिक्षक द्वारा फलीभूत हो सकता है। इस संभावना के सम्बन्ध में वह लिखते हैं कि – "'मानववादी' और 'क्रांतिकारी शिक्षक' के प्रयास तो आरंभ से ही छात्रों के प्रयास से मेल खाने वाले होने चाहिए, ताकि वह और उसके छात्र आलोचनात्मक चिंतन और 'पारस्परिक मानुषीकरण' के अन्वेषण में संलग्न हो सकें"।[107] अत:, "पारस्परिक मानुषीकरण" हेतु एक-दूसरे को सुनने की सहनशीलता की परम ज़रूरत है। इसके लिए विनम्रता का होना ज़रूरी होता है। इसके बिना दो व्यक्तियों में 'संवाद' संभव नहीं हो पाता; और व्यक्ति आलोचनात्मक रूप से चेतन होने

[107] वही

की बजाय 'मतारोपण' में संलग्न हो जाते हैं। तभी, व्यक्तियों में वैयक्तिक स्तर पर "आचरण" करने का भाव भी विद्यमान होना चाहिए, अन्यथा व्यक्ति 'प्रतिक्रियावाद' व "संकीर्णतावाद" में उलझ सकते हैं। अत:, "पारस्परिक मानुषीकरण" के लिए व्यक्तियों में अधोलिखित बिन्दुओं का होना आवश्यक माना जा सकता है -

- "आचरण" करना अथवा "चिंतन व कर्म में पूरकता"
- विनम्रता
- 'प्रेमविहीनता की स्थिति' के विरुद्ध अग्रसरता

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है - दो व्यक्ति विनम्र "आचरण" के ज़रिए एक-दूसरे की आसपास की जटिलताओं को समझने में इस प्रकार सहायक हो सकते हैं कि उनके प्रयास शोषणकारी जटिलताओं को बदलने की ओर अग्रसर हो सकें। बड़े संदर्भों में यह 'सामाजिक रूपान्तरण' है, जिसमें सभी मनुष्यता से भरे हुए होंगे; और एक-दूसरे को लेकर संवेदनशील होंगे। इस संवेदनशीलता में अधोलिखित बिन्दु अंतर्निहित हैं –

- मनुष्य की कथनी और करनी में पूरकता होना।
- व्यक्ति का अन्यों के प्रति समानुभूति रखना।
- मिलकर समस्याओं का हल तलाश करना।
- असंवेदनशीलता का त्याग।
- मनुष्य की सृजनात्मक सोच में विश्वास।
- शोषणकारी परिस्थितियों की सम्पूर्ण समझ।
- संवाद को अपनाना।
- सतत-सहभागी प्रयास की ओर अग्रसरता।

उपर्युक्त विश्लेषण को अधोरचित आरेख अथवा आकृति 3 के माध्यम से समझा जा सकता है -

आकृति 3

'पारस्परिक मानुषीकरण'

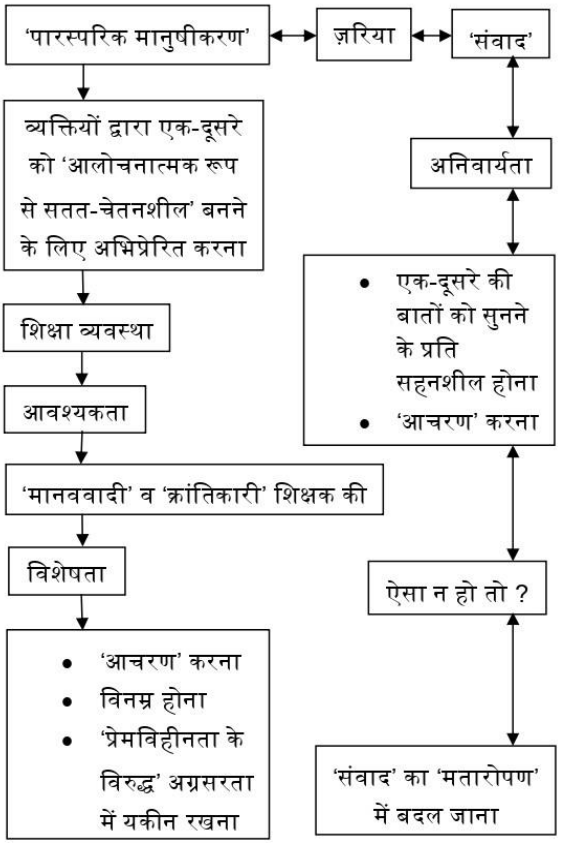

4.3.5 "शिक्षित मनुष्य अनुकूलित मनुष्य होता है"।[108]

फ्रेरे के इस कथन का अर्थ है - "बैंकीय शिक्षा" के अंतर्गत सूचना रूपी ज्ञान की शिक्षा प्रदान कर शिक्षित किया गया व्यक्ति आलोचनात्मक रूप से

[108] वही

चेतन होने की बजाय विश्व को ज्यों-का-त्यों मान लेता है। यह उत्पीड़नकारी तंत्र के उस तथाकथित अनुकूलन के अनुरूप होता है, जिसमें उत्पीड़ित व्यक्ति कभी भी यह जान नहीं पाता कि वह उत्पीड़ित है, बल्कि "बैंकीय शिक्षा" द्वारा "शब्दाडंबर वाले पाठ, पाठ्यक्रम का ऊलजलूल निर्धारण, 'ज्ञान' के मूल्यांकन की पद्धतियाँ, शिक्षक और छात्र के बीच की दूरी, परीक्षा पास करने से संबंधित मापदण्ड"[109], इत्यादि के प्रयोग से शोषित व्यक्ति में निहित व्यवस्था के प्रति आक्रोश के भाव को न्यूनतम कर, उसे व्यवस्था को पोषण देने वाले की भूमिका में ढाल दिया जाता है।

ऐसा मनुष्य व्यवस्था पोषक "अनुकूलित मनुष्य" होता है। "अनुकूलित मनुष्य" की "यह अवधारणा व्यवहार में आने पर उत्पीड़कों के प्रयोजनों के लिए बड़े काम की होती है, क्योंकि उनका सुख-चैन इसी पर निर्भर करता है कि उनके द्वारा निर्मित विश्व में मनुष्य कितनी अच्छी तरह 'फिट' होते हैं"।[110]

वस्तुतः, "बैंकीय शिक्षा" में व्यक्तियों को ऐसे शिक्षित करते हैं कि वे सूचनाओं से संग्रहित होने को मनुष्य होना मानने लगें; तथा यह समझें कि उत्पीड़क सूचनाओं के संग्रहण के कारण ही लाभ की स्थिति में हैं।

यह "बैंकीय शिक्षा" प्राप्त छात्रों में 'मानवीय आचरण' करने की बजाय तथाकथित बड़े-बड़े प्रतिष्ठित पद प्राप्त करने हेतु होड़ करने की लालसा को जगा सकता है। यह उत्पीड़नकारी व्यवस्था को बदलने की बजाय उसके अनुरूप अनुकूलित होना ही है, अर्थात् "बैंकीय शिक्षा" में व्यक्ति या "मनुष्य, चूँकि विश्व को निष्क्रिय चीज़ों के रूप में ग्रहण करते हैं, इसलिए शिक्षा उन्हें और ज़्यादा निष्क्रिय बनाती है; तथा विश्व से अनुकूलित करती है"।[111]

अनुकूलन उत्पीड़न अथवा दमन को लम्बे समय तक बनाए रखता है; और यह 'संस्कृति' का अंग बन जाता है। दिनचर्या का हिस्सा बनने के कारण ही अनुकूलन को प्राप्त व्यक्ति उत्पीड़नकारी संरचना को नहीं पहचान पाते।

---

[109] वही: 38

[110] वही

[111] वही: 37

उपर्युक्त विश्लेषण को अधोरचित आरेख अथवा आकृति 4 के माध्यम से समझा जा सकता है -

आकृति 4

शिक्षित मनुष्य का 'अनुकूलित मनुष्य' में परिवर्तन

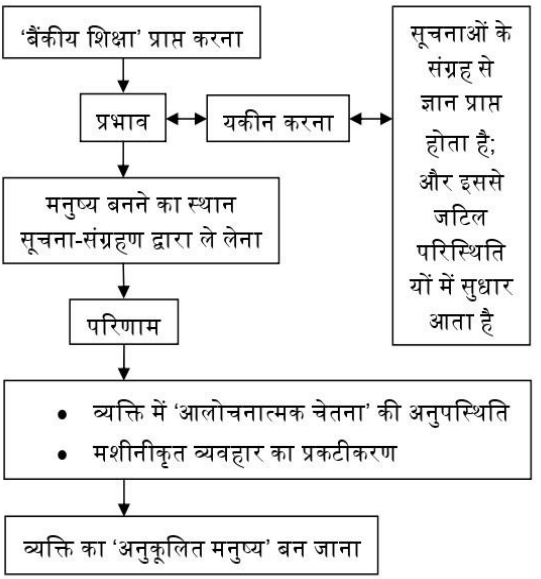

4.3.6 शिक्षक की सच्ची सुरक्षा

"बैंकीय शिक्षा" में कार्यरत शिक्षक "स्वतंत्रता के भय" से पीड़ित हो सकता है। उसका यह डर दो अधोवर्णित कारणों से हो सकता है –

1. भौतिक उन्नति के बाधित होने का डर

ऐसा हो सकता है कि यदि शिक्षक "बैंकीय शिक्षा" के व्यवहारवादी उद्देश्यों के अनुरूप कार्य न करे, तो सत्ता द्वारा उसे दिया गया कार्य वापिस ले लिया जाए अथवा उसकी भौतिक उन्नति को बाधित कर दिया जाए।

2. कक्षा में छात्रों पर प्राप्त सत्ता खोने का डर

यदि, शिक्षक का दृष्टिकोण छात्रों को समीक्षायी रूप से चेतन बनाना हो, तो 'शिक्षक-छात्र' दो ध्रुव न होकर 'संवाद प्रक्रिया' में सहभागी बन जाते हैं; व एक-दूसरे को शिक्षित करने लगते हैं। परन्तु, "बैंकीय शिक्षा" से ग्रस्त शिक्षक अधिक मेहनत करने से अथवा कक्षा में छात्रों पर प्राप्त तथाकथित लाभ की स्थिति को छोड़ने से भयभीत रहता है। इसलिए वह छात्रों को सूचनाओं के संग्रहण के प्रति प्रेरित करता रहता है।

उपरोक्त दोनों कारणों से भयभीत शिक्षक "बैंकीय शिक्षा" को भय-मुक्ति अथवा सुरक्षा-प्राप्ति का साधन बना सकता है। फ्रेरे के अनुसार यह सच्ची सुरक्षा नहीं है। "सच्ची सुरक्षा के लिए तो दूसरों के साथ एकजुट होकर जीने का प्रयत्न करना आवश्यक है। शिक्षक अपने छात्रों पर न तो स्वयं को थोप सकता है, न उनके साथ महज़ सह-अस्तित्व बनाकर रह सकता है"।[112] इसलिए, शिक्षक को "अपने छात्रों के साथ एकजुट होना चाहिए और एकजुटता के लिए सच्चा सम्प्रेषण आवश्यक है"।[113] अतः, शिक्षक की सच्ची सुरक्षा शिक्षक-छात्र के बीच सहकार की भावना का पनपना है, जिसमें शिक्षक छात्रों को व छात्र शिक्षकों को आलोचनात्मक रूप से सतत चेतनशील बनाए रखते हैं; और दोनों मिलकर अपने व विश्व के बारे में एक-दूसरे की समझ में वृद्धि करते हैं। इसके लिए, स्पष्टतः 'संवाद' की ज़रूरत होती है। वस्तुतः, यही शिक्षक व छात्रों के बीच सम्प्रेषण को संभव बनाता है। तभी, फ्रेरे लिखते हैं कि – "मानव-जीवन सम्प्रेषण से ही सार्थक बनता है"।[114] संक्षेप में - शिक्षक की सच्ची सुरक्षा "स्वतंत्रता के भय" से मुक्त होने में निहित है। इसे शिक्षक व छात्रों का 'प्रेमविहीनता की स्थिति' के अंतर्गत सुरक्षित होने के रूप में भी समझ सकते हैं। इसके लिए आवश्यक है - शिक्षक-छात्र सम्बन्ध 'संवाद'

---

[112] वही: 38

[113] वही

[114] वही

अथवा सम्प्रेषण पर आधारित हों। उपर्युक्त विश्लेषण को अधोरचित आरेख अथवा आकृति 5 के माध्यम से समझा जा सकता है -

आकृति 5

शिक्षक की 'सच्ची सुरक्षा'

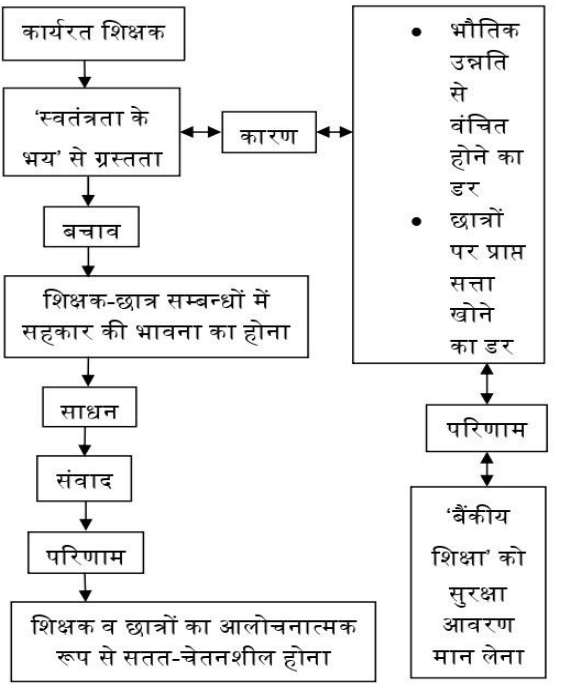

4.3.7 "शिक्षा 'आचरण' (व्यवहार) में निरंतर पुनर्निर्मित होती है"।[115]

फ्रेरे के इस कथन का अर्थ है - शिक्षा ऐसी प्रक्रिया नहीं है, जिसमें किसी वस्तु, प्रक्रिया अथवा आबन्धक सूचनाओं का संग्रह दूसरे व्यक्ति (छात्र) को दे दिया जाए; और वह दूसरा व्यक्ति (छात्र) बिना कोई प्रश्नचिह्न लगाए उस सूचना रूपी ज्ञान को सहेजकर रख ले, बल्कि शिक्षा तो एक ऐसी प्रक्रिया है,

[115] वही: 45

जिसमें व्यक्ति का विवेक स्वयं व अपने आसपास की जटिलताओं को समझने हेतु सजग होता है; और वह समाज की परिवर्तनशील प्रक्रियाओं की वास्तविक सतत समझ प्राप्त कर 'प्रेमविहीनता की स्थिति' बदलने हेतु अग्रसर होता है। 'प्रेमविहीनता की स्थिति' में बदलाव के लिए व्यक्ति को अपने "चिंतन और कर्म में पूरकता" लाना अथवा "आचरण" करना आवश्यक होता है। एक सच्ची शिक्षा वास्तव में व्यक्ति को इसी पूरकता की ओर अग्रसर करती है, अन्यथा व्यक्ति "संकीर्णतावाद" व 'प्रतिक्रियावाद' में उलझकर व्यक्तिवादी हो सकता है। व्यक्तिवादी होने से बचने के वास्ते मनुष्य को अपनी दीर्घकालिक सामाजिक स्थिति अथवा ऐतिहासिकता को समझना ज़रूरी है। वास्तव में, तभी एक व्यक्ति मनुष्य की श्रेणी में आ सकता है। फ्रेरे के अनुसार "मनुष्य ऐतिहासिक प्राणी हैं, जो अपने अधूरेपन को जानते हैं, अपनी अपूर्णता को समझते हैं। शिक्षा, जो नितांत सामाजिक चीज़ है, इस अपूर्णता और इस अभिज्ञा से आरंभ होती है"[116], अर्थात् "मनुष्यों के अधूरे चरित्र और यथार्थ के रूपांतरशील चरित्र के कारण ही यह आवश्यक होता है कि शिक्षा सतत चलती रहने वाली एक गतिविधि हो"।[117] इस रूप में ही "शिक्षा 'आचरण' (व्यवहार) में निरंतर पुनर्निर्मित होती है"[118], क्योंकि यथार्थ परिवर्तनशील है; और इस नाते मनुष्य को यथार्थ की वास्तविक समझ प्राप्त करने के लिए सदैव अपने चिंतन को अपने कर्म का पूरक बनाए रखना होगा।

4.4 पाओलो फ्रेरे के 'शिक्षा सम्बन्धी विचारों' के अन्तर्गत शैक्षिक उद्देश्य

पाओलो फ्रेरे की उपर्युक्त परिस्थितियों विशेष व 'शैक्षिक विचारों' के विवेचन-विश्लेषण से यह स्पष्टतः समझा जा सकता है कि फ्रेरे शिक्षा संरचना को एक ऐसी दिशा देना चाहते थे, जिसमें छात्र, शिक्षक, शिक्षा व्यवस्थापक, शिक्षाविद्, दार्शनिक, समाजशास्त्री, राजनीतिज्ञ, अर्थशास्त्री, जन-

[116] वही

[117] वही

[118] वही

आन्दोलनकर्मी व अन्य सुधीजन सभी मिलकर विश्व को समझें; व उसे और अधिक बेहतर बनाने की दिशा में 'सतत-सहभागी' कर्म करें। तभी, फ्रेरे 'राजनीति, समाजिकता, व आर्थिकता' को भी शिक्षा की संवादात्मकता के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण पाते हैं। जहाँ एक ओर, राजनीतिक सत्ता, समाज व अर्थ-जगत शिक्षा की दशा व दिशा तय करते हैं, वहीं दूसरी ओर "संवादात्मक शिक्षा" से उपजे माहौल में 'राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक' संरचना भी 'सृजनात्मक' बनती है। इस 'सृजनात्मकता' के लिए फ्रेरे "उत्पीड़ितों के शिक्षाशास्त्र" के ज़रिए "आचरण" ("कर्म व चिंतन में पूरकता"), "संवादात्मकता", "पारस्परिकता", 'सहभागिता', "सच्ची उदारता", 'सक्रियता' और 'मानवीयता' में भरोसा, इत्यादि सम्बन्धी सोच की ओर व्यक्तियों को अग्रसर करना चाहते थे, ताकि एक बेहतर समाज का सतत निर्माण संभव हो सके। असल में, इसीलिए शिक्षा प्रक्रिया में शैक्षिक उद्देश्यों का इतना महत्त्वपूर्ण स्थान है। उपर्युक्त विवेचन-विश्लेषण से पाओलो फ्रेरे के शिक्षा सम्बन्धी विचारों के अंतर्गत शैक्षिक उद्देश्यों को अधोलिखित तत्त्वों के बरक्स रखकर निर्धारित किया जा सकता है –

- शिक्षा व्यक्ति को अपने आसपास की परिस्थितियों के प्रति सजग बनाए।
- शिक्षा से व्यक्ति वस्तुपरकतावादी यथार्थ की अपेक्षा परिवर्तनशील वास्तविक यथार्थ की ओर अग्रसर हो सकें।
- शिक्षा शोषणकारी स्थितियों की पहचान व उसमें बदलाव से संबद्ध हो।
- शिक्षा "आलोचनात्मक चेतना" में वृद्धि करे।
- शिक्षा स्थान विशेष की परिस्थितियों से आबद्ध हो।
- शिक्षा आक्रोश की बजाय 'प्रेमविहीनता की स्थिति' में बदलाव की ओर अग्रसर करे।
- शिक्षा व्यक्ति को विश्वास और तर्क के साम्य बिन्दु के प्रति चेतन बनाने वाली हो।

- शिक्षा मनुष्यों व विश्व की जटिलताओं को अंतर्संबंधित करे।
- शिक्षा, शिक्षक व विद्यार्थी के संज्ञानात्मक विकास से जुड़ी हुई हो।
- शिक्षा में शिक्षक व विद्यार्थी सह-अनुसंधानकर्त्ता के रूप में सतत ज्ञान का निर्माण करें।
- शिक्षा अनुभवों से जुड़े हुए ज्ञान के अविष्कार व पुनराविष्कार को बढ़ावा दे।
- शिक्षा स्पर्धा की बजाय प्रतियोगिता पूर्ण "आचरण" को बढ़ावा दे।
- शिक्षा विद्यार्थियों में 'सक्रियता' व 'सृजनात्मकता' के भाव को उत्पन्न करे।
- शिक्षा "पारस्परिक मानुषीकरण" से आबंधित हो।
- शिक्षा संप्रेषणात्मक ज्ञान पर आधारित हो।
- शिक्षा से "कर्म व अनुचिंतन में पूरकता" के भाव में वृद्धि हो, इत्यादि।

4.5 पाओलो फ्रेरे के 'शिक्षा सम्बन्धी विचारों' में निहित शैक्षिक पद्धति

उपर्युक्त विश्लेषण-विवेचन से स्पष्ट है - पाओलो फ्रेरे व्यक्ति एवं समाज को एक ऐसी दिशा देना चाहते थे, जहाँ सभी एक-दूसरे के लिए सह-अस्तित्व को माने। पाओलो फ्रेरे आक्रोश की बजाय ऐसे भाव का सृजन करने का प्रयास करना चाहते थे, जिसमें सभी व्यक्ति 'सतत-सहभागी' होकर खराब परिस्थितियों के विरुद्ध सक्रीय प्रयास करें। इसी सोच को ही वह "आमूल परिवर्तनवाद" के बरक्स रखकर अपने 'शिक्षा सम्बन्धी विचारों' के अंतर्गत प्रतिपादित करने का प्रयास करते हैं। वस्तुत:, पाओलो फ्रेरे का शैक्षिक दर्शन "आमूल परिवर्तन" को ही केंद्र में रखकर चलता है। भारतीय शैक्षिक संदर्भ भी "आमूल परिवर्तन" की माँग करता है। पाओलो फ्रेरे ने शिक्षाशास्त्र सम्बन्धी उद्देश्य पूर्ति हेतु जिस पद्धति को माना, उसके मूल तत्त्व हैं –

- "विवेकीकरण"

- "स्वतंत्रता के भय" से मुक्ति
- "अमानुषीकरण" से "मानुषीकरण" की ओर अग्रसरता
- 'सतत-सहभागी' मुक्ति-संघर्ष
- यथार्थवादी दृष्टिकोण
- "पालतूकरण" से मुक्ति
- "आचरणात्मक" व्यवहार की प्राप्ति
- "शिक्षा की बैंकीय अवधारणा" का बहिष्कार
- सक्रीयता में वृद्धि
- नियतिवादी दृष्टिकोण से मुक्ति
- "संकीर्णतावादी" सोच से "आमूल परिवर्तनवादी" सोच की ओर अग्रसरता
- "सच्ची उदारता" का पोषण
- सृजनात्मक दृष्टिकोण
- "उप-उत्पीड़क" बनने की स्थिति के प्रति सजगता
- "स्वायत्तता और उत्तरदायित्व" को अपनाना
- "संवादात्मकता"

मूलतः, ये सभी उपर्युक्त बिन्दु फ्रेरे की शिक्षाशास्त्रीय पद्धति के औज़ारों के विभिन्न रूप हैं। भारतीय शिक्षा के शिक्षाशास्त्र का मूलाधार भी इन्हीं औज़ारों में खोजा जा सकता है। उपर्युक्त बिन्दुओं अथवा तत्त्वों को अधोवर्णित विश्लेषण से समझा जा सकता है –

4.5.1 "विवेकीकरण"

"विवेकीकरण" का अर्थ है – परिस्थिति विशेष में क्रियाओं में निहित उत्पीड़न की संरचना को समझने की ओर अग्रसर होना, जिसमें उत्पीड़ित व्यक्ति अपनी स्थिति को बेहतर बनाने हेतु जाग्रत होता है। पाओलो फ्रेरे

"विवेकीकरण" की प्रक्रिया में ही शिक्षा की भूमिका खोजते हैं। इसमें "आलोचनात्मक चेतना" अथवा "समीक्षायी चेतना" की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। आलोचना व अति-आलोचना के संदर्भ में "विवेकीकरण" की प्रक्रिया में प्रायः यह प्रश्न उभरता है कि "विवेकीकरण" कहीं "विध्वंसक मतांधता"[119] अथवा अपनी बात को सही सिद्ध करने के लिए हिंसा (उग्रता) की ओर और अपनी "दुनिया के पूरी तरह ढह जाने की अनुभूति"[120] की ओर न ले जाये?। फ्रेरे का मानना है कि "ऐसे अवसर कम नहीं आते, जब प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के सहभागी 'विवेकीकरण' के खतरे की तरफ़ कुछ इस तरह ध्यान दिलाते हैं कि उससे उनका अपना ही 'स्वतंत्रता का भय' प्रकट होता है"।[121] उनका यह भय स्वयं की ज़िंदगी खराब हो जाने को लेकर होता है। "उनमें से कुछ कहते हैं कि 'आलोचनात्मक चेतना' अराजक होती है, तो कुछ इसमें यह भी जोड़ देते हैं कि 'आलोचनात्मक चेतना' अव्यवस्था की ओर ले जा सकती है"।[122] परन्तु, फ्रेरे द्वारा यह भी देखा गया कि "कुछ सहभागी स्वीकार करते हैं कि – झूठ क्यों बोलूं'?, मैं स्वतंत्रता से डरता था, लेकिन अब मैं नहीं डरता"।[123] वस्तुतः, "विध्वंसक मतांधता" का डर "स्वतंत्रता के भय" अथवा और अधिक संभावित विकृति में फँसने का डर होता है, जिसे विमर्श अथवा 'संवाद' के ज़रिए "आलोचनात्मक चेतना" का विकास कर दूर किया जा सकता है। यह चेतनागत विकास व्यक्ति को मतों की रूढ़ता से बचा सकता है। शिक्षा का कार्य है कि इस चेतनागत विकास का विकास करे। यही अपनी वास्तविक स्थिति को समझने का साधन है। फ्रेरे "विवेकीकरण" प्रक्रिया को मतांधता की बजाय आत्म-अभिपुष्टि का साधन मानते हैं। "विवेकीकरण" प्रक्रिया पर फ्रेरे द्वारा एक कार्यक्रम के दौरान चर्चा के अंतर्गत एक सहभागी मज़दूर ने पाठ्यक्रम में भाग लेने से पहले की अपनी स्थिति को बताते हुए कहा था कि "मैं भोला था; और जब मैंने जान लिया कि मैं कितना भोला हूँ, तो मैं आलोचनात्मक

[119] वही: 1

[120] वही

[121] वही

[122] वही

[123] वही

होने लगा। लेकिन, मेरी इस खोज ने न तो मुझे मतांध बनाया और न इससे मुझे कोई दुनिया ही ढहती नज़र आती है"।[124] स्पष्टत:, आलोचनात्मक रूप से चेतन बने रहने के लिए सतत 'संवाद' व अपने आसपास की परिस्थितियों का निरंतर विश्लेषण करते रहना आवश्यक होता है। 'संवाद' ही इसका माध्यम होना चाहिए। वस्तुत:, 'संवाद' के साथ-साथ निरंतर विश्लेषण व्यक्ति को 'प्रेमविहीनता की स्थिति के विरुद्ध जागरूक रखता है।उपर्युक्त विश्लेषण को अधोरचित आरेख अथवा आकृति 6 के ज़रिए विश्लेषित कर सकते हैं -

आकृति 6

'विवेकीकरण' प्रक्रिया

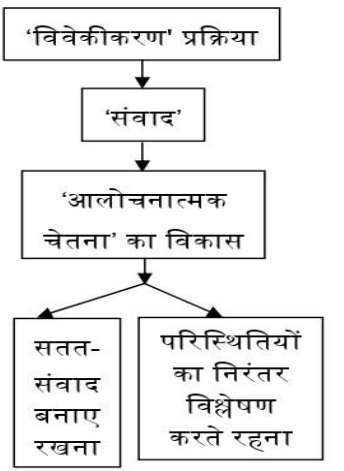

4.5.2 "स्वतंत्रता का भय"

यह अपनी परिस्थितियों से और ज़्यादा जटिल अथवा विकट हालात में फँसने का भय है। असल में, यह भय 'संभावित विकृत भविष्य' के प्रति है। इस भय से उत्पीड़क व उत्पीड़ित दोनों ग्रसित रहते हैं; और बदलाव के प्रति शंकालु दृष्टि रखते हैं –

[124] वही

- उत्पीड़क इस रूप में कि उनकी वर्तमान लाभ की स्थिति या सत्ता उनसे छिन न जाए या वे लोग जिनके पास सत्ता नहीं है, उन पर हावी न हो जाएँ।

- उत्पीड़ित इस रूप में कि वे वर्तमान में जिन विकट परिस्थितियों में हैं, कहीं भविष्य में उन्हें इससे भी बदतर हालात से रू-ब-रू न होना पड़े।

अतः, "स्वतंत्रता का भय" उत्पीड़क व उत्पीड़ित को यथास्थिति हेतु कार्यरत करता है। दूसरे अर्थ में, इसको 'उत्पीड़कों की चालाकी' व 'उत्पीड़ितों के भालेपन या "अविवेकीकरण" प्रक्रिया के अंतर्गत रखकर भी समझा जा सकता है। उत्पीड़क वर्ग, एक ओर इस तरह का परिदृश्य पैदा करने में संलग्न रहता है, जिसमें वह बदलाव के नियंता के तौर पर दिखे, तो वहीं वह तंत्र-परिवर्तन का अघोषित विरोध भी करता है या उसे और अधिक जटिल बना देता है। फलस्वरूप, उत्पीड़ित वर्ग धीरे-धीरे स्वीकार लेता है - उनमें वह क्षमता या ऊर्जा है ही नहीं, जो व्यवस्था को बदलने हेतु ज़रूरी है। परिणामतः, उत्पीड़ित अपनी विकट परिस्थितियों के लिए खुद को ज़िम्मेवार समझ लेते हैं; और इनसे स्वतंत्र होने के किसी भी प्रयास को भय की दृष्टि से देखते हैं। असल में, उत्पीड़ित इस बात से भी डरते हैं कि जीवन जीने में सहायक अथवा अनुकूलित परिस्थितियों को प्राप्त किए बिना क्या नवीन संभावित परस्थितियों में उलझना सही होगा? उत्पीड़ित वर्ग का असंगठित होना उनके इस भय को और अधिक बढ़ाता है। इसलिए, वे संगठित प्रयास कर शोषणकारी हालात को परिवर्तित करना छोड़ देते हैं। इसे इस रूप में भी समझा जा सकता है कि उत्पीड़ित भविष्य के अच्छे व खराब होने की दो संभावनाओं के मध्य उलझे रहते हैं। यह उलझाव उत्पीड़कों को झूठे बदलाव का दिखावा करने का मौका प्रदान करता है। उत्पीड़क अपनी सत्ता या लाभ की स्थिति को बनाए रखने के लिए उत्पीड़ितों के प्रति "मिथ्या उदारता" का दिखावा कर स्थितियों को बदलने से रोकने का प्रयास करते रहते हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण को निम्न आरेख अथवा आकृति 7 द्वारा समझ सकते हैं –

आकृति 7

'स्वतंत्रता का भय'

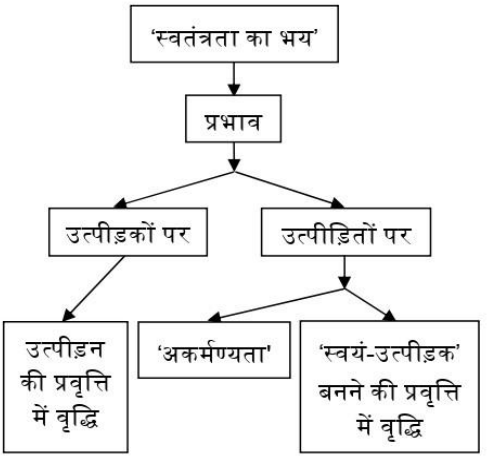

अत:, "स्वतंत्रता का भय" उत्पीड़क व उत्पीड़ित दोनों को आच्छादित करता है। "स्वतंत्रता के भय" के कारण शोषकों में उत्पीड़न की प्रवृत्ति में वृद्धि हो सकती है। इसके अतिरिक्त, एक ओर उत्पीड़ितों पर इस भय का एक रूप अकर्मण्यता या स्थितियों को चुपचाप स्वीकार करने के रूप में है, तो दूसरे रूप में यह उनमें "स्वयं-उत्पीड़क" या "उप-उत्पीड़क" बनने की प्रवृत्ति में वृद्धि कर सकता है।

4.5.3 "मानुषीकरण" एवं "अमानुषीकरण"

"मानुषीकरण" से तात्पर्य मनुष्य बनने की प्रक्रिया से है। यह उन जटिलताओं से विमुक्ति की प्रक्रिया है, जो मनुष्य को अमानुष बनाती हैं। अमानुष होने का अर्थ है - मनुष्यों का वस्तुओं में बदल जाना, अर्थात् अपने व अन्यों के प्रति संवेदनारहित होते जाना। इस बिन्दु के सम्बन्ध में "उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र" पुस्तक की विशेषता बताते हुए उपाध्याय लिखते हैं कि "इसका आधारभूत विचार यह है कि जिस समाज में प्रभुत्वशाली अभिजनों

का एक अल्पतंत्र बहुसंख्यक जनता पर शासन करता है, वह अन्यायपूर्ण तथा उत्पीड़नकारी समाज होता है"।[125] इसकी अनिवार्य विशेषता है - यह "मनुष्यों को वस्तुओं में बदलकर उन्हें अमानुषिक बनाती है, जबकि मनुष्यों का ऐतिहासिक और अस्तित्वमूलक कर्त्तव्य पूर्णतर मनुष्य बनना है"।[126] मनुष्य और अमनुष्य होने की स्थिति को निम्नांकित बिन्दुओं अथवा तालिका 2 के अंतर्गत समझा जा सकता है –

तालिका 2

मनुष्य व अमनुष्य होने की पहचान

मनुष्य होने की पहचान	अमनुष्य होने की पहचान
• 'कर्त्ता' बनना • "आचरण" करना • 'आलोचनात्मक रूप से सतत चेतनशील' होना • 'स्वावलंबन' • "स्वायत्तता व उत्तरदायित्व" • 'संवेदनशीलता' • 'प्रेमविहीनता की स्थिति' के विरूद्ध संघर्षशील होना	मनुष्य का • वस्तु में बदल जाना • मतांध होना • प्रेमविहीन होना

वस्तुतः, "अमानुषीकरण अधिक पूर्णता के साथ मनुष्य बनने के कर्त्तव्य में आड़े आने वाला एक विकार है"।[127] इसके अलावा, "अमानुषीकरण एक ठोस ऐतिहासिक तथ्य होते हुए भी कोई प्रदत्त नियति नहीं, बल्कि उस अन्यायपूर्ण व्यवस्था का परिणाम है, जो उत्पीड़कों को हिंसक बनाती है; और

[125] वही: xviii

[126] वही

[127] वही: 7

बदले में उनकी यह हिंसा उत्पीड़ितों को अमानुषिक बनाती है"।[128] अतः, अमानुष होने को 'अपूर्ण मनुष्य' होने का पर्याय समझा जा सकता है; और इसकी बनने की प्रक्रिया दीर्घकालिक (ऐतिहासिक) होती है। अन्य शब्दों में, किसी व्यक्ति का अमानुष होना इतिहास-क्रम में निहित एक घटना है, न कि नियतिफल, जिसे व्यक्ति चुपचाप स्वीकार करने को विवश हो जाए व जिसके प्रभाव को बदला न जा सके। फ्रेरे की नज़र में "अमानुषीकरण" को दूर करने के लिए संघर्ष की आवश्यकता होती है; और यह उत्पीड़ितों का कार्यभार है कि वह मनुष्यता को प्राप्त करने के प्रयास में उत्पीड़कों को भी इस विकार से विमुक्त करें, क्योंकि "उत्पीड़क, जो दूसरों को अमानुषिक बनाने के कारण स्वयं अमानुषीकृत होता है, इस संघर्ष का नेतृत्त्व नहीं कर सकता"।[129] चूँकि, उत्पीड़नकारी व्यवस्था में उत्पीड़क व उत्पीड़ित दोनों ही अपनी मनुष्यता खो चुके होते हैं, अतः "अमानुषीकरण" को दूर करने का प्रयास इस अर्थ में 'मनुष्यता का पुनः सृजन' करना ही है; और यह सृजन भी तभी वास्तविक रूप से पूरा हो सकेगा, जब सृजनकर्त्ता या सृजनकर्त्री सभी के प्रति मानवीय दृष्टिकोण को धारण करें। इसके अतिरिक्त, "अमानुषीकरण" को बनाए रखने के लिए उत्पीड़क यदा-तदा "मिथ्या उदारता" भी दिखाते हैं, ताकि स्थितियों को ज्यों-का-त्यों बनाए रखा जा सके। वास्तव में, उत्पीड़ितों के प्रति उत्पीड़कों की यह उदारता मात्र दिखावा होती है; और इससे उत्पीड़न को नियति के आलोक में देखा जाने लगता है। इस प्रकार "मिथ्या उदारता" उत्पीड़न के फलस्वरूप उत्पीड़ितों में उभरे आक्रोश को दबाने का काम करती है; और उत्पीड़कों की लाभ की स्थिति को स्थाई बनाती है। इससे शोषणकारी परिस्थितियों में बदलाव के रास्ते कुंद हो जाते हैं। फलस्वरूप, उत्पीड़ित भाग्यवादी दृष्टिकोण को अपना लेते हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण को निम्न आरेख अथवा आकृति 8 द्वारा समझा जा सकता है -

---

[128] वही

[129] वही: 11

आकृति 8

'अमानुषीकरण' से 'मानुषीकरण' की ओर

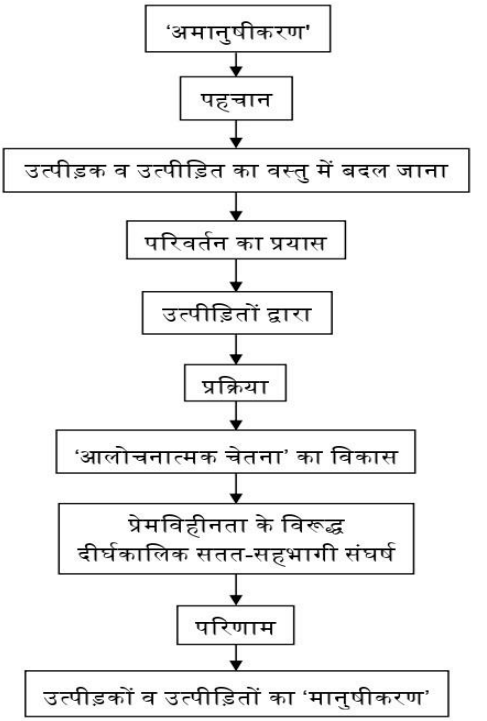

4.5.4 "स्वतंत्रता उपहार में नहीं मिलती, संघर्ष में विजयी होने पर मिलती है"।[130]

फ्रेरे के इस कथन से यह अभिप्राय है कि उत्पीड़न की परिस्थितियों से मुक्ति के लिए उत्पीड़ितों द्वारा स्वयं पहल कर व नियतिवादी सोच को त्यागकर दीर्घकालिक 'सतत-सहभागी' संघर्ष किए जाने की आवश्यकता होती है। ऐसा शायद ही संभव हो कि उत्पीड़क वर्ग स्वयं उत्पीड़न की संरचना में बदलाव

[130] वही: 10

का प्रयत्न करे, क्योंकि उत्पीड़क खुद "स्वतंत्रता के भय" से त्रस्त होते हैं। फ्रेरे के अनुसार "उत्पीड़क उससे इसलिए डरते हैं कि इससे उनकी उत्पीड़न करने की आज़ादी खो जाएगी"।[131] अन्य शब्दों में, उत्पीड़क लाभ की स्थिति अथवा सत्ता को खोने से डरते हैं। अतः, उत्पीड़न की परिस्थितियों से अपनी व उत्पीड़कों की मुक्ति के प्रयास की शुरूआत उत्पीड़ितों को ही करनी होगी। इसके लिए ही फ्रेरे स्वतंत्रता अथवा मुक्ति के लिए संघर्ष करने को कहते हैं। उनकी नज़रों में "स्वतंत्रता कोई ऐसा आदर्श नहीं है, जो मनुष्य के बाहर स्थित हो। वह कोई ऐसा भाव भी नहीं है, जो मिथक बन जाए। वह तो मानवीय पूर्णता के प्रयास की एक अपरिहार्य शर्त है"।[132] चूँकि, उत्पीड़क स्वयं उत्पीड़न के विरुद्ध चेतन नहीं होते, अतः उत्पीड़ितों को मुक्ति-संघर्ष के दौरान उत्पीड़कों के विरूद्ध 'प्रेमविहीनता की मानसिकता' से अपने को दूर रखना होगा। ऐसा करके ही संघर्ष में विजयी होने का वास्तविक लक्षण प्रकट हो सकेगा। उत्पीड़नकारी संरचना से मुक्ति-संघर्ष में विजयी होने के संदर्भ में फ्रेरे लिखते हैं कि – "उत्पीड़न पर विजय प्राप्ति हेतु मनुष्य उसके कारणों पर सोचे, ताकि रूपांतरकारी कर्म से एक ऐसी नई स्थिति का सृजन कर सकें, जिसमें मनुष्यता के लिए प्रयास करना संभव हो"।[133] इस प्रकार फ्रेरे मुक्ति-संघर्ष में विजयी होने के लिए अग्रलिखित 'त्रि-सूत्रीय कार्यक्रम' को आवश्यक मानते हैं –

1. उत्पीड़न के कारणों की आलोचनात्मक समझ प्राप्त करना।
2. 'कर्म करना' अथवा 'कर्त्ता' बनना।
3. पूर्णतर मनुष्यता की ओर बढ़ना अथवा "अमानुषीकरण" प्रक्रिया से "मानुषीकरण" प्रक्रिया की ओर बढ़ना।

उपर्युक्त तीन बिन्दुओं के अंतर्गत उत्पीड़ितों की वास्तविक विजय केवल उत्पीड़न की संरचना में बदलाव करने में ही निहित नहीं है, बल्कि उन्हें मुक्ति-संघर्ष के प्रत्येक पद में खुद को निरंतर आलोचनात्मक रूप से जाग्रत रखते हुए कर्मशील रहना होगा। ऐसा करने पर ही उत्पीड़ितों के संग उत्पीड़कों का भी

---

[131] वही: 31

[132] वही: 10

[133] वही: 10-11

"मानुषीकरण" संभव हो सकेगा; और मुक्ति-संघर्ष में उभरा विरोध का भाव उत्पीड़कों के स्थान पर 'प्रेमविहीनता की स्थिति' के विरुद्ध गतिमान होगा। यदि, उत्पीड़ितों को शोषण के विरुद्ध सच में विजयी होना है, तो उन्हें सभी की मुक्ति को लेकर सोचना होगा, नहीं तो उनका 'बदलाव का भाव' उत्पीड़कों के प्रति 'बदले के भाव' में रूपांतरित हो सकता है। ऐसा इसलिए, क्योंकि 'आलोचनात्मक रूप से चेतन होने' का एक अर्थ स्वयं को किसी दूसरे का बुरा करने से रोकना भी है। अधोरचित आरेख अथवा आकृति 9 के द्वारा उपर्युक्त विश्लेषण का सारग्राहित्व जाना जा सकता है –

आकृति 9

मुक्ति-संघर्ष और 'त्रि-सूत्रीय कार्यक्रम'

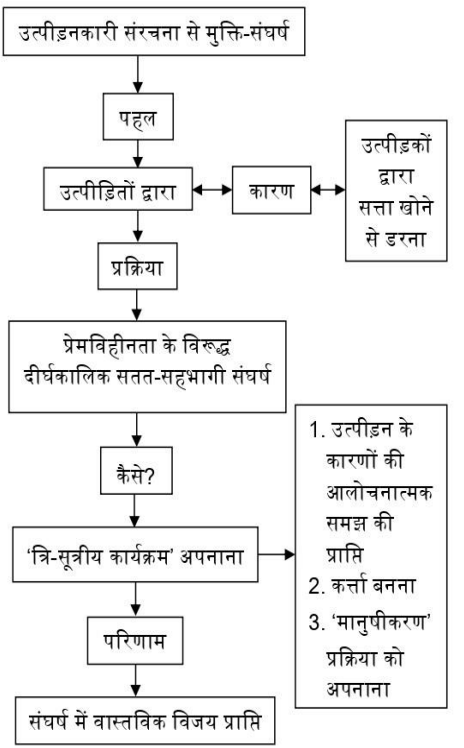

4.5.5 "उत्पीड़ितों को अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष शुरू करने में समर्थ होने के लिए यथार्थवादी होना पड़ेगा"।[134]

प्रायः, उत्पीड़नकारी संरचना में उत्पीड़ित अकर्मण्यता की स्थिति में उलझकर इस बात का इंतज़ार करते रहते हैं कि या तो उत्पीड़नकारी परिस्थितियों में स्वयंमेव बदलाव हो जाएगा, अन्यथा उत्पीड़क इस बदलाव हेतु आगे आएँगे। उत्पीड़कों की ओर से यदा-कदा मिलने वाली "मिथ्या सहायता" उत्पीड़ितों के इस उलझाव अथवा भ्रम में और वृद्धि करती है।

ऐसी परिस्थिति में शोषणकारी परिस्थितियों के विरुद्ध सतत मुक्ति-संघर्ष शुरू ही नहीं हो पाता; और उत्पीड़ित "प्रतीक्षा की संस्कृति" अथवा "इंतज़ार की संस्कृति" में ही फँसे रह जाते हैं। इससे बचने के लिए फ्रेरे उत्पीड़ितों को कल्पनाशीलता की अति को त्यागकर यथार्थवादी होने को कहते हैं। उनके अनुसार उत्पीड़ितों को "उत्पीड़न के यथार्थ को ऐसी बंद दुनिया के रूप में हरगिज़ नहीं देखना चाहिए, जिससे निकल पाना संभव नहीं। उन्हें उसको ऐसी अवरोधक स्थिति के रूप में देखना चाहिए, जिसे वे बदल सकते हैं"।[135]

इसके अलावा, इस प्रकार के "बोध का मुक्तिदायी कर्म के लिए प्रेरित करने वाली शक्ति बनना भी आवश्यक है"।[136] इस प्रकार फ्रेरे उत्पीड़ितों द्वारा यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाने के लिए निम्न 'त्रिपद-मार्ग' को सुझाते हैं -

प्रथम पद: उत्पीड़नकारी परिस्थितियों को बदल सकने का बोध जाग्रत होना।

द्वितीय पद: मुक्तिदायी कर्म के लिए अभिप्रेरित होना।

तृतीय पद: सतत मुक्ति-संघर्ष की ओर बढ़ना।

फ्रेरे द्वारा शोषणकारी परिस्थितियों से मुक्ति हेतु उपर्युक्त 'त्रिपद-मार्ग' को अपनाने के सुझाव में यह ध्यातव्य है कि उत्पीड़न के प्रति उत्पीड़ितों द्वारा

---

[134] वही: 12

[135] वही

[136] वही

यथार्थवादी नज़रिया इख्तियार करने को फ्रेरे 'आत्मपरकता' व 'वस्तुपरकता' के बीच संतुलन के रूप में पाते हैं। असल में, इसी संतुलन को प्राप्त कर उत्पीड़ितों के लिए कर्म करना संभव हो सकता है।

उत्पीड़ितों द्वारा यथार्थवादी नज़रिया अपनाने को निम्न रचित आरेख अथवा आकृति 10 के ज़रिए समझा जा सकता है –

आकृति 10

उत्पीड़न के विरूद्ध मुक्ति-संघर्ष

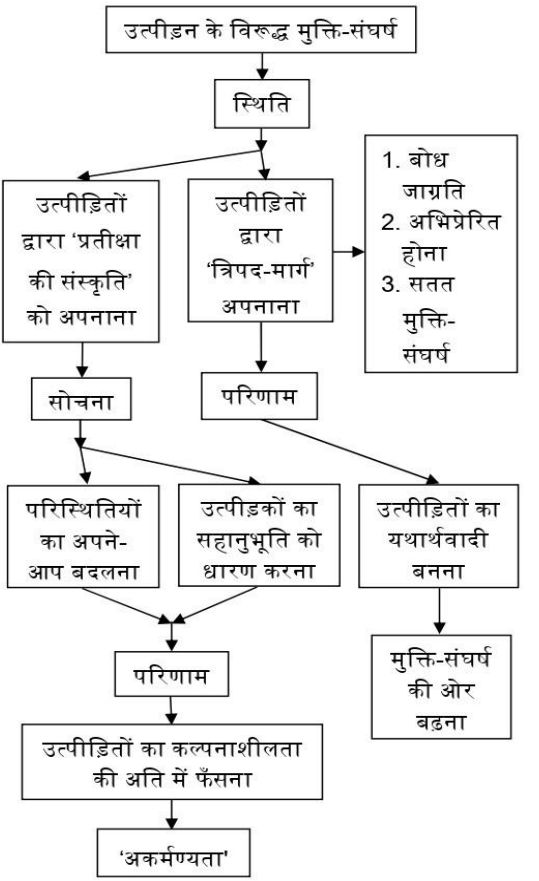

अतः, उत्पीड़ितों को उत्पीड़न अथवा दमन से मुक्ति के वास्ते कल्पनाशीलता की रूढ़ता को त्यागकर यथार्थ से साक्षात्कार करना होगा, क्योंकि स्थितियाँ अपवाद स्वरूप ही अपने-आप मानवीय संघर्षशील प्रयासों के बिना बदलती हैं। इसी प्रकार उत्पीड़क भी यदा-तदा ही 'वास्तविक उदार' बनते हैं। ऐसे में उत्पीड़ितों द्वारा दमनात्मक माहौल से मुक्ति के लिए उपर्युक्त 'त्रिपद-मार्ग' अपनाया जा सकता है।

4.5.6 "प्रकार्यात्मक रूप से उत्पीड़न पालतू बनाने का काम करता है"।[137]

फ्रेरे के इस कथन का अर्थ है - उत्पीड़कों को स्वयं हेतु लाभ की स्थिति को स्थायी बनाए रखने के लिए उत्पीड़नकारी संरचना के दीर्घकालीन पलवन की ज़रूरत है। इसके लिए वे उत्पीड़ितों की चेतना को कुंद कर आज्ञा पालन करने वाले की चेतना में बदलने का प्रयास करते हैं। उत्पीड़न अथवा दमन उत्पीड़कों की इस मंशा में साधन हैं। असल में, "प्रकार्य को व्यवस्था-निर्धारित तथा व्यवस्था-पोषक कार्यकलाप के रूप में भी देखा जाता रहा है"।[138] उत्पीड़क अपनी सत्ता अथवा लाभ की स्थिति को बनाए रखने के लिए 'प्रकार्यात्मक मानसिकता' के अंतर्गत उत्पीड़ितों के प्रति दमनात्मक कार्रवाई करते हैं। "आलोचनात्मक चेतना" की अनुपस्थिति में 'अकर्मण्यता' में फँसकर उत्पीड़ित इस कार्रवाई का विरोध नहीं कर पाते। इससे एक पशु या जानवर को पालतू बनाने की भाँति ही उत्पीड़ितों का "पालतूकरण" हो जाता है।

एक पालतू पशु अथवा जानवर अपनी इच्छाओं व ज़रूरतों के लिए अपने मालिक की उदारता अथवा दया से बंधा होता है। तभी, वह मालिक के दिए निर्देशों को मानना अपना व्यवहार बना लेता है। इसे मालिक की इच्छा का पालतू पशु की इच्छा में रूपांतरण कहा जा सकता है। "पालतूकरण" की प्रक्रिया भी ठीक इसी प्रकार उत्पीड़ितों को बाध्य कर देती है कि वे उत्पीड़क की इच्छा को ही अपनी इच्छा के रूप में कृतज्ञ ज्ञापित व्यवहार द्वारा प्रकट करें; और अपनी दैनंदिन

---

[137] वही: 14

[138] मुकर्जी 2007: 60-61

ज़रूरतों के लिए दीर्घ समय तक उत्पीड़क की उदारता अथवा दया पर निर्भर हो जाएँ। यह उत्पीड़ितों में "अविरोध की संस्कृति" के फैलाव का पर्याय है। इस प्रकार उत्पीड़ितों को पालतू बनाने के क्रम में उत्पीड़कों को दमन करने के साथ-साथ "मिथ्या दया" दिखाने का मौका भी मिल जाता है। फलस्वरूप, उत्पीड़ितों का शोषण उत्पीड़कों की "मिथ्या उदारता" से आश्लिष्ट हो जाता है; व शोषित शोषण को नियति का खेल अथवा अपनी बेअक्ली का परिणाम मानने लगते हैं।

उपर्युक्त "पालतूकरण" की स्थिति से बचाव के वास्ते फ्रेरे उत्पीड़ितों को "आचरण" करने की सलाह देते हैं। उनकी दृष्टि में उत्पीड़ित "पालतूकरण" की स्थिति से तभी उबर सकते हैं, जब वे यथार्थ पर चिंतन व कर्म कर उसे बदलने का प्रयास करें। इसीलिए वे कहते हैं – "आदमी इसकी ताकत का शिकार न बना रहे, इसके लिए उसका इस पर ध्यान देना अत्यंत आवश्यक है। ऐसा केवल 'आचरण' के ज़रिए किया जा सकता है, अर्थात् विश्व के रूपांतरण के लिए उस पर चिंतन और कर्म करना"।[139]

अन्य शब्दों में, "पालतूकरण" की स्थिति को इस रूप में समझा जा सकता है; जैसे – उत्पीड़ितों को उत्पीड़कों ने उदारता के मिथ्या दिखावे रूपी अदृश्य धागों से बाँधकर ऐसे व्यक्तियों में बदल दिया हो, जो स्वयं की शोषणकारी परिस्थितियों के प्रति पूरी तरह अनभिज्ञ हो गए हों; और बदलाव से डरते हों। इस डर की दीर्घकालिता ही "पालतूकरण" का पर्याय है। यह डर व्यक्ति को तर्क से दूर कर उसमें यह मिथ्या विश्वास भर देता है कि वह स्वयं अपनी खराब परिस्थितियों को बदलने के वास्ते कुछ नहीं कर सकता, बल्कि कोई अन्य 'देवीय व्यक्ति' ही आकर उसके दुखों का अंत करेगा, अर्थात् उत्पीड़ित कर्मण्यता को छोड़कर भाग्यवादी दृष्टिकोण को अपना लेते हैं; और सदैव उत्पीड़नकारी परिस्थितियों में फँसे रहते हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण को अधोरचित आरेख अथवा आकृति 11 के माध्यम से समझा जा सकता है -

---

[139] फ्रेरे, वही: 14

आकृति 11

उत्पीड़ितों का 'पालतूकरण'

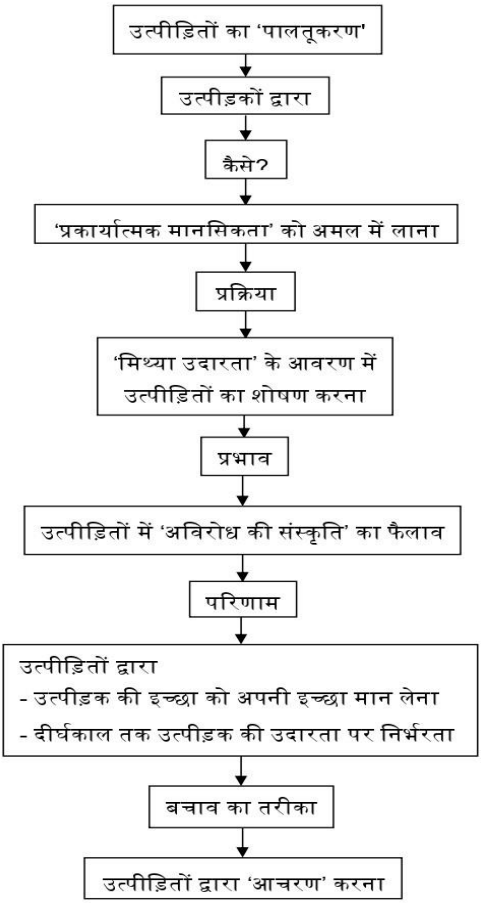

4.5.7 "शिक्षा की बैंकीय अवधारणा" अथवा "बैंकीय शिक्षा"

इससे अभिप्राय शिक्षा देने व प्राप्त करने के ऐसे तरीके से है, जिसमें शिक्षक सूचनाकर्त्ता/ सूचनाकर्त्री अथवा वर्णनकर्त्ता/ वर्णनकर्त्री की भूमिका को अपनाकर छात्रों से यह अपेक्षा करता है कि वे बिना किसी विरोध के प्रदान

किये गए सूचना रूपी ज्ञान को दोहराकर याद कर लेंगे व पूछने पर ज्यों-का-त्यों प्रकट कर देंगे। "इस प्रकार शिक्षा बैंक में पैसा जमा करने की भाँति छात्रों में धनराशि जमा करने का काम बन जाती है, जिसमें शिक्षक जमाकर्त्ता होता है; छात्र जमादार होते हैं। इसमें शिक्षक संप्रेषण करने के बजाए विज्ञप्तियां जारी करता है"।[140] इसके अलावा, शिक्षक "जिन चीजों को 'जमा करता' है, छात्र उन्हें धैर्यपूर्वक ग्रहण करते रहते हैं; और दोहराते हैं"।[141] "बैंकीय शिक्षा" को निम्नांकित संदर्भों में भली-भाँति समझा जा सकता है -

4.5.7.1 शिक्षक-छात्र सम्बन्ध

"बैंकीय शिक्षा" में शिक्षक वर्णनकर्त्ता/ वर्णनकर्त्री व छात्र श्रवणकर्त्ता/ श्रवणकर्त्री की भूमिका में होते हैं। ऐसी शिक्षा में शिक्षक छात्रों के साथ 'संवादात्मक माहौल' के तहत वास्तविकता को तलाश करने की बजाय वास्तविकता का ऐसा वर्णन करता है कि उसका छात्रों की दिनचर्या से विच्छेदन हो जाता है। असल में, शिक्षक छात्रों के अनुभवों से अलग ऐसे विश्व की रचना करने लगता है, जिसका ज्ञाता वह केवल स्वयं होता है। ज्ञाता की भूमिका में शिक्षक छात्रों के समक्ष इस विश्व की घटनाओं, तथ्यों व प्रक्रियाओं की भविष्यवाणी करता है। तभी, "बैंकीय शिक्षा" के अंतर्गत शिक्षक यथार्थ को लेकर "इस तरह बोलता है, मानो वह ऐसी चीज़ हो, जिसके विषय में भविष्यवाणी की जा सकती हो या फिर वह ऐसे विषय का प्रतिपादन करता है, जिसका छात्रों के अस्तित्वगत अनुभव से कोई सम्बन्ध नहीं होता"।[142] इससे शिक्षक-छात्र सम्बन्ध में सहभागी "आचरण" की बजाय ऐसा पटल स्थान ले लेता है, जिसके अंतर्गत एक तरफ़ शिक्षक सर्वज्ञाता के तौर पर व दूसरी तरफ़ छात्र अज्ञाता अथवा अज्ञानी के तौर पर शिक्षक से छात्र की ओर सूचना रूपी ज्ञान के प्रेषण में अपनी-अपनी औपचारिक भूमिकाओं का निर्वाह करते हैं। यह शिक्षा व्यवस्था के सुचारू रूप से गतिशील बने रहने का भ्रम पैदा करता

[140] वही: 33

[141] वही: 33-34

[142] वही: 33

है। परन्तु, असल में "बैंकीय शिक्षा" में छात्रों का अपने व अपने आसपास को लेकर जानना व समझना शिक्षक के ज़रिए ही हो पाता है। यह छात्रों को ऐसे वस्तु रूपी बर्तनों में बदल देता है, जिन्हें शिक्षक द्वारा पदार्थ रूपी ज्ञान से भरा जाना है। इससे छात्रों में रटने की प्रवृत्ति पनपती है। वस्तुतः, "बैंकीय शिक्षा" में रटने की प्रवृत्ति में हुई वृद्धि ही अच्छे शिक्षक व अच्छे छात्र की परिभाषा तय करती है। तभी, फ्रेरे लिखते हैं - "वर्णन छात्रों को वर्णित वस्तु को यांत्रिक ढंग से रट लेने की ओर ले जाता है। इससे भी बुरी बात यह है कि वह छात्रों को 'पात्र' या बर्तन बना देता है, जिन्हें शिक्षक द्वारा भरा जाना होता है"।[143] इस सम्बन्ध में देखा जा सकता है कि जो शिक्षक "इन पात्रों को जितना ज्यादा भर सके, वह उतना ही अच्छा शिक्षक; जो जितने ज्यादा दब्बूपन के साथ स्वयं को भरने दें, वे उतने ही अच्छे छात्र"।[144]

4.5.7.2 शिक्षक की भूमिका

"बैंकीय शिक्षा" में "शिक्षक जमाकर्त्ता, निर्देशक, पालतू बनाने वाला"[145] व "वर्णनकारी कर्त्ता"[146] होता है। उसकी प्रमुख "भूमिका विश्व को छात्रों के भीतर 'घुसाने' के तरीके का नियमन करने की"[147] होती है। अन्य शब्दों में, "शिक्षा की बैंकीय अवधारणा" में शिक्षक छात्रों को अनुगमनकर्त्ता/अनुगमनकर्त्री के रूप में ढालता है। इसके लिए वह यह मानकर चलता है कि छात्र विश्व के बारे में कुछ नहीं जानते-समझते; और केवल वही छात्रों को अपना ज्ञान प्रदान कर ज्ञानवान बना सकता है। इस सम्बन्ध में फ्रेरे लिखते हैं कि – "'बैंकीय अवधारणा' में यह मान्यता अंतर्निहित है कि मनुष्य और विश्व अलग-अलग हैं; मनुष्य विश्व में है, विश्व के या अन्य मनुष्यों के साथ नहीं।

---

[143] वही

[144] वही

[145] वही: 37

[146] वही: 33

[147] वही: 37

मनुष्य केवल दर्शक है, पुनर्सजक नहीं"।[148] इस रूप में "मनुष्य सचेत प्राणी नहीं, बल्कि एक चेतना का स्वामी है; एक खाली 'मस्तिष्क' है, जो निष्क्रिय रहकर बाह्य विश्व से आने वाली यथार्थ की 'जमाओं' को ग्रहण करता रहता है"।[149] इस प्रकार शिक्षक 'निर्देशात्मक वर्णन' द्वारा छात्रों में सूचना रूपी ज्ञान को जमा कर उन्हें मूक अनुगमन करने वाला अथवा 'पालतू' बना देता है। बड़े संदर्भों में इसे अनुकूलन कहते हैं।

"बैंकीय शिक्षा" के तहत छात्रों हेतु शिक्षक ही सर्वेसर्वा है। अत:, छात्रों का कर्म मूलतः शिक्षक के तथाकथित कर्म का पर्याय होता है। स्वयं द्वारा माने गए ज्ञान के प्रति छात्रों में स्वीकार-भाव को पैदा करने के लिए शिक्षक अधोलिखित दो चरणों को अपनाता है -

प्रथम चरण: बताई जाने वाली वस्तु अथवा सूचना को लेकर एकाकी निर्णय लेना।

द्वितीय चरण: छात्रों को निर्देश अथवा वर्णन के ज़रिए सूचनागत ज्ञान प्रदान करना।

उपर्युक्त प्रथम चरण में शिक्षा व्यवस्था के अंतर्गत शिक्षक ही यह निर्णय करता है कि छात्रों को क्या-क्या जानना चाहिए। द्वितीय चरण में वह छात्रों से अपेक्षा रखता है कि छात्र बताई गई सूचनाओं को रटकर याद कर लेंगे; तथा सूचनाओं पर किसी प्रकार की आलोचनात्मक प्रतिक्रिया नहीं देंगे। उपर्युक्त दोनों चरणों को और अधिक स्पष्ट करते हुए फ्रेरे "बैंकीय शिक्षा" के अंतर्गत शिक्षक के कार्य को दो अवस्थाओं में विवेचित करते हैं - "पहली अवस्था में, जब वह अपने अध्ययन-कक्ष में या प्रयोगशाला में बैठकर छात्रों के लिए पाठ तैयार करता है, संज्ञेय वस्तु का संज्ञान करता है; दूसरी अवस्था में वह छात्रों के सामने उस वस्तु का प्रतिपादन करता है"।[150] इसके अलावा, शिक्षक के इस

[148] वही

[149] वही

[150] वही: 41

तथाकथित गंभीर कार्य में "छात्रों से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वे उस वस्तु को जानें"।[151]

इस प्रकार "बैंकीय शिक्षा" में शिक्षक खुद के द्वारा बताये गए सूचना रूपी ज्ञान का एकमात्र सर्वज्ञाता होता है। उसका ज्ञान आलोचनाओं से परे है; व केवल वही निर्धारण करता है - छात्रों को विश्व को कितना, कैसे, कहाँ और कब जानना चाहिए। संक्षेप में - "बैंकीय शिक्षा" में शिक्षक की भूमिका को अधोलिखित बिंदुओं के अंतर्गत समझा जा सकता है –

- शिक्षक ही जानता है कि छात्रों को क्या, कैसे, कब और कहाँ पढ़ाया जाएगा।
- शिक्षक विश्व को लेकर सर्वज्ञ है।
- शिक्षक को ही सोचने का हक है, छात्रों को नहीं।
- शिक्षक छात्रों में अनुशासन पैदा करता है।
- केवल शिक्षक ही कर्त्ता हो सकता है, छात्र नहीं, इत्यादि।

4.5.7.3 छात्रों की भूमिका

"बैंकीय शिक्षा" में छात्र "धैर्यवान, श्रवणकारी वस्तुएँ"[152] अथवा "जमादार (डिपोजिटरी)"[153] होते हैं, जिनका काम केवल इतना भर ही होता है कि वे शिक्षक द्वारा प्रदान किए गए तथाकथित अकाट्य सूचनागत ज्ञान को ज्यों-का-त्यों ग्रहण कर लें, रट लें, व संभालकर रख लें। इस रूप में छात्र लेखा अथवा फाइल संग्राहक की भूमिका में होते हैं, जो सूचनाओं को भ्रामक सक्रियता के साथ व्यवस्थित कर अपने पास रख लेते हैं, ताकि शिक्षक या शिक्षा व्यवस्था जब भी उनसे सूचना विशेष की माँग करे, तो वे संबंधित सूचना को ज्यों-का-त्यों प्रकट कर दें। इस तरह यह सच है - "वे जिन चीजों को जमा

[151] वही: 42

[152] वही: 33

[153] वही

रखते हैं, उनके संग्राहक और सूचीकार बनने का अवसर पाते हैं, लेकिन अंततः वे मनुष्य नहीं रहते और 'सृजनात्मकता', रूपांतरण तथा ज्ञान के अभाव में स्वयं ही फाइल होकर रह जाते हैं"।[154]

अतः, स्पष्ट है - "बैंकीय शिक्षा" में छात्र केवल शिक्षक की बातों को वस्तु रूपी 'असंवेदनशीलता' को धारण कर चुपचाप सुनते हैं व रट लेते हैं; और शिक्षक के ज्ञान को आलोचना से परे मानते हैं। इससे छात्रों में 'सृजनात्मक शक्ति' ख़त्म होती है; व "झट से विश्वास कर लेने की प्रवृत्ति"[155] बढ़ती है। वास्तव में, यही प्रवृत्ति "बैंकीय शिक्षा" को दीर्घकालिता प्रदान करती है। इस प्रवृत्ति को अपनाने के कारण ही छात्र "अपनी इस वास्तविकता को कभी नहीं जान पाते कि वे भी शिक्षित करते हैं"।[156] इसके बजाय वे तो संवेदनारहित होकर वस्तु की भाँति निम्नलिखित दो चरणों के ज़रिए अपनी भूमिका का निर्वाह करते रहते हैं -

प्रथम चरण: शिक्षक की बातों को सुनना।

द्वितीय चरण: शिक्षक से सुनी गई बातों को ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर याद कर लेना।

उपर्युक्त दो चरणों के अंतर्गत छात्र 'सूचना-डब्बे' में बदल जाते हैं; व उनका वैश्विक आनुभाविक संपर्क नहीं रह जाता। इसके अतिरिक्त, वे विश्व की घटनाओं व प्रक्रियाओं से संपर्क साधने के लिए शिक्षक के सूचना रूपी ज्ञान पर पूर्णत: निर्भर होते हैं। संक्षेप में - "बैंकीय शिक्षा" में -

- छात्र विश्व के बारे में कुछ नहीं जानते।
- छात्र नहीं जानते कि विश्व को कैसे जाना जाता है।
- छात्रों में सोचने व "आलोचनात्मक चिंतन" की काबिलियत नहीं होती।

---

[154] वही: 34

[155] वही: 35

[156] वही: 34

- छात्रों को केवल निर्देशों व सूचनाओं को स्वीकार कर अनुशासित रहना चाहिए।
- छात्रों को शिक्षक के कर्म पर पूरा भरोसा करना चाहिए, इत्यादि।

4.5.7.4 ज्ञान

"ज्ञान होता है - अविष्कार और पुनराविष्कार करने से; उस बेचैन, अधीर, सतत और आशायुक्त जिज्ञासा से, जिसकी पूर्ति के लिए मनुष्य विश्व में, विश्व के साथ और एक-दूसरे के साथ सक्रीय होते हैं"।[157] परन्तु, "शिक्षा की बैंकीय अवधारणा" में ज्ञान का यह रूप स्वीकार नहीं किया जाता। ऐसा इसलिए, क्योंकि इसके इस रूप में छात्रों को 'आलोचनात्मक रूप से चेतन' बनाने का प्रयास भी शामिल रहता है। "बैंकीय शिक्षा" में इस प्रयास को कुव्यवस्था के तौर पर देखा जाता है, क्योंकि 'आलोचनात्मक रूप से चेतनशील छात्र' शिक्षक की बात को ज्यों-का-त्यों स्वीकार नहीं करता। वस्तुतः, "बैंकीय शिक्षा" में ज्ञान मात्र सूचना अथवा सूचनाओं का संग्रह होता है, जो कि शिक्षक द्वारा छात्रों को इस अपेक्षा से दिया जाता है कि छात्र इस ज्ञान को चुपचाप स्वीकार कर अपनी पूर्वग्रहित सूचनाओं में व्यवस्थित कर लेंगे, अर्थात्, "'शिक्षा की बैंकीय अवधारणा' ('बैंकिंग कान्सैप्ट') में ज्ञान एक उपहार होता है, जो स्वयं को ज्ञानवान समझने वालों के द्वारा उनको दिया जाता है, जिन्हें वे नितांत अज्ञानी मानते हैं"।[158]

4.5.7.5 'सक्रियता' व 'सृजनात्मकता'

"बैंकीय शिक्षा" में यह अंतर्निहित है कि छात्र कोरी स्लेट होते हैं; और उनके द्वारा ज्ञान का निर्माण नहीं किया जा सकता। उन्हें तो केवल शिक्षक से ग्रहण करना होता है। "बैंकीय शिक्षा" के तहत छात्रों से अपेक्षा रहती है कि वे केवल इतने सक्रिय हों कि दिए गए सूचना रूपी ज्ञान को चुपचाप स्वीकार कर लें; व व्यवस्थित कर लें। तभी, फ्रेरे लिखते हैं - "यह 'शिक्षा की बैंकीय

[157] वही

[158] वही

अवधारणा' ('बैंकिंग कान्सैप्ट') है, जिसमें छात्रों की सक्रियता के लिए सिर्फ इतनी गुंजाईश होती है कि वे जमाओं को ग्रहण कर लें, फाइल कर लें, और संभाल कर रखे रहें"।[159]

इसके बरक्स 'सृजनात्मकता' में स्वयं पहल कर खुद को व अपने आसपास को जानना, रचना, पुनर्रचना, जटिलताओं की पहचान और उनके हल हेतु 'सहभागी प्रयास' शामिल रहते हैं। परन्तु, "बैंकीय शिक्षा" में 'सृजनात्मकता' की कोई गुंजाईश नहीं होती, क्योंकि 'सृजनात्मकता' आलोचनात्मक रूप से सतत चेतनशीलता की परिचायक होती है; और आलोचनात्मक रूप से चेतनशील व्यक्ति किसी भी बात पर विश्वास करने से पहले तर्कशक्ति का प्रयोग करता है। परिणामतः, व्यक्ति किसी भी बात को तुरंत स्वीकार करने की बजाय सर्वप्रथम उसके विभिन्न पक्षों पर समग्र चिंतन करता है। इसमें उसका अनुभव सहायता करता है। 'सृजनात्मक' व्यक्ति की यही विशेषताएँ "बैंकीय शिक्षा" की कार्यप्रणाली की विरोधक होती हैं। वस्तुतः, "'बैंकीय शिक्षा' छात्रों की 'सृजनात्मक शक्ति' को न्यूनतम कर देती है या समाप्त कर देती है; और झट से विश्वास कर लेने की प्रवृत्ति को बढ़ाती है"।[160] अतः, "बैंकीय शिक्षा" के अंतर्गत छात्रों की सक्रियता केवल ग्रहण करने तक ही सीमित रहती है; व उनकी 'सृजनात्मकता' एक 'आभासी सृजनात्मकता' बनकर रह जाती है, जिसमें शिक्षक द्वारा दिए गए सूचना रूपी ज्ञान को रटना व व्यवस्थित करना भर शामिल होता है, ताकि शिक्षा व्यवस्था द्वारा माँग होने पर इस ज्ञान को तुरंत उगलकर अपनी तथाकथित 'सृजनात्मकता' का प्रदर्शन किया जा सके।

4.5.7.6 अनुकूलन व प्रबंधन

"शिक्षा की बैंकीय अवधारणा" के अंतर्गत शिक्षा व्यवस्था अथवा शिक्षक छात्रों के व्यवहार का नियमन कर उन्हें आज्ञा पालन करने अथवा निर्देश ग्रहण कर अनुपालन करने वाले में बदलने का प्रयास करते हैं; साथ ही

---

[159] वही

[160] वही: 35

छात्रों से इस बात की अपेक्षा की जाती है कि वे प्रदान किए गए सूचना रूपी ज्ञान अथवा जानकारियों को ठीक से प्रबंधित अथवा व्यवस्थित कर लेंगे, ताकि व्यवहारिक उद्देश्यों की पूर्ति हो सके। सामाजिक व्यवहारिकता अथवा व्यवस्था का यह तकाज़ा होता है कि व्यक्तियों के चिंतन को इस रूप में बदल दिया जाए कि व्यक्ति उसे तुरंत स्वीकार कर लें। व्यवस्था अपनी कार्यप्रणाली से व्यक्ति का ध्यान अपने शोषणकारी घटकों से हटाकर व्यक्ति को अविरोधक भाव के प्रति नियमित अथवा अनुकूलित करने का प्रयास करती है। इससे उत्पीड़नकारी व्यवस्था की आयु में दीर्घकालिता लाई जा सकती है। "बैंकीय शिक्षा" शोषणकारी व्यवस्था-पोषक तत्त्वों के इसी उद्देश्य की पूर्ति में सहायक होती है। फ्रेरे के शब्दों में, "शिक्षा की बैंकीय अवधारणा" में मनुष्य अनुकूलनीय व प्रबंधनीय होते हैं। छात्र स्वयं को दी गई जितनी 'जमाओं' का संग्रह करते हैं, उतनी ही कम उनकी यह 'आलोचनात्मक चेतना' विकसित हो पाती है"।[161] "बैंकीय शिक्षा" के अंतर्गत छात्र "स्वयँ पर थोप दी गई निष्क्रियता की भूमिका को जितनी अधिक पूर्णता के साथ मानते हैं, उतनी ही सरलता से वे विश्व से और यथार्थ के विखंडित दृष्टिकोण से स्वयं को अनुकूलित करते हैं"।[162] अत:, "बैंकीय शिक्षा" आलोचनात्मक रूप से चेतन होने की बजाय यथार्थ के झूठे अक्स को आदर्श स्थिति के बतौर बताती है। "बैंकीय शिक्षा" प्राप्त कर बने शिक्षक इस प्रयास को जाने-अनजाने और सुदृढ़ता प्रदान करते हैं। ऐसा इसलिए, क्योंकि उन्हें लगता है कि जिन शैक्षिक तथ्यों के साथ वे इतने वर्षों से अपना काम चला रहे हैं, वे ही श्रेष्ठ तथ्य हैं; और उनके छात्रों को भी इसे जानना अपना ध्येय बना लेना चाहिए; इस तथ्यपरक शिक्षा को प्राप्त कर ही ये छात्र 'वास्तविक ज्ञानी' बन सकेंगे, परन्तु असल में इस प्रकार की शिक्षा से छात्र निष्क्रिय बन ऐसी वस्तुओं में बदल जाते हैं, जो केवल अपने शिक्षक के बोलने से ही जागते हैं।

"बैंकीय शिक्षा" सम्बन्धी उपर्युक्त विश्लेषण को अधोरचित आरेख अथवा आकृति 12 के माध्यम से समझा जा सकता है –

---

[161] वही

[162] वही

आकृति 12

शिक्षा की 'बैंकीय अवधारणा'

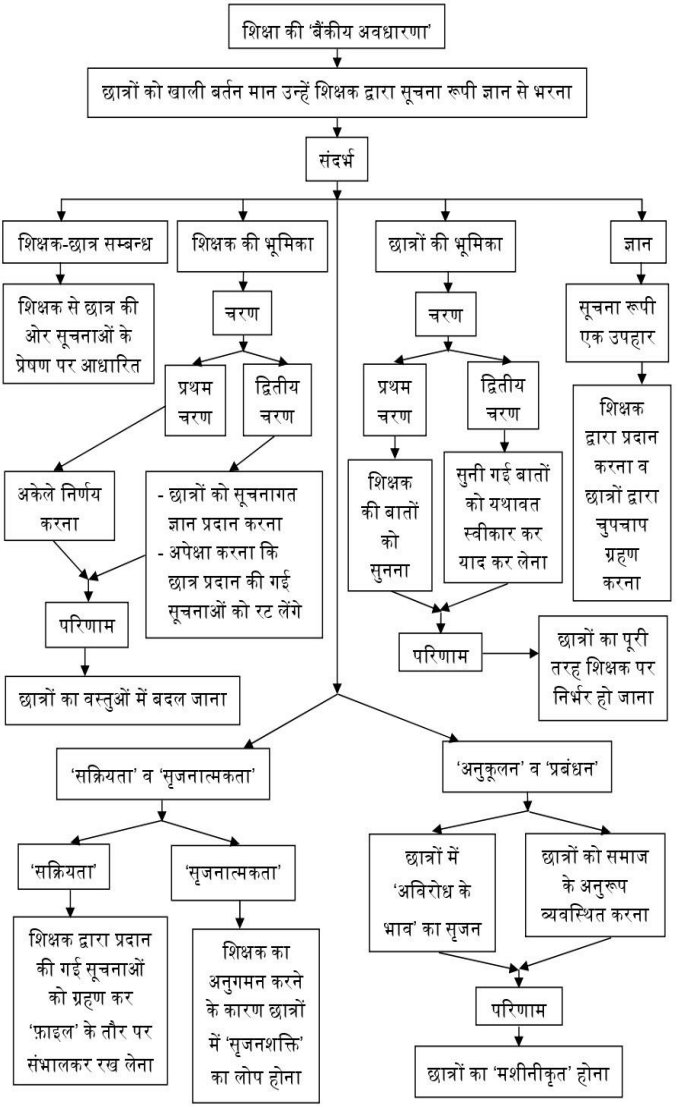

4.5.8 "शिक्षा वर्णन के रोग से पीड़ित है"।[163]

फ्रेरे के इस कथन का अर्थ है – जैसे एक रोगी को स्वस्थ होने के लिए अपने चिकित्सक द्वारा वर्णित तरीकों पर निर्भर रहना पड़ता है, उसी प्रकार शिक्षा व्यवस्था का ढाँचा ऐसा है, जिसमें छात्र को विश्व के सम्बन्ध में अज्ञान रूपी रोग से पीड़ित मानकर शिक्षक रूपी चिकित्सक द्वारा उसका ईलाज किया जाता है। इससे छात्र शीघ्रातिशीघ्र स्वस्थ होकर समाज के अनुरूप समंजित हो पाता है।

शिक्षा व्यवस्था में जहाँ एक ओर, छात्रों को अज्ञान रूपी रोग से पीड़ित समझा जाता है, वहीं दूसरी ओर फ्रेरे की दृष्टि में वस्तुतः, वह शिक्षा व्यवस्था अथवा शिक्षक है, जो रोग से पीड़ित हैं, क्योंकि शिक्षा व्यवस्था अथवा शिक्षक व्यवस्था को यथावत बनाए रखने के वास्ते छात्रों को अज्ञानी मानकर उन्हें वर्णन द्वारा सूचनाओं से भरते रहते हैं।

ऐसा करने से छात्र सच्चाई से कटकर वास्तविकता और स्वयँ के अनुभवों के बीच सम्बन्ध नहीं तलाश पाते। फलस्वरूप, छात्र निर्जीवता अथवा निष्क्रियता रूपी रोग से ग्रस्त हो जाते हैं; व उनमें "झट से विश्वास करने की प्रवृत्ति"[164] पनपने लगती है। तभी, फ्रेरे लिखते हैं – "स्कूल के अंदर हो या बाहर का, किसी भी स्तर के शिक्षार्थी-शिक्षक सम्बन्ध का सावधानी से विश्लेषण करें, इसका चरित्र मूलतः वर्णात्मक है"।[165] इस शिक्षक-छात्र सम्बन्ध में "एक ओर वर्णनकारी कर्त्ता (शिक्षक) होता है; दूसरी ओर उसकी धैर्यवान, श्रवणकारी वस्तुएँ (छात्र)। मूल्य हों या यथार्थ के प्रत्यक्ष आयाम, जिन चीजों का वर्णन किया जाता है, वे वर्णन की प्रक्रिया में निर्जीव और जड़ हो जाती हैं"।[166]

---

[163] वही: 33

[164] वही: 35

[165] वही: 33

[166] वही

असल में, फ्रेरे मानते थे - शिक्षा-तंत्र ऐसा हो, जिसमें शिक्षक-शिक्षार्थी के अनुभवों को पर्याप्त स्थान दें। किसी भी वस्तु या घटना का वर्णन केवल दूसरों के उदाहरणों पर ही निर्भर नहीं होना चाहिए, बल्कि शिक्षण प्रक्रिया में सीखने वाले के अनुभवों अथवा दृष्टांतों को भी स्थान मिलना चाहिए, नहीं तो सीखना दीर्घकालिक नहीं हो सकेगा।

उपर्युक्त विश्लेषण निम्नरचित आरेख अथवा आकृति 13 के ज़रिए ग्राह्य हो सकता है -

आकृति 13

शिक्षा में वर्णन का रोग

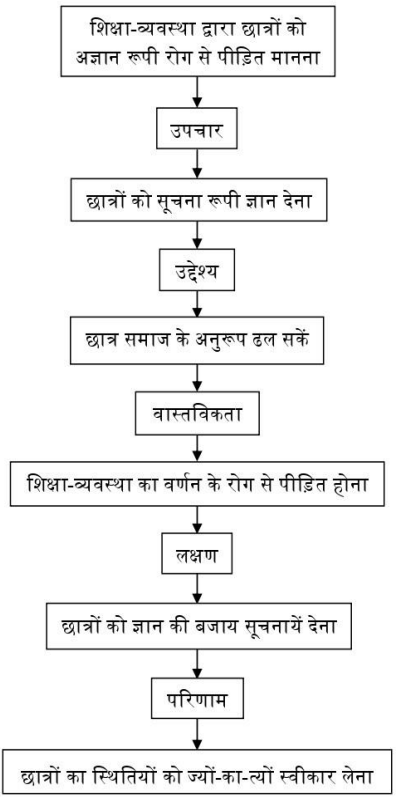

4.5.9 "दूसरों को परम अज्ञानी बताना उत्पीड़िन की विचारधारा की विशेषता है"।[167]

"बैंकीय शिक्षा" छात्रों को शोषित करती है; व छात्रों को परम अज्ञानी मानकर उन्हें शिक्षित करना इसकी एक विशेषता है। वस्तुतः, यह भी एक आसान तरीका है, जिसमें स्वयं को ज्ञानवान् प्रस्थापित करने हेतु दूसरे व्यक्ति को अज्ञानी कहा जाता है। फ्रेरे के अनुसार "बैंकीय शिक्षा" में छात्रों संग शिक्षक ऐसा ही करते हैं। उनके अनुसार "बैंकीय शिक्षा" में निहित उत्पीड़न की विचारधारा (अथवा शोषण करने वाले) "शिक्षा और ज्ञान को जिज्ञासा की प्रक्रिया नहीं मानती। शिक्षक अपने छात्रों के समक्ष स्वयं को एक आवश्यक विलोम के तौर पर प्रस्तुत करता है, उन्हें परम अज्ञानी मानकर वह अपने अस्तित्व का औचित्य सिद्ध करता है"।[168]

"बैंकीय शिक्षा" में ऐसा करना शिक्षक के लिए शिरोधार्य भी होता है। असल में, "बैंकीय शिक्षा" में उसकी भूमिका "बैंक-क्लर्कनुमा शिक्षक"[169] की होती है, जिसका कार्य व्यवस्था-पोषक क्रियाकलापों के माध्यम से तंत्र को, भले ही वह शोषणकारी अथवा शोषण का समर्थक ही क्योंकर न हो, स्थायित्व प्रदान करने में मदद देना भर होता है। इसके अतिरिक्त, ऐसी मानसिकता को धारण कर छात्रों को व्यवस्था के अनुरूप शिक्षित करना उसके अपने हित में भी होता है, अन्यथा वह स्वयं भी व्यवस्था के शोषण अथवा बेरोजगारी का शिकार हो सकता है। इसे शिक्षक द्वारा "स्वतंत्रता से भयभीत" होने के रूप में विश्लेषित कर सकते हैं।

संक्षेप में - उत्पीड़नकारी व्यवस्था अथवा इसके समर्थक अपने कार्यों की स्वीकृति हेतु व्यक्तियों को समाजीकृत अथवा अनुकूलित करने का सतत प्रयास करते हैं। इसके लिए शिक्षा व्यवस्था के ज़रिए उत्पीड़न अथवा शोषण को झेल रहे व्यक्तियों की मानसिकता में परिवर्तन कर उनके आक्रोश को शांत

---

[167] वही: 34

[168] वही

[169] वही: 36

करा जाता है। ऐसे में सर्वप्रथम उन्हें आलसी, कामचोर व अज्ञानी बताया जाता है। तदोपरांत, उत्पीड़ितों में बेहतर भविष्य की आस जगाकर शिक्षा व्यवस्था में अंतर्निहित प्रभुत्वकारी विचारधारा के ज़रिए उनके आलोचनात्मक नज़रिये अथवा आक्रोश को शांत कर उन्हें व्यवस्था के अनुरूप ढाला जाता है। इससे शोषणकारी व्यवस्था में दीर्घकालिता आती है।

"बैंकीय शिक्षा" के अंतर्गत उत्पीड़न की दीर्घकालिक विचारधारा को निम्नरचित आरेख अथवा आकृति 14 द्वारा समझा जा सकता है -

आकृति 14

उत्पीड़नकारी व्यवस्था में दीर्घकालिता आना

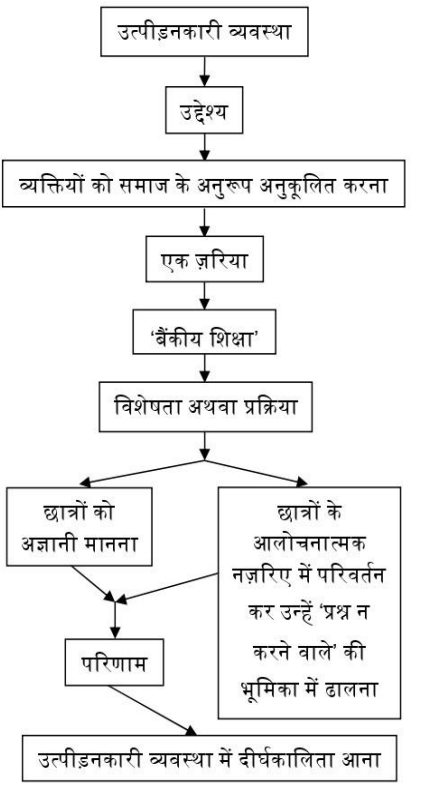

4.5.10 "उत्पीड़ितों को स्वस्थ समाज की विकृति माना जाता है"।[170]

शोषणकारी व्यवस्था-पोषक लोग शोषणकारी व्यवस्था को आदर्श के तौर पर देखते हैं, क्योंकि इस व्यवस्था के अंतर्गत वे लाभ की अवस्था पर होते हैं। इस मनगढ़ंत आदर्श के बरक्स उत्पीड़ितों को एक विकृति अथवा असंगति समझा जाता है। उत्पीड़क सोचते हैं - चूँकि, उत्पीड़ित आलसी अथवा कामचोर होते हैं, अतः उन्हें व्यवस्था के अनुरूप सक्षम होने की आवश्यकता है। इस लक्ष्य प्राप्ति के लिए उत्पीड़क "शिक्षा की बैंकीय अवधारणा" को "एक 'पैतृकवादी सामाजिक कर्म' के तंत्र के साथ इस्तेमाल करते हैं, जिसके अंदर उत्पीड़ितों को 'कल्याण प्रापक' की श्रुतिमधुर उपाधि प्राप्त होती है"[171], अर्थात् उत्पीड़क इस तंत्र को लंबे समय तक प्रयोग करते रहते हैं। इसमें "उत्पीड़ितों को एक वर्ग, समुदाय अथवा आम जनता के रूप में नहीं, बल्कि निजी मामलों के रूप में देखा जाता है"।[172] तभी, उत्पीड़ितों के साथ "ऐसे सीमांतीय मनुष्यों का-सा व्यवहार किया जाता है, जो मानो एक 'अच्छे, संगठित और न्यायपूर्ण' समाज के सामान्य संगठन से विचलन करके स्वयं ही हाशिए पर चले गए हों"।[173]

इस प्रकार उत्पीड़ितों के आक्रोश को दबाने के लिए अथवा उन्हें भरोसा दिलाने के लिए कि वे बुरे या विकट हालातों में इसलिए हैं, क्योंकि वे आलसी व कामचोर हैं, उत्पीड़क अधोलिखित दो बिंदुओं को एक-साथ प्रयोग में लाते हैं –

1. "पैतृकवादी सामाजिक कर्म" करना अथवा "मिथ्या उदारता" का पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रकटीकरण
2. "बैंकीय शिक्षा" का अनुप्रयोग

---

[170] वही

[171] वही

[172] वही

[173] वही

"पैतृकवादी सामाजिक कर्म" द्वारा जहाँ एक ओर, उत्पीड़क उत्पीड़ितों को अपनी शोषित जटिलताओं को नियति-खेल समझने को बाध्य कर देते हैं, वहीं दूसरी ओर "बैंकीय शिक्षा" के ज़रिए वे उत्पीड़ितों को इस प्रकार शिक्षित अथवा अनुकूलित करने का प्रयास करते हैं, जिससे उत्पीड़ितों में एक तो उभरा आक्रोश समतल हो जाता है व दूसरा उत्पीड़ितों में 'यांत्रिक संस्कृति' का आच्छादन हो जाता है। इस 'यांत्रिक संस्कृति' के अंतर्गत उत्पीड़ितों का व्यवहार एक स्वचालित यंत्र की भाँति हो जाता है। इसके अंतर्गत सूचनाओं अथवा निर्देशों को ग्रहण करना, माँगे जाने पर सूचनाओं का यथावत प्रकटीकरण करना, निर्देशों का पालन करना, आलोचनात्मकता से दूरी बनाए रखना, व स्थितियों को ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर लेना उत्पीड़ित अपना कर्त्तव्य अथवा व्यवहार बना लेते हैं। यह उत्पीड़कों की उसी मानसिकता की तुष्टि का द्योतक है, जिसमें यह माना जाता है कि सामाजिक व्यवस्था तो ठीक है, परन्तु उत्पीड़ित अज्ञानतावश स्वयं सीमांतकों पर चले गए हैं; व "इन सीमांतीय लोगों को उस स्वस्थ समाज में 'संघटित करना', 'शामिल करना' आवश्यक है, जिसका इन्होंने 'परित्याग' कर रखा है"।[174]

फ्रेरे की दृष्टि में उत्पीड़ित स्वयं सामाजिक हाशिए पर नहीं पहुँचे हैं, बल्कि उन्हें सोचे-समझे संगठित प्रयास द्वारा व सारा लाभ खुद प्राप्त करने की इच्छा और लालसा के वशीभूत होकर उत्पीड़कों द्वारा विकास-लाभ की सीमा के परे धकेल दिया गया है। इसलिए वे लिखते हैं कि – "उत्पीड़ित लोग 'हाशिए पर के लोग' नहीं हैं। वे ऐसे मनुष्य नहीं हैं, जो समाज के 'बाहर' रहते हों। वे हमेशा भीतर रहे हैं - उस संरचना के भीतर जिसने उन्हें 'दूसरों के लिए जीने वाला' बना रखा है"।[175]

उत्पीड़ितों की स्थिति में सुधार के वास्ते शोषणकारी संरचना व ''प्रेमविहीनता की स्थिति'' में बदलाव की आवश्यकता होती है। परन्तु,

[174] वही

[175] वही

उत्पीड़क अपनी लाभ की स्थिति को बनाए रखने के लिए इस बात का घोषित-अघोषित विरोध करते हैं। इसके लिए वे अग्रलिखित तत्त्वों का सहारा लेते हैं-

- हिंसा
- उत्पीड़ितों को "मिथ्या उदारता" के द्वारा दिग्भ्रमित करना
- "बैंकीय शिक्षा" द्वारा छात्रों को "आलोचनात्मक चेतना" व "विवेकीकरण" प्रक्रिया से दूर रखना

उपर्युक्त बिंदुओं को ध्यान में रखकर ही फ्रेरे उत्पीड़ितों की स्थिति में सुधार के वास्ते लिखते हैं कि – "उत्पीड़ितों की समस्या का समाधान उत्पीड़न की संरचना में उन्हें 'संघटित' करना नहीं, बल्कि इस संरचना को बदलना है, ताकि वे 'स्वाधीन प्राणी' बन सकें। निश्चिय ही ऐसा बदलाव उत्पीड़कों के प्रयोजनों की जड़ खोदने वाला होगा"।[176] इस वजह से उत्पीड़क "छात्रों के 'विवेकीकरण' से डरते हैं; और इस खतरे को टालने के लिए 'शिक्षा की बैंकीय अवधारणा' का इस्तेमाल करते हैं"।[177]

संक्षेप में - उत्पीड़क उत्पीड़ितों को शोषण के प्रति अकर्मण्यी बनाने के वास्ते पीढ़ी-दर-पीढ़ी 'पितातुल्य व्यवहार' व "बैंकीय शिक्षा" का अनुप्रयोग करते रहते हैं, जबकि उत्पीड़ितों की स्थिति में सुधार के वास्ते उन्हें आलोचनात्मक रूप से चेतन बनाने की आवश्यकता होती है। इसे इस रूप में भी समझा जा सकता है कि उत्पीड़क हमेशा यह प्रयास करते रहते हैं कि उत्पीड़ित स्वयं को ही शोषणकारी परिस्थितियों का कारण समझते रहें; और अपनी मुक्ति का प्रयास न करें। इसके लिए उत्पीड़ित समय-समय पर उत्पीड़ितों का उतना ही भला करते हैं, जिससे कि उत्पीड़ित उन्हें अपने उत्पीड़न का कारण न समझें; और सोच को कुंद बनाने वाली "बैंकीय शिक्षा" में ही दीर्घकाल तक उलझे रहें। उपर्युक्त विश्लेषण को अधोरचित आरेख अथवा आकृति 15 के माध्यम से समझा जा सकता है -

---

[176] वही

[177] वही

आकृति 15

उत्पीड़ितों द्वारा व्यवस्था को यथावत स्वीकार करना

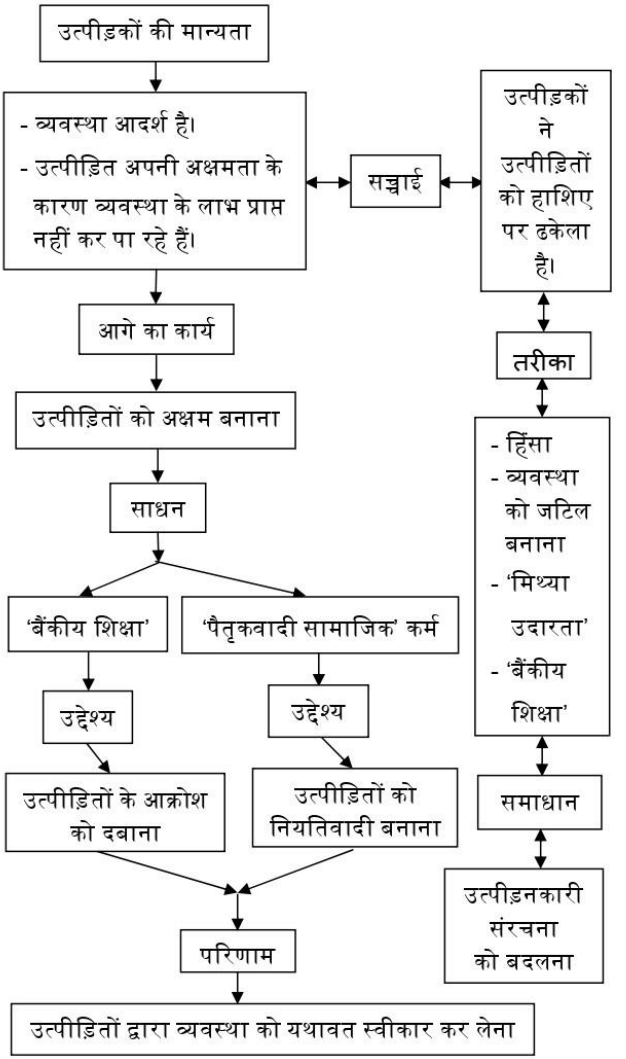

4.5.11 "संकीर्णतावाद" और "आमूल परिवर्तनवाद"

"संकीर्णतावाद" से अभिप्राय अपने (दलगत) मत अथवा सोच को सर्वोपरि मानकर चलने से है। ऐसे में इस बात की गुंजाईश नहीं बचती कि दूसरे व्यक्ति या व्यक्तियों के विचारों को समन्वित कर अथवा समझकर समग्र सोच की तरफ़ बढ़ा जा सके। "संकीर्णतावाद" अपने मत के प्रति व्यक्ति की सोच को अंधा बनाता है। इस तरह "संकीर्णतावादी" वैचारिक रूप से अन्य व्यक्तियों से कटकर अलगाव की अवस्था पर पहुँच जाता है। "संकीर्णतावादी" अपने इर्द-गिर्द मिथकीय संसार गढ़ लेता है; और इससे बाहर आने का कोई संघर्षमय प्रयास नहीं करता। इससे उसके अविवेक में वृद्धि होती है। फ्रेरे के अनुसार "'संकीर्णतावाद' किसी भी क्षेत्र का हो, मानवमुक्ति में बाधक होता है"।[178]

फ्रेरे उत्पीड़नकारी संरचना में परिवर्तन व उसमें बाधक विचारों अथवा कारकों को अग्रलिखित तीन श्रेणियों के अंतर्गत रखकर विवेचित करते हैं –

- "दक्षिणपंथी संकीर्णतावादी" अथवा "जन्मजात संकीर्णतावादी"
- "वामपंथी संकीर्णतावादी"
- "आमूल परिवर्तनवादी"

उपर्युक्त पहली व दूसरी श्रेणी की तुलना के सम्बन्ध में फ्रेरे के अनुसार "'दक्षिणपंथी संकीर्णतावादी' वर्तमान को पालतू रखना चाहता है, जिससे (वह आशा करता है कि) भविष्य इसी पालतू वर्तमान को पुनरुत्पन्न करे, जबकि 'वामपंथी संकीर्णतावादी' भविष्य को पूर्व-स्थापित समझता है - एक प्रकार का अवश्यंभावी भवितव्य, सौभाग्य या नियति"।[179]

अतः, "दक्षिणपंथी संकीर्णतावादियों" के अनुसार भविष्य का निर्माण नहीं किया जा सकता, बल्कि वह वर्तमान का पुनरुत्पादन है। तभी, वे वर्तमान को अपने दृष्टिकोण से परिवर्तित कर "सभ्य शिष्ट"[180] वर्तमान का स्वप्न गढ़ते हैं।

---

[178] वही: 4

[179] वही

[180] वही

उनका यह वर्तमान यथार्थ अथवा वास्तविकता से कटा हुआ होता है। दूसरी ओर, वामपंथी से "संकीर्णतावादी" बना व्यक्ति भविष्य को पूर्व स्थापित समझता है। उसके लिए भविष्य पहले से निर्धारित वह अटल सच होता है, जिसे बदलने हेतु उस पर किसी प्रकार का संदेह नहीं हो सकता, बल्कि उसके घटने का केवल इंतज़ार किया जा सकता है, अर्थात् "दक्षिणपंथी संकीर्णतावादी" व "वामपंथी संकीर्णतावादी" दोनों ही भविष्य को बदलने के लिए अथवा वर्तमान जटिल सामाजिक उत्पीड़नकारी परिस्थितियों में बदलाव का जोखिम उठाने से भयभीत रहते हैं; और केवल 'सक्रियतावादी' अथवा 'प्रतिक्रियावादी' बनकर रह जाते हैं। इस परिप्रेक्ष्य को निम्न आकृति 16 के रूप में समझा जा सकता है –

आकृति 16

'संकीर्णतावादियों' की पहचान, श्रेणियाँ व सोच

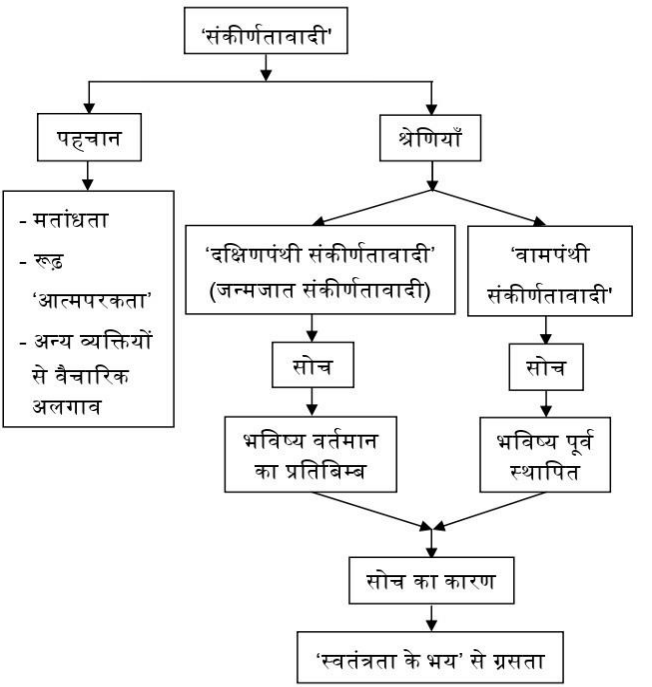

उत्पीड़नकारी संरचना में परिवर्तन व उसमें बाधक विचारों अथवा कारकों से सम्बन्धित पूर्वोक्त तीसरी श्रेणी – "आमूल परिवर्तनवादी" के सम्बन्ध में फ्रेरे लिखते हैं कि – "'आमूल-परिवर्तनवाद', जो आलोचनात्मक भावना से पुष्ट होता है, हमेशा सृजनात्मक होता है। 'संकीर्णतावाद' मिथक गढ़ता है; और उससे अलगाव पैदा होता है। 'आमूल परिवर्तनवाद' आलोचनात्मक होता है; इसलिए मुक्त बनाता है"।[181] इसके अतिरिक्त, "'आमूल परिवर्तनवादीकरण' में अपने लिए चुने गए दृष्टिकोण के प्रति उत्तरोत्तर बढ़ती हुई प्रतिबद्धता शामिल है; और इस प्रकार उसमें ठोस, वस्तुपरक यथार्थ का रूपांतरण करने के प्रयास में उत्तरोत्तर अधिक संलग्नता भी शामिल है"।[182] अतः, "आमूल परिवर्तनवादियों" के लिए भविष्य कोई पहले से निर्धारित आकट्य नियति नहीं होता, बल्कि उनके अनुसार भविष्य का सतत निर्माण किया जा सकता है। ऐसी निर्माणात्मक सोच व दृष्टि "आमूल परिवर्तनवादियों" को आलोचनात्मक होने से प्राप्त होती है। जहाँ "संकीर्णतावादी" पूर्णतः आत्मपरक होते हैं, वहीं "आमूल परिवर्तनवादी" आत्मपरकता का भी वस्तुगत विश्लेषण के साधन के तौर पर प्रयोग कर लेते हैं। इस प्रकार "आमूल परिवर्तनवादियों" में सृजनात्मकता का गुण होता है। इस सम्बन्ध में फ्रेरे लिखते हैं कि – "'आमूल-परिवर्तवादी' कभी आत्मपरकतावादी नहीं होता। उसके लिए आत्मपरक पक्ष का अस्तित्व वस्तुपरक पक्ष के संदर्भ में होता है, अर्थात् उस ठोस यथार्थ के संदर्भ में, जो उसके विश्लेषण की वस्तु है"।[183] इस तरह "आत्मपरकता और वस्तुपरकता एक द्वन्द्वात्मक एकता में परस्पर सम्बद्ध होकर कर्म के साथ ज्ञान को और ज्ञान के साथ कर्म को उत्पन्न करती है"।[184]

उपर्युक्त विश्लेषण से यह बात समझी जा सकती है कि "आमूल परिवर्तनवादियों" के लिए परिवर्तन से अभिप्राय उत्पीड़न की परिस्थितियों को जैसे-तैसे तुरंत पलटने से नहीं होता, बल्कि उनके अनुसार उत्पीड़न की

[181] वही: 3

[182] वही

[183] वही

[184] वही

परिस्थितियों अथवा संरचना में उत्पीड़ितों द्वारा इस प्रकार परिवर्तन लाया जाना चाहिए कि उत्पीड़ित वर्ग के साथ-साथ उत्पीड़क वर्ग भी उत्पीड़न अथवा दमन में बदलाव के प्रति चेतन हो सके।

स्पष्टतः, उत्पीड़न की संरचना में परिवर्तन एक दीर्घकालिक 'सतत-सहभागी' प्रक्रिया है। अतः, सार रूप में यह कहा जा सकता है कि "आमूल परिवर्तनवाद" से अभिप्राय उत्पीड़नकारी संरचना में इस प्रकार परिवर्तन लाने से है कि बेहतर भविष्य का सतत निर्माण करने अथवा शोषणमुक्त समाज की स्थापना हेतु सभी; विशेषतः उत्पीड़ित व उत्पीड़क को आलोचनात्मक रूप से जाग्रत किया जा सके।

"आमूल परिवर्तनवाद" में विश्वास रखने वालों को निम्न आरेख अथवा आकृति 17 के ज़रिए विवेचित कर सकते हैं –

आकृति 17

'आमूल परिवर्तनवादी' की पहचान व सोच

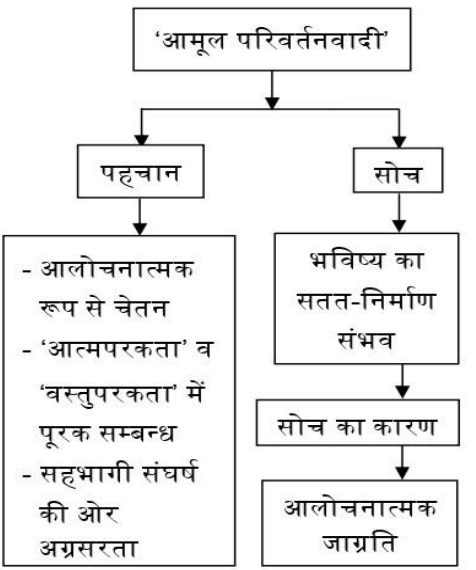

4.5.12 "मिथ्या उदारता" और "सच्ची उदारता"

"मिथ्या उदारता" से अभिप्राय ऐसी उदारता से है, जो समय-समय पर उत्पीड़कों द्वारा उत्पीड़ितों के प्रति इस प्रकार प्रकट की जाती है कि उत्पीड़ित अपने प्रति होने वाले उत्पीड़न का कारण उत्पीड़क वर्ग को न मानें। "मिथ्या उदारता" के कारण उत्पीड़ित उत्पीड़न के प्रति सचेत न होकर इसे नियति का खेल मान लेते हैं; और अपनी जटिलताओं हेतु स्वयं को ही दोष देने लगते हैं।

ऐसी 'मिथ्या सोच' में उत्पीड़ितों को उलझाने के लिए उत्पीड़क अक्सर ऐसा दिखावा करते हैं कि उन्हें उत्पीड़ितों की जटिल परिस्थितियों के प्रति समानुभूति है; और वे इसे बदलने हेतु सतत प्रयत्नशील हैं। परन्तु, वास्तविक स्थिति ठीक इसके उलट होती है, क्योंकि फ्रेरे के अनुसार "यह 'उदारता' उत्पीड़कों द्वारा दिखाई जाती है; और इसको प्रदर्शित करने का निरंतर अवसर पाते रहने के लिए आवश्यक है कि वे अन्याय को भी स्थायी रूप से जारी रखें"।[185]

"मिथ्या उदारता" के अंतर्गत उत्पीड़ितों की दमनात्मक स्थिति में सुधार के लिए उत्पीड़कों द्वारा उत्पीड़ितों को इतनी ही सहायता दी जाती है कि उन्हें केवल तत्कालीन राहत मिले, न कि वे सभी अपने प्रति किए जाने वाले दमन के प्रति जागरूक होकर अपनी स्थिति में सतत सुधार के वास्ते संगठित हो संघर्षशील बन सकें। इस प्रकार "मिथ्या उदारता" उत्पीड़कों के 'नरम बनने' का 'मिथ्या प्रकटीकरण' बनकर रह जाती है, जिससे उत्पीड़ित बार-बार छले जाते हैं। इस बीच उत्पीड़ितों को यह लगता है कि एक दिन उत्पीड़क उनकी विकट परिस्थितियों से उन्हें निकाल लेंगे; और उन्हें बराबरी का दर्ज़ा प्राप्त होगा। परन्तु, इस सुखद भविष्य की सतत आस उत्पीड़ितों के लिए एक मृगतृष्णा बनकर ही रह जाती है।

उपर्युक्त विवेचन को निम्न आरेख अथवा आकृति 18 द्वारा समझा जा सकता है -

---

[185] वही: 8

आकृति 18

'मिथ्या उदारता'

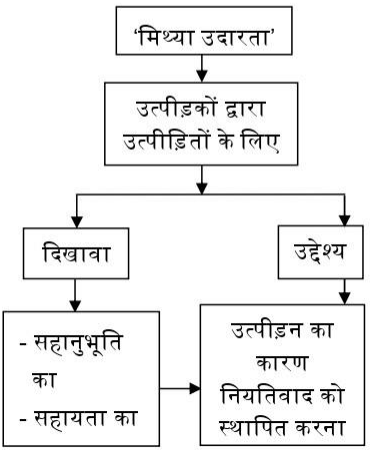

उत्पीड़ितों की अवस्था में दीर्घकालिक निरंतर सुधार हेतु "सच्ची उदारता" ज़रूरी है, जिसे उत्पीड़क अपने प्रभुत्व को बनाये रखने के लिए उत्पीड़ितों को प्रदान नहीं करते। "सच्ची उदारता" का प्रकटीकरण व्यक्तियों; विशेषतः उत्पीड़कों के ऐसे प्रयासों में निहित होता है, जिससे शोषित दया के लिए हाथ फैलाने की बजाय सामाजिक रूपांतरण के लिए संगठित हो संघर्ष करने की स्थिति में आ जाते हैं।

वस्तुतः, सहभागी व संगठित संघर्ष "मिथ्या उदारता" को पोषण देने वाले कारणों अथवा स्रोतों – "मृत्यु, निराशा और दरिद्रता"[186] का अंत कर सकता है। इसलिए फ्रेरे लिखते हैं कि – "'सच्ची उदारता' उस संघर्ष में ही होती है, जो संघर्ष "मिथ्या उदारता" का पोषण करने वाले कारणों को नष्ट करने के लिए किया जाता है। 'मिथ्या दानशीलता' लोगों को, अपने कांपते हुए हाथ फैलाने के लिए मज़बूर करती है"।[187] इसके अलावा, "'वास्तविक उदारता' तो ऐसा

[186] वही

[187] वही

प्रयास करने में है कि उन हाथों को याचना के लिए फैलाने की ज़रूरत कम पड़े, ताकि वे अधिक मानवीय हाथ बन सकें, जो काम करते हुए विश्व का रूपांतरण करते हैं"।[188] अतः, उत्पीड़कों के बदलने की प्रतीक्षा करने की अपेक्षा "सच्ची उदारता" को उत्पीड़ितों द्वारा 'सतत-सहभागी' संघर्ष करके ही प्राप्त करना होगा। संघर्ष में यह बात सन्निहित है कि उत्पीड़ित उत्पीड़कों की मानसिकता में परिवर्तन कर उन्हें "वास्तविक उदार" बनाएँगे। इस परिप्रेक्ष्य को निम्न आरेख अथवा आकृति 19 द्वारा समझा जा सकता है –

आकृति 19

'सच्ची उदारता'

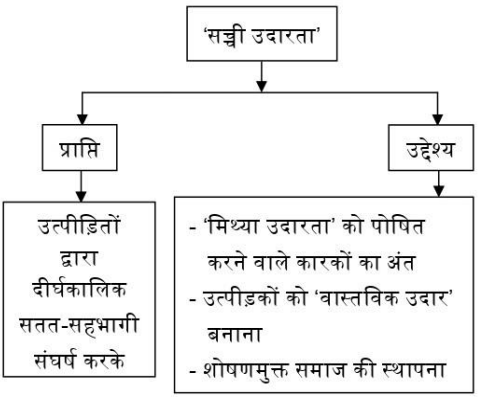

फ्रेरे के अनुसार विश्व का रूपांतरण करने के लिए चिंतन और कर्म आवश्यक हैं, अर्थात् समग्र वैचारिक निरंतरता और उसके सतत क्रियान्वयन की आवश्यकता है। उत्पीड़नकारी संरचना को बदलने के संघर्ष का कार्यभार, फ्रेरे के अनुसार, उत्पीड़ितों पर है। इसके अतिरिक्त, सोच और उसके क्रियान्वयन में तादात्म्यता भी बनी रहनी चाहिए, नहीं तो चिंतन मतारोपण में व कर्म प्रेमविहीनता अथवा रूढ़ता और आक्रामकता में बदल सकता है। ऐसे

[188] वही

में उत्पीड़न की एक नई संरचना पनप सकती है, जिसे 'प्रतिक्रियावाद' आधार प्रदान करता है।

4.5.13 "उत्पीड़ितों की मुक्ति उनके द्वारा किए गए 'आचरण' से होगी"।[189]

फ्रेरे उत्पीड़ितों की उत्पीड़न से मुक्ति को उनके द्वारा उत्पीड़नकारी संरचना को बदलने हेतु किए जाने वाले "चिंतन और कर्म की पूरकता" में देखते हैं। यह पूरकता फ्रेरे की नज़र में इसलिए भी आवश्यक है, ताकि उत्पीड़ित केवल 'प्रतिक्रियावादी' बनकर न रह जाएँ। क्योंकि, ऐसा हो सकता है कि उत्पीड़ितों के 'चिंतन और कर्म' के बीच बढ़ती दूरी उन्हें यथार्थता अथवा वास्तविकता से काटकर "दूसरा उत्पीड़क" बना दे। इसलिए फ्रेरे उत्पीड़ितों द्वारा दमनकारी परिवेश परिवर्तन हेतु मुक्ति-संघर्ष को प्रेमविहीनता के विरूद्ध संघर्ष के तौर पर देखते हैं। उनके अनुसार "इस लड़ाई का उद्देश्य चूँकि, उत्पीड़ितों द्वारा निश्चित किया जाएगा, इसलिए यह लड़ाई वस्तुतः प्रेमविहीनता के विरूद्ध प्रेम का कार्य होगी"।[190] अन्य शब्दों में, यह लड़ाई उस प्रेमविहीनता के खिलाफ़ होगी, "जो उत्पीड़कों की हिंसा में अंतर्निहित रहती है; उस प्रेमविहीनता के विरूद्ध, जो ऊपर से 'मिथ्या उदारता' की पोशाक पहने रहती है"।[191]

अतः, फ्रेरे की दृष्टि में उत्पीड़ितों का "आचरण" प्रेमविहीन नहीं होगा। क्योंकि, प्रेमरहित "आचरण" व्यक्ति के चिंतन को "संकीर्णता" व कर्म को ज़ोर-ज़बरदस्ती अथवा हिंसा में बदल सकता है। असल में, फ्रेरे की दृष्टि में चिंतन व कर्म द्वारा सामाजिक रूपांतरण तभी संभव हो सकता है, जब सिद्धांत और व्यवहार में पूरकता बनी रहे, अन्यथा हो सकता है कि "आचरण" "मतांधता" का पर्याय बनकर रह जाए। फ्रेरे के इस दृष्टिकोण को अधोरचित आरेख अथवा आकृति 20 द्वारा समझा जा सकता है –

---

[189] वही: 8-9

[190] वही: 9

[191] वही

आकृति 20

उत्पीड़न से मुक्ति की प्रक्रिया

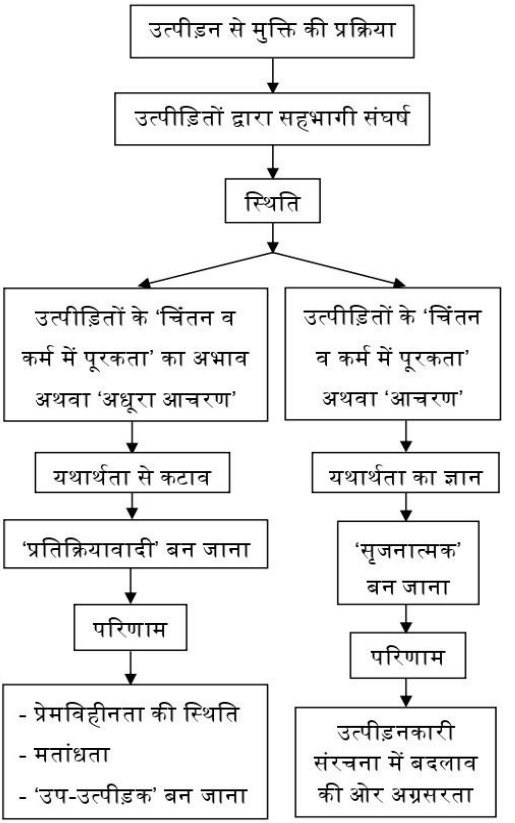

4.5.14 "स्वयं-उत्पीड़क" अथवा "उप-उत्पीड़क"

फ्रेरे के अनुसार ध्यातव्य है - "संघर्ष की प्रारंभिक अवस्था के दौरान प्रायः हमेशा ही उत्पीड़ितों में मुक्ति का प्रयास करने के बजाए 'स्वयं-उत्पीड़क' अथवा 'उप-उत्पीड़क' बनने की प्रवृत्ति दिखाई देती है"।[192] वस्तुतः, अधूरे "आचरण" ("चिंतन व कर्म में पूरकता" का अभाव) के कारण उत्पीड़ित

[192] वही

व्यक्ति दमन की परिस्थितियों के प्रति आलोचनात्मक रूप से पूरी तरह चेतन नहीं हो पाता।

ऐसे में वह दमन की संरचना में बदलाव के लिए किए गए प्रारंभिक संघर्ष से प्राप्त नवीन लाभ की स्थिति को खोना भी नहीं चाहता। फलस्वरूप, उसे उत्पीड़क की तरह "आचरण" करना ही आदर्शमय स्थिति नज़र आती है। इस मानसिकता में वह "मानुषीकरण" की प्रक्रिया को 'मर्दानगी' अथवा सत्ता प्राप्त कर ताकतवर बनने की होड़ से जोड़ लेता है। फ्रेरे की नज़र में यह उत्पीड़क बनना ही है। तभी वे लिखते हैं कि – "आदर्श उनका मनुष्य बनना ही होता है। लेकिन, वे 'मर्द' बनना चाहते हैं, जिसका मतलब है - उत्पीड़क बनना। उनके लिए वही मनुष्यता या 'मर्दानगी' का नमूना है"।[193]

इस प्रकार 'मर्द बनना' अथवा 'उत्पीड़क बनना' 'मनुष्य बनने' के आदर्श की जगह पा जाता है। फ्रेरे इसे अधोलिखित उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हैं –

"कोई विरला ही खेत-मजदूर होगा, जो एक बार 'ओवरसियर' के रूप में 'तरक्की' पा जाने के बाद अपने पुराने साथियों के लिए खुद मालिक से भी ज्यादा ज़ालिम न बन जाता हो। यह इसलिए होता है कि खेत-मज़दूर की स्थिति का संदर्भ, अर्थात् उत्पीड़न अपरिवर्तित रहता है। इस उदाहरण में दूसरे खेत-मज़दूरों से काम कराने वाला 'ओवरसियर' अगर अपनी नौकरी सलामत रखना चाहता है, तो उसे मालिक की तरह ही, बल्कि मालिक से भी ज्यादा सख़्त होना पड़ेगा"।[194]

अतः, उत्पीड़न से मुक्ति के संघर्ष की प्रारंभिक अवस्था में ऐसा हो सकता है कि उत्पीड़ित उत्पीड़कों जैसा व्यवहार अथवा मिथ्या "आचरण" करने लग जाएँ, अर्थात् उत्पीड़ित उत्पीड़कों के व्यवहार करने के तरीकों को ही आदर्श मान बैठें। इससे उत्पीड़नकारी संरचना में कोई बदलाव नहीं आता। इस रूढ़ स्थिति को निम्न आकृति 21 द्वारा समझा जा सकता है -

---

[193] वही

[194] वही: 10

आकृति 21

उत्पीड़ित का 'उप-उत्पीड़क' बनना



4.5.15 "उत्पीड़ित का व्यवहार एक 'निर्देशित व्यवहार' होता है"।[195]

फ्रेरे का मानना है कि उत्पीड़ित का व्यवहार एक निर्देश पालक की तरह होता है, अर्थात् उत्पीड़ितों की क्रियाशीलता उत्पीड़क के निर्देशों की मोहताज होती है। यह क्रियाशीलता 'वास्तविक क्रियाशीलता' न होकर 'निर्देशित क्रियाशीलता' अथवा 'निर्देशित व्यवहार' में बदल जाती है। तभी, फ्रेरे लिखते हैं – "प्रत्येक निर्देश निर्देशित व्यक्ति की चेतना को निर्देशक व्यक्ति की चेतना का अनुसरण करने वाली चेतना में बदलकर एक आदमी की इच्छा को दूसरे आदमी पर थोपने का काम करता है"।[196] इस प्रकार के 'निर्देशित व्यवहार' से उपजी उत्पीड़नकारी स्थिति से बचने के लिए उत्पीड़ितों को "स्वायत्तता तथा

[195] वही

[196] वही

उत्तरदायित्व"[197] के गुणों को अपनाना चाहिए, ताकि वे खुद की ऊर्जा पर भरोसा कर सतत संघर्ष द्वारा उत्पीड़न के बिम्बों से मुक्त हो सकें। इसके अतिरिक्त, "स्वायत्तता तथा उत्तरदायित्व" से ओतप्रोत होकर ही उत्पीड़ित, असल में स्वयं को "उप-उत्पीड़क" बनने की स्थिति से भी बचा सकते हैं; और 'प्रेमविहीनता की स्थिति' को बदल सकते हैं। उपर्युक्त प्रक्रिया का स्वरूप निम्न आरेख अथवा आकृति 22 के रूप में हो सकता है -

आकृति 22

'स्वायत्तता व उत्तरदायित्व' की भावना का विकास

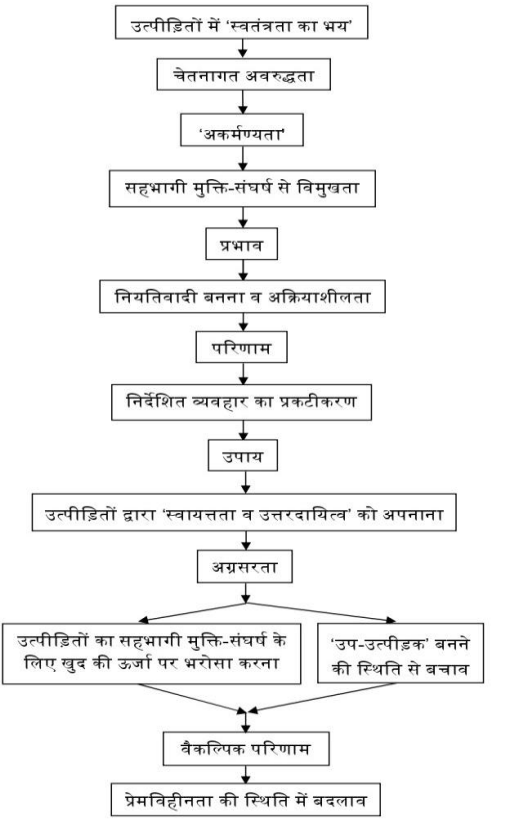

[197] वही

'प्रेमविहीनता की स्थिति' में बदलाव के संदर्भ में फ्रेरे उत्पीड़ितों हेतु निम्नलिखित प्रश्न[198] उपस्थित करते हैं –

1. वे स्वयं अपने होने और विभाजित रहने में से क्या चुनें; अपने भीतर से उत्पीड़क को निकाल फेंके या उसे वहीं बना रहने दें?
2. मानवीय एकजुटता को चुनें या अलगाव को?
3. निर्देशों का पालन करें या अपनी इच्छा से काम करें?
4. दर्शक बनें रहें या कर्त्ता बनें?
5. स्वयं सक्रिय हों या उत्पीड़कों के कर्म के ज़रिए सक्रिय होने का भ्रम पाले रहें?
6. बोलें या खामोश रहें?
7. नपुंसक बनें रहें या सृजन और पुनर्सृजन कर सकने वाली अपनी सत्ता से विश्व रूपांतरण करें?

उत्पीड़ितों को बार-बार उपर्युक्त प्रश्नों पर सोचना पड़ता है। कई दफ़ा उनके सामने भविष्य साफ़ होता है, तो कई दफ़ा भविष्य आशंकित होता है। स्पष्ट भविष्य व सुदृढ़ नेतृत्त्व के अभाव में उत्पीड़ित असमंजस की स्थिति में उलझे रहते हैं। वे कर्मण्यता को अपनाना चाहते हैं, परन्तु मार्गदर्शन के अभाव में प्रश्नों के हल निकालने की दिशा में अग्रसर नहीं हो पाते। उन्हें भविष्य के और अधिक खराब होने का डर सताता रहता है। इससे उनमें समझौतावादी प्रवृत्ति पनपती है, जो उन्हें खराब स्थितियों को ज्यों-का-त्यों स्वीकार करने को मजबूर कर देती है। इसका परिणाम यह होता है कि उत्पीड़ित भाग्यवादी हो जाते हैं। वे अपनी खराब परिस्थितियों के लिए नियती को दोष देने लगते हैं; और अपने व्यवहार में अकर्मण्यता को अपना लेते हैं। उन्हें बदलाव का विचार एक धर्मसंकट की तरह प्रतीत होने लगता है।

उनके इस 'वैचारिक धर्मसंकट' को निम्न आरेख या आकृति 23 में विश्लेषित कर सकते हैं -

[198] वही: 11

आकृति 23

उत्पीड़ितों का 'त्रासद धर्मसंकट'

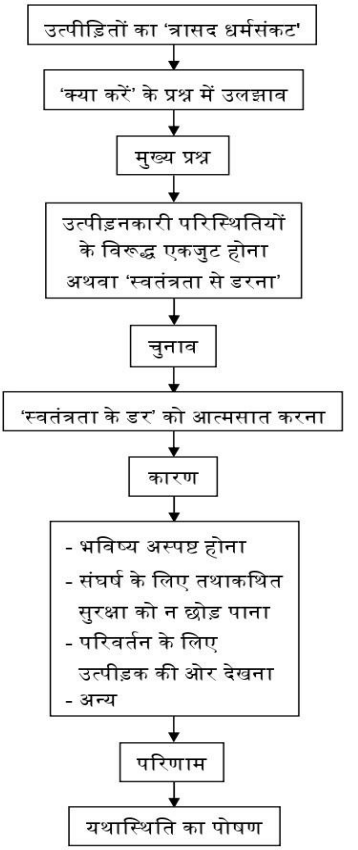

अतः, यथास्थितिवादी स्थिति में पहुँच जाने के धर्मसंकट से बचाव हेतु उत्पीड़ितों को 'वस्तुपरक' एवं 'आत्मपरक' चिन्तन में (न कि "वस्तुपरकतावाद" अथवा "आत्मपरकतावाद" में) समन्वय बैठाते हुए उत्पीड़नकारी जटिलताओं को समझना होगा। 'संवाद' एवं 'प्रतिवाद' इसका सशक्त माध्यम हैं। अन्य शब्दों में, शोषणमुक्त समाज में अंतर्निहित 'संवाद'

की स्थिति तक पहुँचने के लिए वाद-प्रतिवाद रूपी अधोलिखित दोनों बिंदुओं में पूरकता आवश्यक होती है -

- वास्तविक अथवा उत्पीड़नकारी परिस्थितियों पर आलोचनात्मक चिंतन
- उत्पीड़नकारी परिस्थितियों अथवा 'प्रेमविहीनता की स्थिति' के विरूद्ध कर्म

उपर्युक्त बिंदुओं में पूरकता अग्रवर्णित है -

- यदि, उत्पीड़नकारी परिस्थितियों की वास्तविक समझ न हो, तो कोई मानवीय कर्म संभव नहीं हो पाएगा; और
- यदि, उत्पीड़नकारी परिस्थितियों के विरूद्ध कर्म नहीं किया जाएगा, तो उत्पीड़न की संरचना दीर्घकाल तक यथावत बनी रहेगी।

4.6 समकालीन भारतीय 'शैक्षिक-सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक' परिस्थितियाँ और पाओलो फ्रेरे का शैक्षिक चिंतन

किसी भी देश अथवा स्थान विशेष की परिस्थितियाँ शिक्षा को प्रभावित करती रहती हैं। शिक्षा भी परिस्थितियों विशेष के विनिर्माण में अपना महत्त्व रखती है। यही बात 'राजनीतिक, आर्थिक, व सामाजिक' परिस्थितियों की एक-दूसरे को रचने के संदर्भ में भी सत्य है। अन्य शब्दों में, शिक्षा, राजनीतिक, आर्थिक, व सामाजिक जटिलताएँ एक-दूसरे से पूरकतावश जुड़ी हुई हैं। पाओलो फ्रेरे के शिक्षा सम्बन्धी विचारों का ताना-बाना भी इसी पूरकता के सम्बन्ध में अर्थवान होता है। जहाँ एक ओर, पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक विचारों का संदर्भ समकालीन जगत की विवेचना में मददगार है, वहीं दूसरी ओर समकालीन जटिलताओं का विश्लेषण पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक विचारों के प्रति और ज़्यादा स्पष्टता देता है। समकालीन भारतीय परिस्थितियों के संदर्भ में यह बात अग्रलिखित विवेचन-विश्लेषण द्वारा समझी जा सकती है।

नवीन प्रारूप राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019 की विनिर्माण प्रक्रिया के अंतर्गत भारतीय शिक्षा की वस्तुस्थिति से अभिन्न रूप से जुड़े अनेक मुद्दों पर सतत विचार-विमर्श किया जा रहा है। वस्तुत:, प्रारूप राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019 एक ऐसी विश्वसनीय "भारत केन्द्रित शिक्षा-प्रणाली की कल्पना करती है, जो सभी को उच्च गुणवत्ता की शिक्षा प्रदान करके, हमारे राष्ट्र को एक न्यायसंगत और जीवंत ज्ञान समाज में लगातार बदलने में योगदान देती है"।[199] प्रारूप राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019 के अंतर्गत भारतीय शिक्षा से जुड़े विभिन्न पहलूओं अथवा मुद्दों को विमर्श के दायरे में लाकर समाधान को लक्षित किया गया है। इस नीति के विभिन्न अध्याय समकालीन भारतीय शिक्षा के समक्ष उपस्थित अधोलोखित चुनौतियों का विस्तार से विवेचन-विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं –

- प्रारंभिक बाल्यावस्था में देखभाल और शिक्षा
- बुनियादी साक्षरता और संख्याज्ञान
- 'ड्राप-आउट' बच्चों को शिक्षा से पुन: जोड़ना
- सभी तक शिक्षा की पहुँच सुनिश्चित करना
- विद्यालयों में शिक्षाक्रम और शिक्षणशास्त्र में सुधार
- प्रभावी शिक्षक नियुक्ति
- समतामूलक और समावेशी शिक्षा
- प्रभावी 'गवर्नेंस' और कुशल संसाधन उपलब्धता
- विद्यालयी शिक्षा का विनियमन और प्रमाणन
- गुणवत्तामय महाविद्यालय व विश्वविद्यालय
- संस्थागत पुनर्गठन और समेकन
- उदार शिक्षा के ज़रिये पेशेवर शिक्षा को समृद्ध बनाना

[199] भारत सरकार 2019: 55

- नवाचारी और उत्तरदायी शिक्षाक्रम और शिक्षणशास्त्र
- नवीन राष्ट्रीय अनुसंधान संस्थान का गठन करना
- शिक्षक-शिक्षा व्यवस्था में सत्यनिष्ठा की बहाली
- नियामक प्रणाली का रूपान्तरण
- शिक्षा में प्रोद्योगिकी को बढ़ावा
- व्यवसायिक और प्रौढ़ शिक्षा में उन्नति
- भारतीय भाषा संवर्धन और प्रसार, इत्यादि

यदि, उपर्युक्त चुनौतियों पर गहनता से सोचा जाए, तो स्पष्ट है - ये सभी चुनौतियाँ शिक्षा को गुणवत्तापूर्ण बनाने की सोच से गहरे रूप से जुड़ी हुई हैं। भारत में शिक्षा में गुणात्मकता की अवधारणा को कई अर्थों व आयामों में विवेचित-विश्लेषित किया जाता रहा है। प्रबंधन जैसे विषयों में इसका काफ़ी लम्बे समय से सायास व अनायास प्रयोग होता रहा है, परन्तु शिक्षा के क्षेत्र में इसका प्रयोग सदैव ही सायास रहा है। भारत में स्वतंत्रता से पहले इसका बेहतर शिक्षा के तौर पर प्रयोग होता था; और इसका संदर्भ धर्म, सांप्रदायिकता, गरीबी, भाषाई सत्ता, इत्यादि था। स्वतंत्रता पश्चात् भी ये संदर्भ विमर्श पटल से गायब नहीं हुए हैं, बल्कि इनके साथ अन्य संदर्भ भी जुड़ते गए हैं। यह कहना सही है - शिक्षा में गुणात्मकता के कई नवीन पक्ष या आयाम आज, स्पष्टत: उभरकर सामने आए हैं, जिनमें प्रमुख है – 'समावेशीकरण', 'लैंगिक जागरूकता', 'जातिगत व वर्गगत' पक्ष, कर्त्तव्य व अधिकार के दरमयान सामंजस्य, 'विकेन्द्रीकरण', 'नवाचार', 'भाषायी अस्मिता', 'अनुसंधान', 'शिक्षा की पहुँच', 'नियामक प्रणाली', 'शिक्षक-शिक्षा', इत्यादि। गहराई से देखने पर पता चलता है कि इन सभी पक्षों या आयामों की पर्याप्त समझ 'संवाद प्रक्रिया' द्वारा ही संभव है, जो पाओलो फ्रेरे के अनुसार उत्पीड़नकारी जटिलताओं को बदलने की एक प्रमुख पद्धति है। असल में, खराब परिस्थितियों को बदलने का रास्ता शैक्षिक 'संवाद' से ही होकर गुज़रता है;

और इसके लिए सभी को मिलकर प्रयास करने होंगे, ताकि ज्ञानवान समाज के निर्माण की ओर अग्रसर हुआ जा सके।

4.6.1 भाषाई जटिलता और शिक्षा

भारत में स्वतंत्रता पश्चात् नवीन प्रयासों के संदर्भ में यह माना गया कि पहले औद्योगिक विकास से लोगों की क्रय शक्ति बढ़ाई जाए, ताकि वे शिक्षा जैसी मद पर पर्याप्त रूप से व्यय कर सकें। यद्यपि, सरकारी तंत्र ने शिक्षा को 'सामाजिक कल्याण' से बाहर नहीं किया, परन्तु इसे पूर्णत: सरकार का अनिवार्य कर्त्तव्य मानने से भी बचा गया। यह संयोग मात्र नहीं था कि आज़ादी के बाद प्रथम शिक्षा आयोग को विश्वविद्यालयी शिक्षा पर केन्द्रित किया गया, न कि प्राथमिक या प्रारंभिक शिक्षा पर; दूसरे और तीसरे शिक्षा आयोग ने भी प्राथमिक या प्रारंभिक शिक्षा को अपना लक्ष्य नहीं बनाया। स्पष्टत:, भारत में काफ़ी लम्बे समय तक अच्छी शिक्षा या शिक्षा में गुणात्मकता की अवधारणा को बच्चे की शुरुआती औपचारिक व अनौपचारिक शिक्षा से अलग रखकर ही सोचा जाता रहा। इस बीच भाषाई व क्षेत्रीय पहचान और उससे उपजने वाली जटिल परिस्थितियों से निपटने के लिए भारत में भाषाई व सांस्कृतिक पहचान के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन भी किया गया। इससे भाषागत गुणात्मकता 'राज भाषा', 'राष्ट्र भाषा', 'क्षेत्रीय भाषा', 'अतर्राष्ट्रीय भाषा', 'संपर्क भाषा', इत्यादि मुद्दों में ही उलझकर रह गई। आज वस्तुस्थिति यह है कि नौकरी प्राप्ति से पहले संबंधित गुणात्मक शिक्षा अर्जन में भाषाओं के आधार पर 'स्कूलों' में ही बच्चों की योग्यताओं के गुणात्मक मूल्यांकन में किसी विशेष भाषा में शिक्षा प्राप्ति विशेष मायने रखने लगी है; और विद्यालयी व उच्च शिक्षा की कई समानान्तर धाराएँ वज़ूद में आ गई हैं, जो अपने हिसाब से गुणात्मकता को परिभाषित कर रही हैं। यह कोई अबूझ पहेली नहीं है कि इस वस्तुस्थिति को समझा न जा सके, परन्तु "स्वतंत्रता का भय" इसे समझने में सदैव ही आड़े आता रहा है। इससे भाषाई आधार पर बने वर्गों के बीच सदैव ही संघर्ष की स्थिति बनी रहती है। इस संघर्ष को पाओलो फ्रेरे द्वारा सुझाई गई "स्वतंत्रता का भय" अवधारणा के अंतर्गत रखकर समझा जा सकता है। पाओलो फ्रेरे के अनुसार "स्वतंत्रता का भय" अपनी वर्तमान परिस्थितियों से

और अधिक जटिल अथवा विकट परिस्थितियों में फसने का भय है। असल में, यह भय 'संभावित विकृत भविष्य' के प्रकटीकरण के प्रति है। इस भय से लाभान्वित व अलाभान्वित दोनों वर्ग ग्रसित रहते हैं –

- लाभान्वित वर्ग इस रूप में कि भाषागत निपुणता के आधार पर प्राप्त उनकी वर्तमान लाभ की स्थिति या सत्ता उनसे कहीं छिन न जाये अथवा वे लोग जिनके पास सत्ता नहीं है, कहीं उन पर हावी न हो जाएँ।
- अलाभान्वित वर्ग इस रूप में कि वे भाषागत वर्गीकरण के कारण जिन विकट परिस्थितियों का सामना कर रहे हैं, कहीं भविष्य में उन्हें इससे भी बदतर परिस्थितियों का सामना न करना पड़ जाए।

भारत में आज भी शिक्षा प्राप्ति को बौद्धिकता बढ़ाने की बजाय एक ऐसी 'रेस' को जीतने का साधन समझते हैं, जिसमें अंतिम लक्ष्य व्यक्तिगत व सामाजिक विकास की जगह अच्छी नौकरी प्राप्त कर केवल स्वयं का एकांगी विकास है। ध्यातव्य है - राज्यों विशेष में निकलने वाली सरकारी नौकरियों में दसवीं तक की शिक्षा में उस राज्य विशेष की प्रथम राज भाषा को पढ़ने की अनिवार्यता को सामने रखा जाता है। निजी क्षेत्र में निकलने वाली नौकरियों में भी अतर्राष्ट्रीय मानी जाने वाली भाषा – अँग्रेज़ी में निपुणता को महत्त्व प्राप्त है। स्पष्टत:, समझा जा सकता है कि गुणात्मकता के संदर्भ में जहाँ शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य "आलोचनात्मक चेतना" की जागृति होना चाहिए था, वहाँ भारत में शैक्षिक उद्देश्य दिग्भ्रमित कर दिये गए हैं; और विद्यालयी व उच्च दोनों प्रकार की शिक्षा इस दिग्भ्रम के प्रसार का साधन बन गई है। इससे जो भी शिक्षा संरचना व्यवस्थित हो रही है, वह शिक्षार्थियों, शिक्षकों, अभिभावकों व व्यवस्थापकों की 'सोच को पालतू' बना रही है। इससे शैक्षिक नवाचारों और अनुसंधानों के मार्ग में बाधा खड़ी होती है। फ्रेरे मानते थे – "प्रकार्यात्मक रूप से उत्पीड़न पालतू बनाने का काम करता है"।[200] इसका अभिप्राय है - भाषागत भेदभाव के कारण व्यक्ति या शिक्षार्थी "समीक्षायी चेतना" से दूर हो जाता है; और वह यथास्थितिवादी होने हेतु अग्रसर होने लगता है। इससे

[200] फ्रेरे, वही: 14

व्यवस्था से जुड़े हुए लोगों की सोच का "पालतूकरण" हो जाता है; और वे नवीन व रचनात्मक ज्ञान के सृजन की बजाय अनुकरणित अथवा रटंत ज्ञान के ग्राहक बनकर रह जाते हैं। असल में, जो शिक्षा बच्चे के आसपास की भाषा से जुड़ नहीं पाती वह शून्य में विचरने को बाध्य होती है, अर्थात् ऐसी शिक्षा संरचना से आलोचनात्मक व खुले विचारों वाले समाज की परिकल्पना लक्षित नहीं हो पाती। ध्यातव्य है - "भारतीय भाषाओं में अकादमिक साहित्य और पुस्तकों की गुणवत्ता अभी भी एक उच्चतम स्तर की नहीं है, जिसकी वजह से जिन छात्रों की ये मातृभाषा हैं, वे अक्सर नुकसान में रहते हैं"।[201] इसके अलावा, "जहाँ इन भारतीय भाषाओं की मौलिक पुस्तकें और काम उपलब्ध है, वहाँ सिर्फ़ कुछ विद्यालय, शिक्षक और छात्र ही इन पुस्तकों और कामों को पढ़ पाते हैं, क्योंकि इनके प्रचार-प्रसार का घोर अभाव है"।[202] इन सभी कारणों की जटिलता से "हमारे अधिकांश छात्र अपनी स्थानीय भाषा में विचार, अनुसंधान और व्याख्या करने से वंचित ही रह जाते हैं"।[203]

'राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005'[204] को 'स्कूली' शिक्षा के क्षेत्र में एक बहुत महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ मानते हैं। यदि, इस दस्तावेज़ के भाषा खंड का विश्लेषण किया जाये, तो स्पष्ट होता है - 'निर्मितिवादी दर्शन' पर ज़ोर देने के बावजूद भी यह दस्तावेज़ भाषायी समरसता को लक्षित करने में पर्याप्त योगदान नहीं दे पाया। यह दस्तावेज़ भी शिक्षा में गुणात्मकता की अवधारणा और भारत की भाषाई विविधता के बीच सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाया। इस दस्तावेज़ के 'रफ़ ड्राफ़्ट' में प्राथमिक शिक्षा के तहत मातृभाषा को प्रमुख दर्ज़ा प्राप्त था, लेकिन अंतिम 'ड्राफ़्ट' में मातृभाषा के साथ-साथ गृहभाषा (घर में बोली जाने वाली भाषा) को भी महत्त्व प्रदान किया गया। यह एक उलझनभरी बात थी, अर्थात् जब पहले से ही 'राज भाषा', 'राष्ट्र भाषा', 'क्षेत्रीय भाषा', 'अतर्राष्ट्रीय भाषा', 'संपर्क भाषा', इत्यादि अवधारणाएँ मौजूद थीं, तो एक

---

[201] भारत सरकार, वही: 544

[202] वही: 544-545

[203] वही: 545

[204] राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद 2006

नई अवधारणा – 'गृहभाषा' का प्रयोग करने की क्या आवश्यकता थी? ध्यातव्य है - बच्चे के घर में प्राय: या तो मातृभाषा बोली जाती है या क्षेत्रीय भाषा या वह प्रचलित 'विशेष भाषा', जिसे अभिभावक अपने बच्चे को "स्वतंत्रता के भय" से सायास सिखाना चाहते हैं, ताकि उनके बच्चों को भावी भविष्य में एक अच्छे वेतन वाली नौकरी प्राप्त हो सके, तो ऐसे में गृहभाषा शब्द प्रयोग का क्या अर्थ है? वस्तुत:, विश्लेषकों का यह मानना है कि यदि, प्राथमिक शिक्षा को मातृभाषा में प्रदान करने को अनिवार्य बना दिया जाए, तो देश के निजी 'स्कूलों' के सामने अस्तित्व का संकट पैदा हो जाएगा, क्योंकि निजी विद्यालयों के पास प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में पढ़ाने वाले शिक्षकों की भारी कमी है। असल में, ये 'स्कूल' अभिभावकों की माँग पर एक 'विशेष भाषा' में ही पढ़ाने वाले शिक्षकों की नियुक्ति करते हैं, न कि मातृभाषा में पढ़ाने वाले शिक्षकों की। उच्च शिक्षा की स्थिति भी इससे विलग नहीं है। बड़े संदर्भों में इसे बाज़ार अर्थव्यवस्था के माँग और पूर्ति सिद्धान्त के तहत विश्लेषित किया जा सकता है, जहाँ सकल घरेलू उत्पाद को बढ़ाने हेतु चीज़ों का बिकना एक महत्त्वपूर्ण तरीका समझा जाता है; व इसके लिए समाज में माँग के अनुरूप विशेष गुणों व सामाजिक कौशलों वाली शिक्षा की पूर्ति की जाती है या पहले विभिन्न तरीकों से तथाकथित वाँछनीय विशेष गुणों व सामाजिक कौशलों वाली शिक्षा की आवश्यकता पैदा कर उसकी पूर्ति के लिए तंत्र को रचते हैं। ऐसे में गुणात्मक शिक्षा लाभ पर आधारित होकर समकालीन दायरे में ही अपना अर्थ ग्रहण करने लगती है। भाषा सम्बन्धी उपर्युक्त विवेचित स्थिति से जुड़ी चिंता को पूर्व में कई चर्चा-परिचर्चाओं में शामिल किया गया है। प्रारूप राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019 के अनुसार "भारतीय भाषाएँ दुनिया की सबसे ज़्यादा वैज्ञानिक और भावाबोधक रही हैं, जिनमें इस विश्व का महत्त्वपूर्ण ज्ञान और साहित्य रचा गया है। ये भाषाएँ विभिन्न आंचलिक क्षेत्रों और पीढ़ियों की सदियों पुरानी संस्कृति और विरासत का प्रतिनिधित्व करती हैं"।[205] इसके अलावा इस नीति प्रारूप में इस ओर भी ध्यान दिलाया गया है - भारत के "सभी क्षेत्रों की संस्कृति और परम्पराओं का ठीक रूप से समावेश और

[205] वही: 544

संरक्षण; साथ-ही-साथ छात्रों को इनकी ठीक समझ तभी संभव है, जब इन सभी भारतीय भाषाओं (आदिवासी भाषाओं सहित) को उपयुक्त सम्मान मिलेगा"।[206] इसलिए नीति नियोजकों का यह मानना रहा है कि "इन समृद्ध भाषाओं और साहित्य का संरक्षण करना बहुत ज़रूरी है; ठीक उसी तरह, जैसे तकनीकी दृष्टि से विकसित देशों (साउथ कोरिया, जापान, फ्रांस, जर्मनी, हॉलैंड) ने वैश्वीकरण की प्रक्रिया से जूझते हुए किया है"।[207]

4.6.2 'सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक' जटिलता और शिक्षा

भारतीय समाज के सम्पूर्ण ताने-बाने को ध्यान में रखने पर एक बात स्पष्ट है कि भारतीय शिक्षा से कई तरह की समस्याएँ जटिलता के साथ जुड़ी हुई हैं। वस्तुत:, -

"समस्या यह है - भारत को शिक्षण भी चाहिए और विकास भी; ये दोनों चीज़े हर देश को चाहिए। जहाँ पश्चिम के देशों का सम्बन्ध है, उन्होंने इस समस्या को पिछली दो शताब्दियों में अपने ढंग से हल किया है। नई 'टेक्नोलोजी', उद्योगीकरण और व्यापार केन्द्रित होकर उन्होंने अपनी खेती, उद्योग, बाज़ार, सैनिक संगठन, राजनैतिक क्रिया, शिक्षण, लोक कल्याण आदि सबको उसके इर्द-गिर्द विकसित किया है। उन्होंने एक पूरी सभ्यता ही बना डाली है। उनकी इस रचना में विकास साध्य है और शिक्षण साधन। लेकिन, पश्चिम में जो ऐतिहासिक परिस्थिति थी, वह भारत में नहीं है। ... अगर, हम अपने देश के संदर्भ में शिक्षण और विकास के प्रश्न पर सन् 1947 में विचार करने बैठते, तो कुछ दूसरी ही बातें सामने आतीं। झण्डे का बदलना, ज़मींदारी का टूटना, प्रशासन और शिक्षण का राष्ट्रीय आकांक्षाओं की पूर्ति का माध्यम बनना, ये तीनों काम साथ-साथ होते। लेकिन, यह सब नहीं हुआ। झण्डा बदला और ज़मींदारी टूटी, लेकिन प्रशासन नहीं बदला; और शिक्षण नहीं बदला। अँग्रेज़ी ज़माने में प्रशासन और शिक्षण विदेशी हितों के साधन थे; और स्वतंत्रता होने पर भी वे विदेशी परंपरा का निर्वाह करने के लिए ज्यों-के-त्यों

---

[206] वही

[207] वही

छोड़ दिए गए। सिर्फ़ इतनी बात नई हुई कि ऊँची कुर्सियों पर हमारे नेता 'मिनिस्टर' बनकर बैठ गए; और अधिकारी जहाँ थे, वहाँ रहने दिये गए। ... हमारे नेताओं ने पहले से मान रखा था कि विकास का जो नमूना पश्चिम ने अपने लिए तैयार कर रखा है, उस पर चलना और देश को उस पर चलाना, स्वतन्त्र सरकार का काम है। ...

आज हम ऐसी जगह पहुँच गए हैं कि जहाँ एक ओर, देश के करोड़ों अशिक्षित श्रमिक देश के विकास से बहिष्कृत हैं; और दूसरी ओर लाखों शिक्षित युवक-युवतियाँ विकास के लिए बेकार हैं, क्योंकि इस पढ़ाई ने उन्हें न सोचने लायक छोड़ा है, न हाथ से काम करने लायक"।[208]

उपर्युक्त विवेचित स्थिति से बचाव के लिए ही 90 के दशक में भारत में 'उदारीकरण' की प्रक्रिया को अपनाया गया, ताकि विकास और शिक्षण की खाई को कम किया जा सके। यह माना गया - भारत में 'उदारीकरण' की प्रक्रिया से सरकारी व निजी दोनों क्षेत्रों में नवीन संभावनाओं का सृजन होगा। इस सृजन के पीछे यह तर्क भी दिया गया कि इससे समानता हेतु अवसरों में वृद्धि होगी; और शिक्षा से वंचित तबका इससे लाभान्वित होगा, परन्तु निजी व सरकारी क्षेत्र में साथ-ही ऐसी मानसिकता ने भी स्थान बना लिया है, जिसके अंतर्गत 'मुफ़्त यानि सम्यक गुणात्मकता से कम', 'लाभ यानि कम लागत, उच्च लाभ', व 'तार्किकता का ह्रास यानि अच्छे या वाँछनीय कर्मचारियों का निर्माण' इत्यादी पूर्वधारणाओं के इर्दगिर्द ही समानता हेतु अवसरों में वृद्धि करने की धारणा को महत्त्व प्राप्त हो गया है। धीरे-धीरे, इस 'मिथ्या उत्तरदायित्व' या "मिथ्या उदारता" रूपी सोच ने एक ऐसे शिक्षा-तंत्र के सृजन की राहें आसान करने का काम आरम्भ कर दिया है, जिसमें शिक्षा प्रबंधकों, शिक्षाविदों और शिक्षार्थियों का सारा ध्यान क्रमश: लाभ कमाने, "स्वतंत्रता के भय" से निपटने, 'उप-उत्पीड़क' बनने व स्वयं को एक अच्छा उत्पाद सिद्ध करने पर ही केन्द्रित होकर रह गया है। तभी, प्रारूप राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019 का यह स्पष्ट मानना है कि "1990 के दशक में आर्थिक 'उदारीकरण' के बाद

[208] राममूर्ती 1990: 13-15

जो, निजी शैक्षिक भागीदारी बढ़ी और एक गति आई, वह पहले की निजी भागीदारियों से अलग है"।[209] वर्तमान समय में स्पष्ट है - "शिक्षा क्षेत्र में भागीदारी करने वाले निजी सेवादाताओं के एक बड़े भाग के लिए शिक्षा एक व्यवसायिक लाभ लेने का क्षेत्र बन गया है"।[210] यह सत्य है - "नए विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय खोलने के लिए 'लाईसेंस' लेने पर कठोर सरकारी नियंत्रण की वजह से ऊँची राजनीतिक पहुँच वाले लोगों ने इसमें अपनी पैठ बैठा ली है"।[211] इसी कारण से शिक्षा में 'सामाजिक कल्याण की भावना' प्रतिस्थापन का शिकार हो गई है; और उसकी जगह शिक्षा में 'स्वयं कल्याण की भावना' ने बड़े पैमाने पर स्थान बना लिया है।

यह एक ज्ञात तथ्य है कि प्रत्येक देश की समकालीन आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का देश विशेष की शिक्षा संरचना पर गहरा असर पड़ता है। भारत में 6-14 वर्ष के सभी बच्चों के विद्यालयों में समावेशीकरण के संदर्भ में 'निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा हेतु 'बच्चों का अधिकार कानून 2009' बनाया गया है, ताकि 6-14 वर्ष तक के सभी बच्चों की निःशुल्क व अनिवार्य 'गुणात्मक शिक्षा' सुनिश्चित की जा सके। इस कानून के अध्याय 3[212] में सरकार, स्थानीय अधिकारियों और अभिभावकों के दायित्वों का उल्लेख करते हुए अधोवर्णित प्रावधान करने को कहा गया है –

- यथोचित वित्त की व्यवस्था करना।
- विद्यालयों और संरचनागत सुविधाओं का निर्धारण करना।
- केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा दायित्व साझा रूप से ग्रहण करना।
- केन्द्र सरकार द्वारा 'राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा' का निर्माण करना।
- अच्छी गुणात्मक शिक्षा सुनिश्चित करना।

---

[209] वही: 568

[210] वही

[211] वही

[212] भारत सरकार 2009: 3-5

- स्थानीय अधिकारियों द्वारा कमज़ोर तबके व अपवंचित वर्ग से सम्बद्ध बच्चों की शैक्षिक समस्याओं के निपटान हेतु उपाय करना और 6-14 वर्ष तक के बच्चों का 'रिकॉर्ड' रखना, इत्यादि।

इसी प्रकार, उपर्युक्त कानून के अध्याय 4[213] में विद्यालयों और शिक्षकों की ज़िम्मेदारियों का उल्लेख करते हुए, विशेषकर निजी विद्यालयों से कक्षा 1 में प्रवेश लेने वाले कुल विद्यार्थियों में से 25% ऐसे विद्यार्थियों हेतु गुणवत्तापूर्ण निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा का बंदोबस्त करने को कहा गया है, जो कमज़ोर व अपवंचित वर्ग से सम्बन्ध रखते हों।

कानून की उपस्थिती के बावजूद भारत में 6-14 वर्ष तक के बच्चों की निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा का बंदोबस्त करने में कई अड़चने आ रही हैं। असल में, भारत में शिक्षा को अधिकार मानने की सोच अभी तक ठीक से पनपी नहीं है। फलस्वरूप, विभिन्न शैक्षिक प्रयासों के सफल न होने के कारण "एकांगी मानसिकता से ओतप्रोत बुद्धिजीवियों और विद्वानों ने शिक्षा की गुणवत्ता सम्बन्धी परिभाषाओं में परिवर्तन करना आरंभ कर दिया है। उनके लिए पढ़ना-लिखना आना और मूल गणितीय संक्रियाएँ कर पाने की क्षमता ही गुणवत्ता का पर्याय हैं"।[214] बावजूद इसके, बीच में 'स्कूल' छोड़ने वाले बच्चों की स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं आया है। अब भी बच्चे अलग-अलग कारणों से अपनी शिक्षा पूर्ण करने से पूर्व ही शैक्षणिक संस्थान छोड़ रहे हैं। यद्यपि, अनेक सरकारी व गैर-सरकारी संगठन अपने स्तर पर इस विकट स्थिति को बदलने में सहयोग दे रहे हैं, परन्तु ध्यातव्य है कि उनके ये प्रयास किसी-न-किसी कारण से संपूर्णता में फलीभूत नहीं हो रहे हैं। कहीं ये प्रयास केवल सत्ता से जुड़ने का ज़रिया मात्र बनकर रह गए हैं, तो कहीं सहायता के अभाव में अपने लक्ष्य से दूर हो रहे हैं। फलस्वरूप, बच्चे 'मिथ्या उदारता' के नाम पर आधी-अधूरी शिक्षा ही प्राप्त करते हैं; एक ऐसी शिक्षा, जो उन्हें समाज अथवा विश्व से विलग अनुभवहीन ज्ञान प्रदान करती है।

---

[213] वही: 5-8

[214] विश्वंभर 2006: 3

तालिका 3

विद्यालयी शिक्षा में स्तरानुसार औसत वार्षिक 'ड्रॉप-आउट' दर (2013-14)[*]

	सभी			अनुसूचित जाति			अनुसूचित जनजाति		
स्तर	लड़के	लड़कियाँ	कुल	लड़के	लड़कियाँ	कुल	लड़के	लड़कियाँ	कुल
प्राथमिक	4.53	4.14	4.34	4.42	3.85	4.14	7.97	7.98	7.98
अवर प्राथमिक	3.09	4.49	3.77	3.75	5.04	4.38	8.03	8.85	8.43
माध्यमिक	17.93	17.79	17.86	18.96	18.32	18.66	27.42	26.96	27.20
उच्च माध्यमिक	1.48	1.61	1.54	2.20	1.38	1.81	3.09	2.77	2.94

आँकड़ों का स्रोत. विद्यालयी शिक्षा के लिए: राष्ट्रीय शैक्षिक नियोजन और प्रशासन विश्वविद्यालय

*'स्कूली' शिक्षा से सम्बद्ध संख्यात्मक आँकड़े अनुमानित हैं; और प्रतिशत में हैं।

वर्तमान समय में उपर्युक्त तालिका 3[215] में दर्शाये गए मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा प्रकाशित शिक्षा सम्बन्धी वर्ष 2013-2014 तक के अनुमानित आँकड़ों के अनुसार प्राथमिक, अवर प्राथमिक, माध्यमिक, और उच्च माध्यमिक स्तर पर 'स्कूल' छोड़ने वाले बच्चों का प्रतिशत क्रमश: 4.34, 3.77, 17.86, व 1.54 है। इसमें भी अनुसूचित जातियों व जनजातियों की स्थिति दयनीय है। अनुसूचित जातियों के सम्बन्ध में यह प्रतिशत क्रमश: 4.14, 4.38, 18.66, व 1.81 है; और अनुसूचित जनजातियों के सम्बन्ध में यह प्रतिशत क्रमश: 7.98, 8.43, 27.20, व 2.94 है। प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर लड़कियों की स्थिति लड़कों के बरक्स थोड़ी ही बेहतर है, परन्तु अवर माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्तर पर ऐसा नहीं है। ध्यातव्य है

[215] Government of India 2016b: 8

कि अनुसूचित जाति में अवर प्राथमिक स्तर पर लड़कियों का 'ड्रॉप-आउट' लड़कों की तुलना में कुल 'ड्रॉप-आउट' से भी बहुत ज़्यादा है; यही स्थिति अगले दोनों स्तरों पर लड़कों की है।

उपर्युक्त तालिका से यह भी स्पष्ट होता है कि अनुसूचित जनजाति में प्राथमिक और अवर प्राथमिक स्तर पर लड़कियों का 'ड्रॉप-आउट' लड़कों के बरक्स अधिक है; और अगले दोनों स्तरों पर लड़कों का 'ड्रॉप-आउट' लड़कियों से ज़्यादा है। अत:, जैसे-जैसे विद्यार्थी अवर प्राथमिक स्तर की तरफ़ बढ़ते हैं, वैसे ही अनुसूचित जाति व जनजाति की लड़कियों में लड़कों के बरक्स ड्रॉप-आउट बढ़ता जाता है; और जैसे-जैसे विद्यार्थी अवर प्राथमिक स्तर से आगे बढ़ते हैं, वैसे-वैसे अनुसूचित जाति व जनजाति के लड़कों में लड़कियों के बरक्स 'ड्रॉप-आउट' बढ़ने लगता है।

तालिका 4

विद्यालयी शिक्षा में औसत वार्षिक 'ड्रॉप-आउट' दर (2014-15)[*]

	सभी			अनुसूचित जाति			अनुसूचित जनजाति		
स्तर	लड़के	लड़कियाँ	कुल	लड़के	लड़कियाँ	कुल	लड़के	लड़कियाँ	कुल
प्राथमिक	4.36	3.88	4.13	4.71	4.20	4.46	7.02	6.84	6.93
अवर प्राथमिक	3.49	4.60	4.03	5.00	6.03	5.51	8.48	8.71	8.59
माध्यमिक	17.21	16.88	17.06	19.64	19.05	19.36	24.94	24.40	24.68
उच्च माध्यमिक	0.25	उ.न.	उ.न.	3.34	3.09	3.22	उ.न.	उ.न.	उ.न.

आँकड़ों का स्रोत. राष्ट्रीय शैक्षिक नियोजन और प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली

*संख्यात्मक आँकड़े अनुमानित हैं; और प्रतिशत में हैं।

उ.न.- उपलब्ध नहीं

इसी प्रकार उपर्युक्त तालिका 4[216] में दर्शाये गए मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा प्रकाशित शिक्षा सम्बन्धी वर्ष 2014-2015 तक के अनुमानित आँकड़ों के तहत प्राथमिक, अवर प्राथमिक, व माध्यमिक स्तर पर 'स्कूल' छोड़ने वाले बच्चों का प्रतिशत क्रमश: 4.13, 4.03, व 17.06 है। इसमें भी पिछले वर्ष की ही तरह अनुसूचित जातियों व जनजातियों की स्थिति दयनीय है। अनुसूचित जातियों के सम्बन्ध में प्राथमिक, अवर प्राथमिक, माध्यमिक, और उच्च माध्यमिक स्तर पर 'स्कूल' छोड़ने वाले बच्चों का प्रतिशत क्रमश: 4.46, 5.51, 19.36, व 3.22 है; और अनुसूचित जनजातियों के सम्बन्ध में प्राथमिक, अवर प्राथमिक, व माध्यमिक स्तर पर 'स्कूल' छोड़ने वाले बच्चों का प्रतिशत क्रमश: 6.93, 8.59, व 24.68 है।

आँकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि अवर प्राथमिक स्तर पर कुल स्थिति पिछले वर्ष की तुलना में खराब हुई है। अनुसूचित जातियों के संदर्भ में प्राथमिक, अवर प्राथमिक, माध्यमिक, और उच्च माध्यमिक स्तर पर 'स्कूल' छोड़ने वाले बच्चों का प्रतिशत पहले की अपेक्षा और अधिक बढ़ा है। अनुसूचित जनजातियों के संदर्भ में कुछ सुधार अवश्य हुआ है, परन्तु अवर प्राथमिक स्तर पर 'स्कूल' छोड़ने वाले अनुसूचित जनजाति के बच्चों का प्रतिशत पहले की तुलना में बढ़ा है। इसके अतिरिक्त, यह तथ्य सदैव ही चिंता का विषय रहा है कि अनुसूचित जातियों व जनजातियों के विद्यार्थियों में बीच में 'स्कूल' छोड़कर चले जाने वाले बच्चों का प्रतिशत उपर्युक्त आँकड़ों के सम्बन्ध में शिक्षा के हर स्तर पर 'स्कूल' छोड़ने वाले बच्चों के कुल प्रतिशत से हमेशा ही अधिक रहा है या उसके आसपास है।

ध्यातव्य है - पिछले वर्ष की तुलना में अवर प्राथमिक स्तर को छोड़कर बाकी स्तरों पर कुल लड़कों व लड़कियों की स्थिति में थोड़ा सुधार हुआ है, परन्तु अनुसूचित जाति में लड़कों व लड़कियों की स्थिति पहले से अधिक बदतर हुई है। अनुसूचित जनजाति के संदर्भ में अवर माध्यमिक स्तर को छोड़कर प्राथमिक व माध्यमिक स्तर पर लड़कों में 'ड्रॉप-आउट' थोड़ा कम

[216] Government of India 2018: 13

हुआ है; और तीनों स्तरों पर लड़कियों की स्थिति पिछले वर्ष की तुलना में थोड़ी बेहतर हुई है, परन्तु उपर्युक्त आँकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट है - पिछले वर्ष की ही तरह जैसे-जैसे विद्यार्थी अवर प्राथमिक स्तर की तरफ़ बढ़ते हैं, वैसे ही अनुसूचित जाति व जनजाति की लड़कियों में लड़कों की तुलना में 'ड्रॉप-आउट' बढ़ता जाता है; और जैसे-जैसे विद्यार्थी अवर प्राथमिक स्तर से आगे बढ़ते हैं, वैसे-वैसे अनुसूचित जाति व जनजाति के लड़कों में लड़कियों की तुलना में 'ड्रॉप-आउट' बढ़ने लगता है। बच्चों के बीच में विद्यालय छोड़ने के प्रमुख कारणों को अधोलोखित तालिका 5[217] के ज़रिए समझा जा सकता है–

तालिका 5

ड्रॉप-आउट के प्रमुख कारण

	प्रतिशत	
कारण	लड़के	लड़कियाँ
बच्चे की अध्ययन में रुचि न होना	23.80	15.60
वित्तीय बाधाएँ	23.70	15.20
घरेलू गतिविधियों में संलग्नता	4.80	29.70
आर्थिक गतिविधियों में संलग्नता	31.00	4.90
विद्यालय का दूर होना	0.5	3.40
अध्ययन के प्रति असमर्थता	5.4	4.60
वाँछित स्तर/ कक्षा को पास कर लेना	5.70	6.50
विवाह हो जाना	-	13.90
अन्य कारण*	5.1	6.20

स्रोत. राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण कार्यालय

*शिक्षा संस्थान की समयावधि उपयुक्त न होना, प्रयुक्त भाषा/ माध्यम भाषा से अनजान होना, शिक्षकों की अपर्याप्त संख्या, शिक्षकों की गुणवत्ता का संतोषजनक न होना, विद्यालय का अमित्रतापूर्ण परिवेश, प्रतियोगी व अन्य परीक्षाओं की तैयारी करना, लड़कियों के लिए 'ड्रॉप-आउट' के अन्य कारण: महिला शिक्षकों की उपलब्धता का न होना, लड़कियों के लिए शौचालय का न होना

[217] वही: 107

उपर्युक्त तालिका 5 के विश्लेषण से स्पष्ट है - विद्यार्थियों द्वारा बीच में विद्यालय छोड़ने के अधोलिखित कारण हो सकते हैं -

- विद्यालयों का शिक्षार्थी के घर से दूर होना
- विद्यालयों के कार्य-दिवसों में अनियमितता
- शिक्षक की अशैक्षणिक कार्यों में व्यस्तता
- बच्चों का ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाने वाले पढ़ाने के तरीके
- बच्चों में शिक्षक का भय
- 'जातिगत व सांस्कृतिक भेदभाव'
- 'जेंडर सम्बन्धी भेदभाव'
- पारिवारिक प्रतिबद्धताओं के चलते बीच में विद्यालय छोड़ देना
- विद्यालयी अधिसंरचना में कोई कमी होना, इत्यादि।

उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त विद्यालयों मे पढ़ाई की खराब गुणवत्ता के अग्रलिखित कारण समझे जाते हैं –

- वाँछित शिक्षकों की अपर्याप्तता (जो कि बड़ी संख्या में रिक्त पदों से पता चलती है)
- शिक्षकों की नवाचारों से दूरी
- शिक्षकों की जवाबदेही निश्चित न होना और उनमें अभिप्रेरणा की कमी
- शिक्षकों की स्थानीय भाषा से विलगता
- शिक्षकों की अनुपस्थिति एवं प्रशिक्षण की अपर्याप्तता
- शिक्षकों की सोच में सिद्धान्त और अभ्यास के बीच दूरी का होना, इत्यादि।

यह पाया गया है कि कमज़ोर व अपवंचित वर्ग के बच्चों को केन्द्रित कर खोले गए विद्यालयों में राज्य सरकारें अर्ध-शिक्षक ('पैरा टीचर्स') से शिक्षण कार्य करवाती हैं, जिसका अर्थ है - इन छात्रों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा से वंचित रखना, क्योंकि ये शिक्षक पेशेवर रूप से योग्य नहीं होते। 'राष्ट्रीय शैक्षिक

अनुसंधान व प्रशिक्षण परिषद्' के 'सातवें अखिल भारतीय विद्यालयी शिक्षा सर्वेक्षण' के अनुसार मान्यता प्राप्त 'स्कूलों' के संदर्भ में देश में 651064 प्राथमिक 'स्कूल', 245322 अवर प्राथमिक 'स्कूल', 90741 माध्यमिक 'स्कूल', और 43859 उच्चतर माध्यमिक 'स्कूल' थे।[218] इसी प्रकार, 'आठवें अखिल भारतीय विद्यालयी शिक्षा सर्वेक्षण' के अनुसार ये आँकड़े क्रमश: 765852, 354130, 117257, व 62663 हैं।[219] यद्यपि, उपर्युक्त आँकड़े स्थितियों में अल्प-सुधार के परिचायक हैं, परन्तु शैक्षिक स्थितियाँ अभी भी जटिल बनी हुई हैं। हमारी विद्यालयी शिक्षा में सबसे उपेक्षित प्राथमिक, अवर प्राथमिक, व माध्यमिक स्तर की शिक्षा है; और इसमें भी कमज़ोर व अपवंचित तबके के बच्चों की स्थिति दयनीय है। बच्चों के प्राथमिक, अवर प्राथमिक, और माध्यमिक शिक्षा से वंचित रह जाने या शिक्षा पूर्ण होने से पहले बीच में 'स्कूल' छोड़ देने के पीछे एक प्रमुख कारण व्यवस्थापकों द्वारा इन बच्चों के दैनिक अनुभवों से विलग पाठ्यक्रम का थोपा जाना भी है। वस्तुत:, शिक्षा व्यवस्था की एक प्रमुख समस्या यह है कि बच्चे और शिक्षक दूसरों के द्वारा तय किए गए पाठ्यक्रम पर ही काम करते हैं, अर्थात् पाठ्यक्रम निर्माण का दायित्व बुद्धिजीवियों और शिक्षाशास्त्रियों का है, जिसमें पढ़ने वाला (छात्र) व पढ़ाने वाला (शिक्षक) दोनों ही नदारद होते हैं।

'राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2000'[220] में यह माना गया कि समानता के उद्देश्य को साकार करने हेतु सभी को समान अवसर उपलब्ध कराना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि ऐसी व्यवस्था का होना भी ज़रूरी है, जिसमें सभी को लगातार समान अवसर मिलना सुनिश्चित हो सके। इस दस्तावेज़ में बच्चों को सफलता प्राप्ति हेतु मूल्यपरक समान अवसर देने की चर्चा भी की गई है। इसके अतिरिक्त, समानता की मूलभूत अनुभूति और केंद्रिक शिक्षाक्रम के बीच समन्वय की बात भी की गई है। वास्तव में, राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था के नियोजन का प्रमुख उद्देश्य ही यही होता है - सामाजिक माहौल और जन्म के संयोग से

[218] National Council of Educational Research and Training 2006: 7-8

[219] National Council of Educational Research and Training 2016: 20

[220] राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद 2000

उत्पन्न पूर्वाग्रह और कुंठाएँ दूर हों। इसी प्रकार, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005[221] में पाठ्यक्रम सम्बन्धी विसंगतियों को दूर करने हेतु 'स्कूल' व 'स्कूल' के बाहर के ज्ञान को जोड़ने व बच्चों के दैनिक अनुभवों को पर्याप्त तवज्जो देने की परिकल्पना की गई है।

शिक्षा में गुणात्मकता से संबंधित उपर्युक्त गंभीर प्रयासों के अतिरिक्त भारत में कमज़ोर व अपवंचित वर्ग के बच्चों की सामाजिक स्थिति, शिक्षा सम्बन्धी व्यवस्था और पाठ्यचर्या निर्माण, इत्यादि पर चर्चा पिछले लगभग 70 वर्षों से होती रही है; और इसके तहत अनेक प्रतिवेदन और दस्तावेज़ भी तैयार हुए हैं, परन्तु राष्ट्रीय बजट में शिक्षा हेतु धन के कम आबंटन, वर्तमान शैक्षिक स्थिति और पाठ्यक्रम निर्माताओं की मानसिकता पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट है - वर्तमान शिक्षा बच्चों को निरर्थकता की ओर ले जा रही है। सक्सेना के अनुसार "शिक्षा के परंपरागत और प्रगतिशील आम सिद्धांतों के तहत ऐसा माना जाता है कि अधिकतर गरीब और उत्पीड़ित जनता शैक्षिक कार्यक्रमों का लाभ नहीं उठाती या नहीं उठा पाती है। इसलिए उनके लिए बने कार्यक्रम असफल हो जाते हैं"।[222] इस बुनियादी समझ या 'संरचना' में शिक्षा ग्रहण करने वालों को निष्क्रिय पात्रों के रूप में देखा जाता है। इस सोच को फ्रेरे द्वारा प्रतिपादित "बैंकिंग शिक्षा" के संप्रत्यय के तहत समझा जा सकता है, जिसमें छात्रों के लिए शिक्षक ही सभी कुछ होता है; वह ही यह निर्णय करता है कि उसके खाली बर्तन रूपी छात्रों को क्या सीखना है और क्या नहीं।

"बैंकीय शिक्षा" की विशेषताओं को भारतीय शिक्षा तंत्र में भी महसूस किया जा सकता है। मूलत:, भारतीय शिक्षा "बैंकीय शिक्षा" रूपी साम्राज्यवादी ढाँचे को ही दर्शाती है। 'भारतीय शिक्षा व्यवस्था', अपने वर्तमान ढाँचे में, आज भी 'औपनिवेशिक मानसिकता' को आगे बढ़ा रही है। इसलिए, शिक्षा में गुणात्मकता सम्बन्धी सोच उपर्युक्त तथ्यों और विवेचन से विलग होकर सम्यक नहीं हो सकती। इसकी पर्याप्त समझ के लिए फ्रेरे द्वारा

[221] राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद 2006

[222] सक्सेना 2000: ix-x

सुझाई गई "संवादात्मक शिक्षा" या "समस्या-उठाऊ शिक्षा" के ज़रिए उनके द्वारा प्रतिपादित "विवेकीकरण" की प्रक्रिया को अपनाना होगा, ताकि ऐसा शिक्षित वर्ग तैयार हो सके, जो खराब स्थानीय परिस्थितियों को पहचानकर उन्हें ठीक करने की ओर अग्रसर हो सके; और इसका लाभ समाज के सभी वर्गों तक पहुँचे।

शिक्षा और गुणात्मकता के आबन्ध को दर्शाते उपर्युक्त विश्लेषण के अतिरिक्त भारत में; विशेषकर प्राथमिक शिक्षा के संदर्भ में उन तीन असफलताओं[223] पर बार-बार चिंतन करना होगा, जिनके कारण समय-समय पर प्राथमिक शिक्षा के औचित्य व उसकी गुणात्मकता पर गंभीर सवाल उठते रहे हैं –

- एक – स्कूली तंत्र का स्कूल जाने वाली उम्र के करोड़ों बच्चों की पहुँच से बाहर होना,
- दूसरा – जो बच्चे स्कूलों में पहुँच गए हैं, उनका सामाजिक और आर्थिक कारणों से बाहर फेंका जाना; व
- तीसरा – वे बच्चे, जो बावजूद रुकावटों के, इस व्यवस्था में कुछ वर्षों तक टिक भी जाते हैं, उनका स्कूलों में कुछ सीख ना पाना।

उपर्युक्त तथ्यों के अतिरिक्त, भारत में गुणात्मकता को शिक्षा और वित्त नियोजन के सम्बन्ध में भी विवेचित-विश्लेषित करना होगा। ध्यातव्य है - किसी भी समाज, देश या राष्ट्र के विकास में शिक्षा की दिशा और दशा बहुत मायने रखती है। शैक्षिक विकास हेतु वित्त प्रबंधन का विश्लेषण इसी संदर्भ में दृष्टिगत है। वस्तुत:, किसी भी देश के शैक्षिक विकास में शिक्षा पर खर्च होने वाले कुल सकल घरेलू उत्पाद का प्रतिशत बहुत महत्त्व रखता है।

कोठारी आयोग (1964-66)[224] ने सिफ़ारिश की थी कि शिक्षा के लिए राष्ट्रीय आय का कम-से-कम 6% भाग आबंटित करने हेतु गंभीरतापूर्ण प्रयास करने चाहिए। "1968 की शिक्षा नीति में भी इसकी अनुशंसा की गई थी;

[223] वही: 23

[224] भारत सरकार 1968: 529-541

1986 की शिक्षा नीति और 1992 की कार्ययोजना ('प्रोग्राम ऑफ एक्शन') में भी इसे दोहराया गया था"[225], परन्तु ध्यातव्य है कि पहली से लेकर ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में प्रत्येक पंचवर्षीय योजना के अंत में, यानि वर्ष 1956, 1961, 1966, 1974, 1979, 1985, 1990, 1997, 2002, 2007, व 2012 में कुल सकल घरेलू उत्पाद के संदर्भ में यह प्रतिशत[226] क्रमश: 1.15, 1.48, 1.69, 2.15, 3.00, 3.35, 3.93, 3.53, 3.68, 3.48, व 3.82 रहा है। बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012-2017) में यह प्रतिशत[227] वर्ष 2013 व 2014 के अंत में क्रमश: 3.70 व 3.84 रहा है। यह अनुमानित था - वर्ष 2015 व 2016 के अंत में यह प्रतिशत क्रमश: 4.01 व 4.07 रहेगा, परन्तु समकालीन भारतीय शैक्षिक परिस्थितियाँ इस अनुमानित लक्ष्य को अभिप्रमाणित करती प्रतीत नहीं होतीं, क्योंकि वित्त मंत्रालय के "आर्थिक सर्वेक्षण 2017-18 के अनुसार वर्ष 2017-18 में शिक्षा पर सरकारी खर्च कुल सकल घरेलू उत्पाद के बरक्स 2.7% हो गया है। यह केन्द्र तथा राज्य सरकारों के कुल सरकारी खर्चे का 10% था"।[228]

आज़ादी के लगभग 70 वर्षों बाद भी व्यवस्थापकों का उपर्युक्त 6% के लक्ष्य के पास तक न पहुँच पाना गुणात्मक शिक्षा को समाज के सभी वर्गों के बच्चों तक पहुँचाने के प्रयासों को और अधिक चुनौतीपूर्ण बनाता है। "पिछले लगभग 5 सालों में भारत में शिक्षा पर सरकारी निवेश कुल सकल घरेलू उत्पाद के 3% के आसपास रहा है"।[229] प्रारूप राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019 में "शिक्षा में निवेश को पर्याप्त रूप से बढ़ाने का लक्ष्य रखा गया है। इसके लिए वर्तमान के सालाना 10% सरकारी खर्च को अगले 10 वर्षों में बढ़ाकर 20% करने का लक्ष्य सोचा गया है"[230], अर्थात् शिक्षा पर सरकारी खर्च को अगले दस वर्षों में कुल सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 5.4% करने का लक्ष्य सोचा

[225] भारत सरकार 2019: 564

[226] Government of India 2013: 1-3

[227] Government of India 2016a: 18

[228] भारत सरकार, वही: 564

[229] वही: 565

[230] वही

गया है, यानि अगले दस वर्षों में भी शिक्षा पर किया जाने वाला खर्च कुल सकल घरेलू उत्पाद का 6% नहीं हो सकेगा।

भारतीय संविधान निर्माण के समय 14 वर्ष तक के बच्चों को निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा देने का जो प्रावधान किया गया था, उसे प्राप्त करने का लक्ष्य वर्ष 1960 था। व्यवस्थापकों को इस संविधानिक निर्देश को पूरा करने की समयावधि शिक्षा पर किए जाने वाले खर्च के आबंटन में निरंतर परिवर्तन के कारण बार-बार आगे बढ़ानी पड़ी। इसे व्यवस्थापकों अथवा शिक्षा नियोजकों में शिक्षा में बदलाव करने के प्रति 'इच्छाशक्ति की कमी' समझा जा सकता है। असल में, शिक्षा नियोजकों में 'भारतीय शिक्षा व्यवस्था' में व्यापक गुणात्मक बदलाव लाने के प्रति सदैव ही अनमना-सा भाव रहा है।

तालिका 6

शिक्षा पर खर्च (करोड़ों में)

स्तर	2011-12[231]	2012-13[232]	2013-14*	2014-15*
प्रारम्भिक शिक्षा	149164.77	159476.31	183440.21	226702.51
माध्यमिक शिक्षा	85572.91	89938.09	107034.19	122621.27
विश्वविद्यालयी, उच्च, प्रौढ़ और तकनीकी शिक्षा सहित कुल खर्च	333930.38	368132.80	433640.58	502928.76

स्रोत. मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा प्रकाशित आँकड़े

*ये अनुमानित आँकड़े हैं।

उपर्युक्त आँकड़ों के संदर्भ में विचारणीय है – प्रारंभिक शिक्षा पर किया जाने वाला खर्च कभी भी शिक्षा के सभी स्तरों के लिए आबंटित किए गए

[231] Government of India 2016b: 16

[232] Government of India 2018: 19

कुल वित्त के आधे से अधिक नहीं रहा। ऐसे में, बच्चे के आधार वर्षों में गुणात्मक शिक्षा सुनिश्चित कर पाना आसान कार्य नहीं रह जाता। ध्यातव्य है - प्रारम्भिक शिक्षा पर वर्ष 2011-12, 2012-13, 2013-14, व 2014-15 में किया गया खर्च या किया जाने वाला खर्च सभी स्तरों पर किए गए कुल खर्च का क्रमश: 44.66, 43.32, 42.30, व 45.07 प्रतिशत रहा है। यह स्थिति किसी प्रकार के सुधार की परिचायक नहीं है। माध्यमिक स्तर पर यह खर्च सभी स्तरों पर हुये या किए जाने वाले कुल खर्च का क्रमश: 25.62, 24.43, 24.68, व 24.38 प्रतिशत है। यह तथ्य विचारणीय है - इस अध्याय मे दर्शाई गई तालिका 3 और 4 के अनुसार मध्यमिक स्तर पर ही विद्यार्थियों में सबसे अधिक 'ड्रॉप-आउट' देखने में आता है, परन्तु फिर भी माध्यमिक स्तर पर वित्त का आबंटन बढ़ाया नहीं जा रहा है। इसे पाओलो फ्रेरे द्वारा सुझाई गई "चुप्पी की संस्कृति" के रूप में समझ सकते हैं, जिसमें व्यक्ति खराब परिस्थितियों को बदलने की बजाय अकर्मण्य होकर यथास्तितिवादी बन जाता है; और सत्ता से समय-समय मिलने वाली "मिथ्या उदारता" को ही अपना हक मान लेता है।

वैश्विक स्तर पर शिक्षा में समावेशीकृत गुणात्मकता के सम्बन्ध में वर्ष 1990 में थाईलैंड (जोमतियन) में 'सबके लिए शिक्षा' सम्मेलन[233] का आयोजन किया गया था। इस सम्मेलन में गरीबी को हटाए बिना जीवन में गुणात्मक सुधार लाने के लिए 'प्रौढ़ साक्षरता' को एक शक्तिशाली औज़ार के रूप में पेश किया गया; और आँकड़ों व तर्कों को गड्डमड्ड करके यह निष्कर्ष निकाला गया कि यदि, साक्षरता दर बढ़ाई जाएगी, तो लोगों का जीवन स्तर भी सुधरेगा।

इसी कड़ी में आगे, भारत में विश्व बैंक के सहयोग से वर्ष 1994 में 'जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम' लागू किया गया। ऐसे में होना तो यह चाहिए था कि केंद्र सरकार शिक्षा हेतु वित्त आबंटन के प्रतिशत को कुल सकल घरेलू उत्पाद के संदर्भ में थोड़ा और बढ़ा देती, परन्तु यह ध्यातव्य है कि वर्ष 1993

[233] UNICEF 1990

में जहाँ यह प्रतिशत 3.72 था, तो वहीं उपर्युक्त कार्यक्रम के लागू होने के वर्ष, यानि वर्ष 1994 में यह प्रतिशत घट कर 3.62 हो गया[234], अर्थात् विश्व बैंक से आर्थिक सहयोग प्राप्त होने के उपरांत भी शिक्षा वित्त आबंटन में बढ़ौतरी नहीं की गई। इसके बाद वर्ष 2000 व 2001 में शिक्षा खर्च का प्रतिशत क्रमश: 4.05 व 4.14 हुआ, परन्तु इसके बाद अगले 10 सालों तक यह प्रतिशत 4 के आँकड़े को छू नहीं पाया। वर्ष 2011 में जाकर ही यह प्रतिशत 4.05 हो सका।[235] वर्तमान में भारत अपने कुल सकल घरेलू उत्पाद का मुश्किल से 2.7% ही शिक्षा पर खर्च करता है।[236] ऐसे में यह प्रश्न उभरता है – वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में बिना शिक्षा खर्च में वृद्धि किए 'समावेशीकृत गुणात्मक शिक्षा' के लक्ष्यों को पूरा करना कैसे संभव हो सकेगा? स्थिति तब और जटिल बन जाती है, जब वित्तीय प्रणाली में गड़बड़ी को सुधारा नहीं जाता अथवा "आलोचनात्मक चेतनता" से दूरी बनाकर "स्वायत्तता और उत्तरदायित्व" को नहीं अपनाया जाता; और 'नियतिवादी दृष्टिकोण' को अपना लिया जाता है। वस्तुत:, भारत में वित्तीय प्रणाली में व्याप्त अक्षमता और कठिनाई का असर सीधे-सीधे महाविद्यालयों व विद्यालयों के संचालन पर पड़ता है। यह पाया गया है कि -

"सार्वजनिक क्षेत्र सही समय पर पैसा भुगतान न करने की समस्या से ग्रस्त है। उदाहरण के लिए - महाविद्यालय के शिक्षकों का वेतन कई राज्यों में महीनों बाद मिलता है; 'स्कूलों' में मध्याह्न भोजन हेतु पैसा देर से आता है; विद्यालयों के रख-रखाव का खर्च लंबे अंतराल के बाद भेजा जाता है, जबकि इनकी ज़रूरत दैनिक व साप्ताहिक होती है।

इसके अतिरिक्त, अक्सर धनराशि उपयोगकर्त्ता को साल के अंतिम महीनों में जारी होती है। इससे एक समस्या पैदा होती है - या तो पैसे का उचित उपयोग वक़्त कम होने के कारण से नहीं होता (जैसे कि सही अधिगम सामग्री का चुनाव और खरीद करने के लिए और गुणवत्तापूर्ण शिक्षक प्रशिक्षण के लिए)

---

[234] Government of India 2013: 2

[235] Government of India 2016a: 18

[236] भारत सरकार, वही: 564

या फिर यह होता है कि पैसा सिर्फ़ खर्च करने के लिए खर्च कर दिया जाता है, बिना किसी वास्तविक शैक्षिक प्रभाव के। ये समस्या आगे चलकर और बढ़ जाती है, क्योंकि अगले वर्ष हेतु बजट आबंटन वर्तमान वर्ष के वित्त उपयोग पर निर्भर होता है"।[237]

अत:, वित्त को लेकर के भारतीय शिक्षा में अधोलिखित दो तरह की समस्याएँ व्याप्त हैं –

- शिक्षा के लिए पर्याप्त वित्त का आबंटन न हो पाना
- आबंटित पैसे का सही उपयोग न हो पाना

उपर्युक्त दोनों तरह की वित्त सम्बन्धी समस्याओं हेतु वस्तुत: "आचरण" न करने की प्रवित्ति ज़िम्मेदार है, क्योंकि जब व्यक्ति के "चिंतन और कर्म में पूरकता" का अभाव होगा, तो व्यक्ति न तो 'सामाजिक कल्याण' को अपनी सोच के केन्द्र में रखने का प्रयास कर पाएगा और न ही सही समय पर सही निर्णय कर पाएगा। फ्रेरे इसे 'अकर्मण्यता की स्थिति' में उलझने के रूप में भी विश्लेषित करते थे। फ्रेरे के अनुसार लाभ की स्थिति प्राप्त व्यक्ति 'आत्मलीन' होकर ऐसी सोच को अपना लेते हैं, जिसके अंतर्गत वे स्थितियों में परिवर्तन का प्रयास करना छोड़ देते हैं।

भारत में शिक्षा की व्यवस्था हेतु विश्व 'बैंक', अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, एवं संयुक्त राष्ट्र 'एजेंसियों' समेत अन्य अंतर्राष्ट्रीय वित्त पोषक 'एजेंसियाँ' अपनी भूमिका अदा करती रही हैं। अनेक गैर-सरकारी संगठन भी शिक्षा तंत्र में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करते हैं। कुछ विश्लेषक मानते हैं - यदि, बच्चों को शिक्षित करना है, तो अंतर्राष्ट्रीय वित्त पोषक 'एजेंसियों' से धनराशि जुटाना एकमात्र रास्ता है। इनका मानना है कि यदि ये 'एजेंसियाँ' धन आबंटित नहीं करती हैं, तो देश के बच्चों को शिक्षित करना मुमकिन नहीं हो पाएगा। सट्टोपाल (2003)

[237] वही: 566

उक्त विचारों को अग्रवर्णित तथ्यों के तहत बच्चों को शिक्षा से वंचित रखने की साजिश मानते हैं -

'उन्नीकृष्ण फैसला 1993' 14 वर्ष तक के बच्चों को शिक्षा का मौलिक हक तो देता है, परन्तु संविधान का 86वाँ संशोधन 4 प्रमुख खामियाँ लिए हुए है। सर्वप्रथम - संविधान के पूर्व अनुच्छेद 45 में 0-6 आयु-समूह के बच्चों को मिले पोषण, स्वास्थ्य, सुरक्षा व पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के बुनियादी हक को इस संशोधन ने खत्म कर दिया है। दूसरा - संशोधन के अनुसार 6-14 आयु-समूह के बच्चों को शिक्षा उस रीति से दी जाएगी, जिसका निर्धारण राज्य कानूनन करेगा। यानि, 'समतामूलक गुणवत्ता' वाली शिक्षा की जगह राज्य ने गरीब बच्चों को घटिया दर्ज़े की शिक्षा – 'वैकल्पिक शाला', 'शिक्षा गारंटी स्कीम', 'पैरा शिक्षक', 'प्रौढ़ साक्षरता' आदि देने का फैसला कर लिया है, जिसके वैधानीकरण हेतु संविधान में संशोधन करवाकर यह नया उपबंध जोड़ा गया।

"86वें संविधान संशोधन की तीसरी सबसे बड़ी ख़ामी उस नए उप-अनुच्छेद को लेकर है, जिसे संविधान की मौलिक कर्त्तव्यों वाली धारा 51(क) में जोड़ा गया है। इस नए उप-अनुच्छेद(51(क)(ट)) के ज़रिए राज्य ने 6-14 आयु-समूह के बच्चों को शिक्षित करने की जवाबदेही अपने कंधों से सरकाकर माता-पिता के कंधों पर डाल दी है। अपनी संवैधानिक जवाबदेहियों से मुकरना भी अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा निर्देशित संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम का ही तक़ाज़ा है। संशोधन से जुड़ा चौथा सवाल उसके द्वारा किए गए वित्तीय प्रावधान को लेकर है। इसमें सभी बच्चों को शिक्षित करने के लिए अगले दस वर्षों तक हर साल 9800 करोड़ रुपये की अतिरिक्त राशि का इंतज़ाम करने का वादा किया गया है, लेकिन केंद्रीय सरकार द्वारा गठित 'तापस मजूमदार समिति' के वर्ष 1999 में प्रस्तुत प्रतिवेदन के अनुसार देश के जो आधे बच्चे स्कूली शिक्षा से बाहर है, उन्हें स्कूली शिक्षा की (घटिया गुणवत्ता वाली समानान्तर धाराओं की नहीं) सुविधा देने के लिए अगले दस सालों तक औसतन 14000 करोड़ रुपये प्रति वर्ष की दर से अतिरिक्त राशि उपलब्ध करानी होगी। यह रकम भारत के वर्ष 2001-02 के कुल सकल राष्ट्रीय उत्पाद का मात्र 0.78% है। यानि, देश की 100 रुपये की वार्षिक आय में से केवल

78 पैसे। इसकी तुलना में 86वें संविधान संशोधन के तहत जिस राशि का प्रावधान किया गया, वह भारत के सकल राष्ट्रीय उत्पाद का 0.35% है, यानि उसके आधे से भी कम!, लेकिन वर्ष 2003-04 में जब प्रारम्भिक शिक्षा (कक्षा 1-8 की शिक्षा) के मद में अतिरिक्त राशि के आबंटन का सवाल आया, तो मात्र 728 करोड़ रुपये की अतिरिक्त रकम दी गई, जो कुल सकल राष्ट्रीय उत्पाद का 0.04% था, यानि देश की 100 रुपये की वार्षिक आय में से 5 पैसे भी नहीं"।[238]

उपर्युक्त तथ्यपरक विवेचन से स्पष्ट है - भारत में शिक्षा हेतु होने वाले खर्च का नियोजन किसी भी दृष्टि से उपयुक्त नहीं है। इसलिए, भारत में शिक्षा में गुणात्मकता की अवधारणा को शिक्षा पर होने वाले व्यय से अंतर्संबंधित कर लगातार विश्लेषित करना होगा। ध्यातव्य है – यदि, सरकार की ओर से शिक्षा प्रसार हेतु पर्याप्त वित्त उपलब्ध नहीं कराया जाता, तो ऐसे में कमज़ोर व अपवंचित वर्ग से सम्बन्ध रखने वाले बच्चों को गुणात्मक शिक्षा प्रदान करना एक दिवास्वप्न ही बना रहेगा; और यह स्वीकारना पड़ेगा - सरकार की सोच 'मुफ़्त यानि सम्यक गुणात्मकता से कम', "मिथ्या उदारता" और सोच को "पालतू" बनाने की संस्कृति पर केन्द्रित होती जा रही है।

भारत में जब से शिक्षा को अधिकार का दर्ज़ा दिलाने की मुहीम ने ज़ोर पकड़ा है, तभी से शिक्षा की दृष्टि से उदारता का आचरण करने वाले व "मिथ्या उदारता" की अभिव्यक्ति करने वाले, दोनों तरह के व्यक्तियों की अभिव्यक्ति का प्रकटीकरण बढ़ा है। प्रथमत:, उदारता की दृष्टि का वैधानिक प्रकटीकरण संविधानिक संशोधनों के रूप में नज़र आया, परन्तु शीघ्र ही विभिन्न अनुच्छेदों में हुए संशोधनों ने उदारता के दृष्टिकोण के पीछे छिपी "मिथ्या उदारता" को प्रकट कर दिया।

अनेक प्रतिवेदनों व अध्ययनों से यह प्रकट हुआ है कि सरकारें शिक्षा को 'सामाजिक कल्याण' के रूप में मानने की सोच अथवा "सच्ची उदारता" से पीछे हट रही हैं। फलस्वरूप, शिक्षा में "मिथ्या उदारता" का प्रकटीकरण करने

[238] सड़ोपाल 2003: 9

वाले व्यक्तियों व संस्थाओं की संख्या में वृद्धि हो रही है। इस वृद्धि में कहीं-न-कहीं अच्छी समझी जाने वाली शिक्षा के मानकों से समझौता करना सन्निहित रहा है।

4.6.3 शिक्षकों की स्थिति की जटिलता और शिक्षा

विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास के लिए यह माना गया है कि "विद्यालयी शिक्षा के सभी स्तरों के सभी विद्यार्थियों का शिक्षण उत्साहित, प्रेरित, उच्च योग्यता वाले, प्रशिक्षित और निपुण शिक्षकों द्वारा ही होना चाहिए"।[239] भारत में अक्सर यह देखा गया है कि शिक्षण संस्थानों में जहाँ कहीं भी शिक्षकों की नियुक्ति स्थाई है, वहाँ प्रबंधकों द्वारा उनसे मनमाने ढंग से कार्य लेना आसान नहीं होता। ऐसे में जो शिक्षक अपना कार्य सत्यनिष्ठता से कर रहे होते हैं, उन्हें अवरोधकों का सामना नहीं करना पड़ता, परन्तु जो शिक्षक कार्य ठीक से नहीं कर रहे होते हैं, उनसे कार्य लेना प्रबंधकों के लिए चुनौती बन जाता है। इसके उलट जहाँ शिक्षकों की नियुक्ति अस्थाई है, वहाँ यह संभावना बनी रहती है - शिक्षकों को प्रबंधकों की मनमानी का शिकार होना पड़ सकता है। इस मनमानी में अग्रलिखित बिन्दु सन्निहित हो सकते हैं–

- शिक्षकों को संविदा अवधि पूरी होने से पहले ही नौकरी से निकाल देना
- शिक्षकों को अधिक वेतन पर हस्ताक्षर करवाकर कम वेतन देना
- शिक्षकों से अनावश्यक गैर शैक्षणिक कार्य करवाना
- शिक्षकों के कार्यभार में अनावश्यक वृद्धि होना
- शिक्षकों द्वारा दूसरों के सामने प्रबंधकों की ओर से अपमानजनक व्यवहार का सामना करना, इत्यादि।

उपर्युक्त तथ्यों के अतिरिक्त यह भी सत्य है कि वर्तमान समय में "शिक्षकों के स्तर में गिरावट आई है; और यह दुर्भाग्यपूर्ण है। शिक्षकों की शिक्षा, भर्ती,

[239] भारत सरकार, वही: 157

पदस्थापन, सेवा की परिस्थितियाँ और शिक्षकों के अधिकारों की स्थिति निम्न स्तर पर है। परिणामस्वरूप, शिक्षकों की गुणवत्ता और उत्साह चिंताजनक स्थिति में हैं"।[240] इसके अलावा, शिक्षकों के "प्रति आदर व सम्मान भाव को पुनर्जीवित करना होगा, जिससे देश के सर्वश्रेष्ठ लोग इस पेशे में आने को प्रेरित हों। इससे शिक्षा वह उच्च स्तर हासिल करेगी, जिससे हमारे विद्यार्थियों और देश का उत्कृष्ट भविष्य सुनिश्चित होगा"।[241]

उपर्युक्त विवेचन-विश्लेषण के संदर्भ में यह समझा जा सकता है कि जब तक शिक्षकों और प्रबंधकों को '"विवेकीकरण" प्रक्रिया' का हिस्सा नहीं बनाया जाएगा और कार्य स्थितियों में स्थाई सुधार नहीं किया जाएगा, तब तक व्यवस्थापकों द्वारा उचित प्रबंध करने की अनुशंसा उपरान्त भी शिक्षार्थियों के लिए गुणात्मक शिक्षा प्राप्ति सदैव ही दिवास्वप्न बनी रहेगी। इन संस्थानों में कार्यरत शिक्षक भी अपनी उत्पीड़नकारी स्थितियों में बदलाव हेतु इसलिए प्रयास नहीं करते, क्योंकि वे सभी "स्वतंत्रता के भय" से पीड़ित होते हैं, अर्थात् उन्हें यह भय होता है कि कहीं सुधार हेतु आवाज़ उठाने से उनकी स्थितियाँ और भी बदतर न हो जाएँ। पाओलो फ्रेरे के अनुसार "स्वतंत्रता का भय" अपनी वर्तमान परिस्थितियों से और अधिक जटिल अथवा विकट परिस्थितियों में फँसने का भय है। असल में, यह भय भविष्य के और अधिक खराब हो जाने का भय है। इस सम्बन्ध में फ्रेरे का स्पष्ट मानना था कि जो शिक्षा उत्पीड़कों में "आत्मलीनता" का व उत्पीड़ितों में "आत्महीनता" का प्रसार कर रही हो, वह 'सच्ची शिक्षा' नहीं हो सकती।

स्पष्टत:, यदि शिक्षा को गुणात्मक बनाना है, तो "आत्मलीनता" व "आत्महीनता" की स्थितियों से बचाव के लिए 'संवाद' के माध्यम से समाधान तलाशना होगा; साथ ही 'मिथ्या संवाद' या 'प्रतिक्रियावाद' से भी बचना होगा, जो केवल आक्रोश प्रतिस्थापन के रूप में प्रयोग किया जाता है, न कि व्यवस्था में सुधार के लिए। फ्रेरे ने अपने शिक्षा सम्बन्धी चिंतन में इसे

---

[240] वही

[241] वही

"संकीर्णतावादियों (मतान्ध, रूढ़ आत्मपरकतावादी, वैचारिक अलगाववाद के पक्षकार)"[242] से बचाव के रूप में विवेचित किया है; साथ ही फ्रेरे ने शिक्षकों को 'सच्ची सुरक्षा' अपनाने को भी कहा है, ताकि शिक्षक-छात्र दोनों मिलकर 'संवाद' के माध्यम से अनुसंधान करते हुए एक-दूसरे की समझ में वृद्धि कर सकें।

4.6.4 गरीबी सम्बन्धी जटिलता व शिक्षा

इस अध्याय में दर्शाई गई तालिका 5 के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि भारत में बहुत से बच्चे गरीबी या पारिवारिक आर्थिक परेशानियों की वजह से भी विद्यालयी शिक्षा में 'ड्रॉप-आउट' का सामना कर रहे हैं। तालिका 5 के संदर्भ में ध्यातव्य है कि अधोलिखित 'ड्रॉप-आउट' के कारणों का कहीं-न-कहीं गरीबी से गहरा सम्बन्ध होता है –

- वित्तीय बाधाएँ; जैसे – 'फीस' या कॉपी-किताबें खरीदने के लिए पर्याप्त पैसा न होना
- घरेलू गतिविधियों में संलग्नता; जैसे – अभिभावकों के काम पर जाने के बाद घर संभालना, अनुज भाई-बहनों की देखभाल करना, इत्यादि
- विद्यालय का दूर होना; जैसे - पैसा न होने की वजह से परिवहन साधनों का उपयोग न कर पाना
- आर्थिक गतिविधियों में संलग्नता; जैसे – घर खर्च चलाने हेतु कोई काम-धंधा करना
- विवाह हो जाना; जैसे - आर्थिक तंगी की वजह से लड़कियों की जल्दी शादी कर देना
- अन्य कारण; जैसे - ट्यूशन पढ़ने के लिए पर्याप्त पैसे का न होना, पैसे की कमी की वजह से शारीरिक स्वास्थ्य का ध्यान न रख पाना,

[242] फ्रेरे, वही: 3-4

विद्यालय के शिक्षकों-व्यवस्थापकों में गरीब वर्ग के बच्चों की संस्कृति से अनभिज्ञता, इत्यादि।

यदि, उपर्युक्त गरीबी सम्बन्धी 'ड्रॉप-आउट' कारणों को समग्र रूप से देखा जाए, तो स्पष्ट है – 'स्कूली' शिक्षा में कुल 'ड्रॉप-आउट' लड़कों में से लगभग 65.10% लड़के और कुल 'ड्रॉप-आउट' लड़कियों में से लगभग 73.30% लड़कियाँ गरीबी से जुड़े हुये कारणों की वजह से विद्यालयी शिक्षा पूर्ण करने से पूर्व ही 'ड्रॉप-आउट' हो जाते हैं। इसके अलावा, गरीबी सम्बन्धी वजहों से विद्यालयी शिक्षा में लड़कियों का 'ड्रॉप-आउट' प्रतिशत लड़कों की तुलना में अधिक है।

भारत में गरीबी को शिक्षा प्राप्ति के मार्ग में एक बहुत बड़ी बाधा माना जाता है। इसी कारण शिक्षा के अधिकार कानून के तहत अच्छे समझे जाने वाले 'स्कूलों' में छात्रवृत्तियों और आरक्षण के तहत गरीब वर्ग के बच्चों का प्रवेश सुनिश्चित करने के लिए प्रयत्न किए जाते रहे हैं। इन प्रयत्नों से इस वर्ग के बच्चों की शिक्षा तक पहुँच में वृद्धि हुई। परन्तु, साथ ही इस वर्ग के बच्चों को शिक्षित करने की कोशिशों में दिक्कतें भी आ रही हैं, जिसका पर्याप्त समाधान किया जाना ज़रूरी है। वे प्रमुख दिक्कतें इस प्रकार से हैं–

- गरीब वर्ग के बच्चों और उच्च वर्ग के बच्चों के बीच सांस्कृतिक अलगाव की उपस्थिति
- झूठे गरीबी सम्बन्धी प्रमाणपत्रों से प्रवेश प्राप्ति के मामलों का बढ़ना
- शिक्षकों में इन बच्चों की शैक्षिक आवश्यकताओं के प्रति अपूर्ण समझ
- प्रोत्साहन की कमी
- मूल्यांकन प्रणाली में ऐसे बच्चों की काबिलीयत को जगह न मिल पाना
- 'मध्याह्न भोजन योजना' का ठीक प्रकार से कार्यान्वित न हो पाना
- 'निरीक्षण प्रणाली' की अपर्याप्तता

- 'जातिगत व भाषागत भेदभाव' का होना, इत्यादि।

वस्तुत:, यदि व्यवस्थापकों को गरीब वर्ग से संबंधित बच्चों व उनके अभिभावकों को सरकारी एवं निजी विद्यालयों में गुणात्मक शिक्षा हेतु जागरूक करना है, तो उन्हें सबसे पहले निरीक्षण तंत्र को दुरुस्त करना होगा; व साथ ही शिक्षक-प्रशिक्षण में नवाचारों को प्रोत्साहित कर शिक्षा की 'निरौपचारिक' व्यवस्था को ठीक करना होगा, ताकि गरीब बच्चों हेतु 'स्कूलों' में गुणवत्तापूर्ण सीखने का बंदोबस्त किया जा सके।

यह भी ध्यान रखना होगा कि बीच में विद्यालय छोड़ने वाले शिक्षार्थियों की प्रतिशतता को विभिन्न जन मंचों के माध्यम से कम करने का प्रयास किया जाए। इसके लिए फ्रेरे द्वारा प्रतिपादित 'संवाद' की पद्धति को अपनाना होगा, जिसकी अनिवार्य शर्त है – 'विनम्रता', अर्थात् विनम्रतापूर्वक 'संवाद' के माध्यम से वर्गगत, जातिगत, व सांस्कृतिक रूढ़ भेदों को दूर करने की कोशिश होनी चाहिए; व गरीब वर्ग के लोगों को "विवेकीकरण" प्रक्रिया के माध्यम से अपनी विषम परिस्थितियों को बदलने हेतु प्रेरित करना चाहिए।

4.6.5 शिक्षक-शिक्षा की जटिलता और शिक्षा

शिक्षा वैचारिकी में शिक्षक-शिक्षा को सदैव ही एक गंभीर अनुचिंतन का विषय माना गया है। यह देखा गया है - यदि, शिक्षकों का प्रशिक्षण सही तरीके से न हो, तो इसका सीधा व प्रत्यक्षत: असर विद्यालयी शिक्षा पर पड़ता है, क्योंकि यदि शिक्षकों के प्रशिक्षण में अनुचिंतन, नवाचारों व ज्ञान के क्षेत्र में होने वाली अद्यतन खोजों का ध्यान नहीं रखा जाएगा, तो तथाकथित प्रशिक्षित शिक्षक कक्षा-कक्ष में विद्यार्थियों के बीच शिक्षा के वास्तविक लक्ष्यों का प्रसार ठीक से नहीं कर सकेंगे; और इससे जो भी भावी पीढ़ी तैयार होगी, वह ज्ञान के आविष्कार व पुनराविष्कार से न जुड़कर ज्ञान को एक ऐसी वस्तु मानने को ही अपना कर्म समझने लगेगी, जिसका क्रय-विक्रय किया जा सकता हो। पाओलो फ्रेरे ज्ञान को आविष्कारी और पुनराविष्कारी मानते थे। उनके अनुसार 'संवाद' के माध्यम से विश्व से जुड़कर ही सच्चे अर्थों में यथार्थवादी ज्ञान को सतत खोजा जा सकता है।

ध्यातव्य है - भारत में ज्ञान के फैलाव के संदर्भ में जैसे ही 'शिक्षा अधिकार कानून' को अमल में लाने की कोशिशें हुईं, यह आवश्यकता महसूस की जाने लगी कि यदि, 'स्कूलों' में प्रवेश के योग्य सभी बच्चों की 'स्कूलों' में पहुँच को सुनिश्चित किया जाये, तो नवीन 'स्कूलों' व विद्यालयों में नवीन शिक्षकों की आवश्यकता पड़ेगी। इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए नवीन शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थानों की ज़रूरत भी होगी। इससे "सच्ची उदारता" व "मिथ्या उदारता" का प्रकटीकरण करने वाले संस्थानों की संख्या में तेजी दर्ज़ की गई।

इन संस्थानों की संरचनात्मक व पाठ्यचर्यात्मक गुणवत्ता का प्रत्यक्षत: व अप्रत्यक्षत: मूल्यांकन करने का काम कई वैधानिक निकायों के अंतर्गत है; जैसे – एनएएसी, सीबीएसई, एनसीटीई, एआईसीटीई, डीईसी, व सम्बद्ध विश्वविद्यालयों के संबद्धता विभाग, इत्यादि। ये उपर्युक्त निकाय या तो विभिन्न पाठ्यक्रमों की गुणवत्ता की जाँच करते हैं या विभिन्न संस्थानों की अधिसंरचना व क्रियाकलापों (शैक्षणिक व गैर शैक्षणिक) की गुणवत्ता की जाँच-परख करते हैं या गुणवत्तापूर्ण शिक्षा हेतु अनुसंधान एवं सर्वेक्षण का कार्य करते हैं। उपर्युक्त निकायों के होने के बावजूद भारत में वस्तुस्थिति यह है-

"आज के समय में शिक्षक-शिक्षा गंभीर रूप से पिछड़ी हुई है; और संकट में है। हमारे देश में लगभग 17000 शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान हैं; और उनमें से लगभग 92% निजी स्वामित्व वाले हैं। अलग-अलग गहन अध्ययनों, जिनमें उच्च न्यायालय द्वारा गठित 'जस्टिस जे. एस. वर्मा कमीशन 2012' का अध्ययन भी शामिल है, दर्शाते हैं कि इन संस्थानों की एक बड़ी संख्या अच्छी शिक्षा उपलब्ध कराने का प्रयास भी नहीं करती है। इसके बजाय, ये व्यावसायिक दुकानों की तरह काम कर रही हैं, जहाँ न्यूनतम पाठ्यक्रम और कार्यक्रम की ज़रूरतों की भी पूर्ती नहीं की जाती; और यहाँ सिर्फ़ डिग्रियों की खरीद-फ़रोख्त होती है। असल में, शिक्षक-शिक्षा की सत्यनिष्ठता तब तक प्राप्त नहीं की जा सकती, जब तक ऐसी परिपाटी को पूर्ण रूप से बंद नहीं कर दिया जाता। इसके अलावा, बचे हुए नेक इरादों वाले शिक्षक-शिक्षा संस्थानों में से ज़्यादातर ऐसे संस्थान हैं, जहाँ केवल शिक्षक-शिक्षा ही होती है, परन्तु इनके

पास अच्छी शिक्षक-शिक्षा, जिसमें विभिन्न विषयों की विषयवस्तु, शिक्षणशास्त्र और अन्य व्यवहारिक कौशल मुहैया कराने की काबिलीयत नहीं है"।[243]

भारत में पूर्व में यह देखा गया गया कि ऐसे शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थानों को भी एनसीटीई व सम्बद्ध विश्वविद्यालयों से मान्यता मिल गई थी, जो कि पूर्व निर्धारित मानकों पर खरे नहीं उतरते थे। यह सदैव से ही अनुचिंतन का विषय रहा है कि मानकों पर खरे न उतरने वाले इन शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थानों को एनसीटीई व सम्बद्ध विश्वविद्यालयों से मान्यता कैसे प्राप्त हो गई थी? इसके मूल में अधोलिखित कारण देखने में आए –

- निरीक्षण से पूर्व ही इन संस्थानों को यह पता चल जाना कि निरीक्षण किस दिन होगा; परिणामस्वरूप, ऐसे संस्थानों द्वारा एक या दो दिनों के लिए किसी संस्था की 'बिल्डिंग' या स्वयं की 'बिल्डिंग' में मूलभूत सुविधाओं की व्यवस्था दिखा देना
- निरीक्षण दस्ते के सभी सदस्यों का 'प्रतिनियुक्ति' पर होना
- निरीक्षण दस्ते के सदस्यों का 'गैर अनुभवी' होना
- निरीक्षण दस्ते के सदस्यों का गुणवत्ता के मानकों की बजाय अन्य बिन्दुओं पर 'फ़ोकस' करना
- एक-दो दिनों के लिए संस्थान द्वारा शिक्षकों व कर्मचारियों की उपस्थिति को दिखा देना; व उपस्थिति 'रजिस्टर' व अन्य दस्तावेज़ों को सही से बना लेना
- अनुपस्थित्त शिक्षकों को 'अध्ययन अवकाश', 'मातृ अवकाश' या 'पितृ अवकाश' पर दर्शा देना

[243] भारत सरकार, वही: 159-160

- संबंधित शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान द्वारा निरीक्षण दस्ते के सदस्य या सदस्यों को अन्य 'अवाँछनीय व्यक्तिगत लाभ' प्रदान करना, इत्यादि।

उपर्युक्त संस्थानों के प्रति जैसे-जैसे जागरूकता बढ़ी, वैसे-वैसे एनसीटीई व सम्बद्ध विश्वविद्यालयों ने अन्य प्रबंध करने आरम्भ कर दिए, ताकि ऐसे संस्थानों की वृद्धि व उत्पत्ति को रोका जा सके। इसके लिए अग्रलिखित उपाय किए गए –

- एक वर्षीय बी.एड. पाठ्यक्रम में किसी संस्थान द्वारा अतिरिक्त 'सीटें' प्राप्त करने के लिए एनएएसी से 'ए' या 'बी' 'ग्रेड' प्राप्त करना अनिवार्य कर दिया गया।
- निरीक्षण हेतु अनुभवी लोगों की सेवाओं को लिया जाने लगा।
- संबंधित विश्वविद्यालयों द्वारा निरीक्षण दस्ते का भेजना सुनिश्चित किया गया।
- एनसीटीई द्वारा बी.एड. और अन्य शिक्षा-पाठ्यक्रम सम्बन्धी संस्थानों के दस्तावेज़ी व उपस्थिती सम्बन्धी आँकड़ों की 'ऑनलाइन' उपलब्धता सुनिश्चित की गई
- शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम की पाठ्यचर्या में व्यापक बदलाव किए गए
- वर्ष में एक से अधिक बार शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थानों का निरीक्षण किया जाने लगा, इत्यादि।

उपर्युक्त उपायों ने यद्यपि, मिथ्या शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थानों की खरपतवार को खत्म किया, परन्तु ध्यातव्य है कि इन उपायों ने शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थानों में अध्ययनरत विद्यार्थियों में उन मूलभूत कौशलों का विकास नहीं के बराबर ही किया, जिससे उनके स्तर में गुणात्मक सुधार होता। ऐसा इसलिए, क्योंकि इन संस्थानों में शुरू से ही शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम के प्रति सत्यनिष्ठता भरे आचरण का अभाव रहा है। इस अभाव को अग्रलिखित विवेचन-विश्लेषण से समझा जा सकता है -

4.6.5.1 शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम की पाठ्यचर्या में बदलाव से पहले किए गए अनुसंधान

बी.एड. पाठ्यचर्या में बदलाव से पहले ऐसे संस्थानों का दौरा किया गया, जहाँ दो वर्ष या चार वर्ष का शिक्षा पाठ्यक्रम चल रहा था। यह पाया गया है कि वहाँ अनमने ढंग से ही एक-दो दिनों का दौरा किया गया। यह भी देखा गया कि दो या चार वर्ष के पाठ्यक्रम में विद्यार्थियों व शिक्षकों को क्या समस्याएँ आ रही हैं, इसका ठीक प्रकार से विश्लेषण किए बिना ही शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम की पाठ्यचर्या में बदलाव करने की अनुशंसा कर दी गई।

उपर्युक्त संस्थानों की पाठ्यक्रम संचालन सम्बन्धी प्रमुख दिक्कतें निम्न प्रकार की थीं –

- दो व चार वर्षीय शिक्षक-शिक्षा कार्यकर्मों में विद्यालयी विषयों के शिक्षण का कार्य शिक्षा विभाग से जुड़े व्यक्ति नहीं कर रहे थे, बल्कि इन विषयों को 'कला व मानविकी' विभाग और 'गणित व विज्ञान' विभाग से जुड़े व्यक्ति पढ़ा रहे थे, जो कि स्वयं शिक्षक-शिक्षा उपाधि धारक नहीं थे।
- इन संस्थानों में वही बच्चे पढ़ने को आ रहे थे, जिनका प्रवेश या तो एक वर्ष वाले बी.एड. 'कोर्स' में नहीं हो सका था या जो विज्ञान, कला व प्रबंधन के अन्य विषयों में प्रवेश नहीं ले पाए थे।
- दो व चार वर्षीय शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रमों की पाठ्यचर्याओं का अद्यतन न होना, इत्यादि।

ध्यातव्य है – यदि, उपर्युक्त जटिलताओं पर चिंतन किए बिना ही शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम में नवीन पाठ्यचर्याओं की अनुशंसा की जाएगी, तो इससे गुणात्मकता सम्बन्धी व्यवहारगत समस्याएँ पैदा हो जाएँगी, जिनसे बचने हेतु संस्थान आसान रास्ता ढूँढते हैं। अब यह भी स्पष्ट होने लगा है कि निजी संस्थानों का इन उपर्युक्त पाठ्यचर्याओं को जारी रखने का अपना स्वार्थ भी पर्दे के पीछे कार्य कर रहा है; और कई संस्थान नवीन पाठ्यचर्याओं से आबन्धित समस्याओं का समुचित हल तलाश न कर समझौतावादी प्रवृत्ति

की ओर अग्रसर होने लगे हैं। इस प्रकार की प्रवृत्ति की निम्नांकित विशेषताएँ उभरकर सामने आई हैं –

- बी.एड. पाठ्यक्रम में 'विद्यालयी अनुभव' प्राप्त करने के दिनों की संख्या बढ़ने से शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थानों को विद्यालयों के साथ सामंजस्य बैठाने में दिक्कतें आ रही हैं; या तो विद्यालय अपने यहाँ प्रशिक्षण व अनुभव प्राप्ति की अनुमति देने से हिचकिचाने लगे हैं या बी.एड. प्रशिक्षुओं से अपने विद्यालय के अन्य गैर शैक्षणिक कार्य करवाने की शर्त रखने लगे हैं।
- यह भी देखा गया है कि शिक्षण अभ्यास में कई शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षु विद्यालय जाकर एक भी कक्षा में शिक्षण अभ्यास नहीं करते और सारा समय शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम से जुड़े या विद्यालय से जुड़े अभिहस्तांकन ही करते रहते हैं।
- संबंधित विश्वविद्यालयों द्वारा 'विद्यालयी अनुभव कार्यक्रम' हेतु सम्बद्ध संस्थानों की औचक जाँच-परख करने के लिए 'टीम' बनाने के प्रति अनदेखी का भाव रखना
- अव्यवहारिक व अनावश्यक अभिहस्तांकनों में वृद्धि होना
- संस्थानों में दो वर्षीय पाठ्यक्रमों की बजाय 3, 4 या 5 वर्षीय एकीकृत पाठ्यक्रमों को पाने की लालसा का बढ़ना, ताकि उन्हें शिक्षक-शिक्षा दो वर्षीय कार्यक्रम के दोनों वर्षों के 200 विद्यार्थियों की बजाय क्रमश: 300, 400 या 500 विद्यार्थियों को अपने यहाँ दाखिल करने का मौका मिल जाए; और फलस्वरूप, उनका लाभ अर्जन और भी बढ़ जाए
- शिक्षक-शिक्षा पाठ्यक्रमों की समयावधि बढ़ने से 'यूजीसी-नेट' धारक शिक्षकों की कमी में वृद्धि होना
- शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थानों में पहले से पढ़ा रहे शिक्षकों का नवीन पाठ्यचर्या से तालमेल न बिठा पाना

- ललित कलाओं, अभिनय कलाओं, और शारीरिक शिक्षा से जुड़े शिक्षकों को अल्पावधि के लिए नियुक्त करना, इत्यादि।

उपर्युक्त समस्याओं को व्यवस्थापकों में यथार्थबोध की कमी समझना होगा। फ्रेरे के अनुसार वस्तुस्थिति के ज्ञान के बिना कोई भी नवीन कार्य हाथ में लेना या पर्याप्त विचार-विमर्श के बिना किसी बात या सोच को थोपने से शिक्षा को रूढ़िवादी सोच से मुक्त नहीं किया जा सकता। यदि, शिक्षा को व्यक्ति में "विवेकीकरण" जागृति का प्रमुख औज़ार बनाना है, तो व्यवस्थापकों को यथार्थवादी होना होगा, यानि उन्हें अपनी पूर्वधारणाओं या पूर्वमान्यताओं को छोड़ने के लिए सदैव तैयार रहना होगा। पाओलो फ्रेरे '"विवेकीकरण" की प्रक्रिया' में ही शिक्षकों और व्यवस्थापकों की भूमिका खोजते हैं। इसमें "आलोचनात्मक चेतना" अथवा "समीक्षायी चेतना" की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। वस्तुत:, तभी शिक्षक-शिक्षा के क्षेत्र में गुणात्मक विकास की ओर अग्रसर होना संभव हो सकेगा।

इसके अतिरिक्त, भारत में शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थानों के संदर्भ में अधोवर्णित समस्याओं का उपस्थित होना चिंता का विषय है –

4.6.5.2 शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थानों में आंतरिक मूल्यांकन व पक्षपात

आंतरिक मूल्यांकन शिक्षक-शिक्षा में एक अनिवार्य तत्त्व के रूप में उभरकर सामने आया है। यह माना गया है कि पारंपरिक शिक्षा प्रणाली में, जिसमें केवल साल में एक या दो बार परीक्षा कराकर विद्यार्थी की सम्पूर्ण योग्यताओं का मूल्यांकन कर लिया जाता था, शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षुओं की सभी योग्यताओं का मूल्यांकन नहीं हो पाता था। इसीलिए, समग्रता को ध्यान में रखकर पाठ्यसहगामी गतिविधियों और क्रियाकलापों से विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विकास को लक्ष्य बनाया गया। इससे विद्यार्थियों के आत्मविश्वास में वृद्धि हुई, जिसे शिक्षक-शिक्षा में गुणात्मकता की अवधारणा या समुचित विकास से जोड़ा जा सकता है।

वस्तुत:, यह कभी भी विवाद का विषय नहीं रहा है कि पाठ्यसहगामी क्रियाओं के समावेशन से शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थानों में शिक्षार्थियों का ठीक प्रकार से व्यक्तित्व विकास हो पाता है। इन क्रियाओं के ज़रिए विद्यार्थी अनेक उपयोगी सामाजिक कौशलों को सीखते हैं। परन्तु, देखा जा सकता है कि इन क्रियाओं हेतु संस्थानों में योग्य शिक्षकों को रखे जाने से बचा जाता है या उन्हें अल्पावधि के लिए रखकर संस्थान अपनी जिम्मेदारियों से विमुक्त हो जाते हैं।

यह भी अब एक प्रचलन-सा बन गया है कि मूल विषय पढ़ाने वाले शिक्षक ही कला और शारीरिक गतिविधिओं से जुड़ी पाठ्यचर्याओं को निष्पादित कर दें। इससे नीति निर्माताओं द्वारा विद्यार्थियों में गुणात्मकता के आलोक में जिस समग्र व्यक्तित्व विकास को लक्षित करने का मंतव्य बनाया गया था, वह अधूरा ही रह जाता है। इसे फ्रेरे द्वारा प्रतिपादित "आचरण" की अवधारणा के अंतर्गत रखकर समझा जा सकता है। "आचरण' का अभिप्राय है – "कर्म व चिंतन में पूरकता"। यानि, जो सोचा गया है, उसके अनुरूप कार्य कर व्यवस्था की जाए; और यदि, व्यवस्था करने में कोई समस्या आड़े आ रही है, तो पुनः चिंतन या विचार-विमर्श से उस समस्या का समाधान तलाशा जाए, न कि तात्कालिक आसान रास्तों को अपना लिया जाए।

इसके अतिरिक्त, आंतरिक मूल्यांकन में विद्यार्थियों को 'जाति व लैंगिकता आधारित भेदभाव' का सामना भी करना पड़ता है। इसे भी शिक्षक-शिक्षा में गुणात्मकता के आलोक में विश्लेषित-विवेचित किए जाने की आवश्यकता है। असल में, वह मूल्यांकन कभी भी गुणात्मक नहीं हो सकता, जिसमें मूल्यांकन करने वाला जाति या लैंगिकता के आधार पर भेदभाव करे। आंतरिक मूल्यांकन में चूँकि, विद्यार्थी की जाति और लैंगिकता का, उसके नाम को जानकर व विद्यार्थी को देखकर पता चल जाता है, इसलिए इस तरह के मूल्यांकन में सदैव ही भेदभाव किए जाने की गुंजाईश बनी रहती है, जो कि संविधानिक प्रावधानों के अनुरूप नहीं है।

अत:, यह मानना होगा कि शिक्षक-शिक्षा में गुणात्मकता की अवधारणा उपर्युक्त तथ्यों से इतर जाकर परिपूर्णता नहीं पा सकती। स्थिति तब और भी

विकट हो जाती है, जब शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान प्रायोगिक घटकों के मूल्यांकन हेतु होने वाली मौखिक परीक्षाओं में बाह्य मूल्यांकन के लिए अन्य शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थानों से अपने यहाँ आने वाले शिक्षकों के द्वारा किए जाने वाले मूल्यांकन को दबाब डालकर या अन्य तरीकों से अपने अनुरूप बदलने की कोशिश करने लगते हैं; और मनमाने तरीके से मौखिक परीक्षाओं के आंतरिक मूल्यांकन के अंक विद्यार्थियों की मौखिक परीक्षा लिए बिना ही अपनी मर्ज़ी से पक्षपाती तरीकों से लगा देते हैं। इस प्रकार दिए जाने वाले अंकों पर संबंधित सम्बद्ध विश्वविद्यालयों का कोई नियंत्रण नहीं होता है। यह बात समानता व सामाजिक न्याय के संवैधानिक सिद्धान्त के विरुद्ध है।

4.6.5.3 शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थानों में निहित मिथ्या अभ्यास व असंगतियाँ

भारत में बी.एड. व अन्य पाठ्यक्रम सम्बन्धी शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थानों में कई विश्वविद्यालय शिक्षकों का चयन करने से पहले यह अनिवार्यता रखते हैं कि शिक्षकों के चयन के लिए चयन समिति का गठन तभी किया जाएगा, जब कुछ पूर्व निश्चित संख्या में खाली पद/ पदों के लिए आवेदकों ने आवेदन कर दिया हो। इस सम्बन्ध में यह पाया गया है कि उपर्युक्त वाँछनीय प्रक्रिया को कई शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान इस रूप में पूरा कर देते हैं कि वे अपने पास रखे पुराने आवेदनों को ही आवेदकों की ओर से झूठे हस्ताक्षर कर संबंधित विश्वविद्यालय को डाक के ज़रिये प्रेषित कर देते हैं। फलस्वरूप, बिना जाँच किए ही विश्वविद्यालय संबंधित शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान के लिए चयन समिति का गठन करने की स्वीकृति दे देते हैं। कई विश्वविद्यालयों में तो चयन समिति के गठन की ऐसी उपर्युक्त व्यवस्था भी नहीं है। ऐसे में संबंधित शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान किसी राष्ट्रीय अखबार में खाली पदों का विज्ञापन निकालकर वर्ष में जब चाहें अपने यहाँ शिक्षकों की नियुक्ति कर लेते हैं।

इसी प्रकार, यह भी देखा गया है कि निजी शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान जिन भी शिक्षकों को अपने यहाँ चयनित करते हैं, उनके साथ वे पहले से ही

वेतन सम्बन्धी मौखिक और लिखित समझौते कर लेते हैं। कई दफ़ा तो, वे चयनित शिक्षक विशेष को मूल कुल वेतन का एक-तिहाई या एक-चौथाई वेतन ही प्रदान करते हैं, परन्तु कागज़ी कार्रवाही को इस तरह पूरा करते हैं कि कानूनी तौर पर वे जाँच में पकड़े न जाएँ।

यह भी होने लगा है कि चयनित शिक्षक विशेष को चयन पत्र की मूल प्रति पर हस्ताक्षर करवा मूल प्रतिलिपि दी ही नहीं जाती। असल में, भारत में किसी सरकारी संस्थान में पढ़ाने वाले शिक्षकों के समान वेतन व भत्ते प्राप्त करना आज भी निजी शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थानों में पढ़ाने वाले अधिकतर शिक्षकों को मयस्सर नहीं है। जिन निजी शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थानों में यह कहा जाता है कि हम अपने यहाँ शिक्षकों को पूरा वेतन व भत्ते देते हैं, उनमें से भी अधिकतर संस्थान असल में शिक्षकों से पूरे वेतन पर हस्ताक्षर करा या 'ब्लैंक चैक बुक' पर हस्ताक्षर करवा उनको कम वेतन देते हैं या उनसे एक निश्चित मात्रा में वेतन वापिस करने को कह देते हैं। कई दफ़ा तो इन शिक्षकों को संस्थान द्वारा उनके नाम पर खोले गए खाते की संख्या और बैंक का नाम तक पता नहीं होता, क्योंकि संस्थान से जुड़ा बैंक इन शिक्षकों से पहले ही लिखवा लेता है कि उनके खाते का सारा लेन-देन संस्थान के अधिकारी ही करेंगे। ऐसे में बैंक शिक्षकों की पास बुक, चैक बुक व डैबिट कार्ड, इत्यादि भी शिक्षकों को देने की बजाय संस्थान को ही दे देता है। इसके अलावा शिक्षकों के खातों में कितने पैसे डाले गए या निकाले गए, इसका रिकार्ड भी बैंक एसएमएस के ज़रिए शिक्षकों के मोबाइल नंबर पर न भेजकर संस्थान के मोबाइल नंबर पर भेजते हैं। कई शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान तो संबंधित विश्वविद्यालय की ओर से होने वाले निरीक्षण से एक या दो दिन पहले ही शिक्षकों को यह बताते हैं कि उनका कुल वास्तविक वेतन कितना है। असल में, यह वास्तविक वेतन शिक्षकों को मिलने वाले वेतन का लगभग तीन या चार गुना होता है।

यह एक विडंबनीय स्थिति है कि संबंधित विश्वविद्यालय, एनसीटीई व एनएएसी, इत्यादि निकायों और उनके द्वारा प्रतिनियुक्ति पर भेजे जाने वाले निरीक्षण दल के शिक्षक व अधिकारी यह मानकर चल रहे हैं कि निजी

शिक्षक-शिक्षा संस्थानों में शिक्षक यदि कुल अपेक्षित वेतन का एक-तिहाई या एक-चौथाई भी प्राप्त कर लें, तो भी वह शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षुओं को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान कर सकते हैं; और उनको विद्यालयों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देने के लिए मना भी सकते हैं।

इसके अतिरिक्त, ये निरीक्षण दस्ते चूँकि, औचक निरीक्षण दस्ते नहीं होते, इसलिए यह पाया गया है कि संबंधित संस्थान इनके आने से पहले ही उपस्थिति 'रजिस्टर' को झूठे हस्ताक्षरों से पूरा कर लेते हैं; और संबंधित शिक्षकों को दर्शा देते हैं। वस्तुत:, शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान द्वारा अधिसंरचना सम्बन्धी वाँछनीय मानकों पर खरा उतरने के पश्चात् निरीक्षण दस्ते द्वारा पूछे जाने वाले सवाल भी मात्र औपचारिकताभर बनकर रह जाते हैं। स्पष्टत:, इन औपचारिकताओं की अभिपूर्ति करने वाले शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थानों से गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की समझ की उम्मीद रखना निरर्थक है। ऐसे संस्थानों में करवाए जाने वाली गोष्ठियाँ, सम्मेलन व 'संकाय विकास कार्यक्रम' भी सदैव ही प्रश्न के घेरे में बने रहते हैं।

इसके अलावा, विश्वविद्यालयों में भी अब इस बात का प्रचलन बढ़ता देखा जा सकता है कि वे शिक्षक-शिक्षा पाठ्यक्रमों को अपने परिसर में न कराकर उपर्युक्त निजी शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थानों में कराने को महत्त्व देने लगे हैं। निश्चित तौर पर, यदि ऐसे संस्थानों से शिक्षक तैयार होकर विद्यालयी शिक्षा में प्रवेश करेंगे तो, शिक्षा में गुणात्मकता की अवधारणा अत्याधिक गंभीर रूप से प्रभावित होगी। इस गंभीर विसंगती को फ्रेरे द्वारा प्रतिपादित "मानुषीकरण" और "अमानुषीकरण" की अवधारणा के अंतर्गत रखकर विवेचित किया जा सकता है। फ्रेरे की दृष्टि में "मानुषीकरण" का अर्थ है – "पूर्णतर मनुष्य बनना"; यानि एक ऐसा मनुष्य, जो अपने आसपास के लोगों के प्रति संवेदनशील हो; जिसे यह पता हो कि उसके द्वारा किए जा रहे कार्यों का दूसरों पर क्या अच्छा-बुरा प्रभाव पड़ रहा है; व समाज को बेहतर बनाने में कैसे मदद की जा सकती है। फ्रेरे मानते थे कि सभी को अमनुष्य बनाने वाली परिस्थितियों में बदलाव लाने हेतु मिलकर प्रयास करने चाहिए। इसीलिए

वह 'संवाद' को व्यक्तियों को "विवेकीकृत" बनाने वाले औज़ार के रूप में देखते थे।

4.6.5.4 शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थानों में गोष्ठियों, सम्मेलनों, कार्यशालाओं, कार्यक्रमों, इत्यादि की अनिवार्यताएँ

भारत में विभिन्न निकायों द्वारा किसी शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान की गुणवत्ता इस बात से भी मापी जाती है - वह संस्थान शैक्षिक सत्र में कितनी प्रत्यक्ष और कितनी अप्रत्यक्ष वैब गोष्ठियों, सम्मेलनों, कार्यशालाओं, कार्यक्रमों, इत्यादि का आयोजन करता है। यह विदित है कि केवल आयोजन करवाना मात्र ही गुणवत्ता का परिचायक नहीं हो सकता। गोष्ठियों, सम्मेलनों, कार्यशालाओं, कार्यक्रमों, इत्यादि के आयोजन में यह तथ्य 'फोकस' में रखना होगा - शोध पर्चा प्रस्तुतीकरण सम्बन्धी गुणवत्ता के एक निश्चित स्तर को बनाए रखा जाए।

वर्तमान समय में शोध पर्चा प्रस्तुतीकरण के सम्बन्ध में गुणवत्ता अधोलिखित बिन्दुओं से प्रभावित है –

- अनुसंधान पर्चों का वाँछित मानक स्तर के अनुरूप न होना
- 'मिथ्या प्रतिभागियों' द्वारा पर्चा प्रस्तुतीकरण सम्बन्धी प्रमाणपत्र प्राप्त कर लेना
- संस्थान द्वारा संबंधित सरकारी या गैर सरकारी संस्था से पैसा प्राप्ति हेतु कागज़ी कार्रवाही को मिथ्या गणनाओं से पूरा करना
- वैब गोष्ठी, सम्मेलन, कार्यशाला, कार्यक्रम, इत्यादि के संदर्भ में अपने साथ-साथ ऐसे व्यक्ति के लिए भी पृष्ठपोषण पत्रक भरकर प्रमाणपत्र प्राप्त कर लेना, जिसने वैब गोष्ठी में भाग ही नहीं लिया था
- नौकरियों में यूजीसी द्वारा वाँछित अंक प्राप्त करने को लक्षित कर व्यक्तियों द्वारा पर्चा प्रस्तुतीकरण करना

- शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान का निरीक्षण करने हेतु आने वाले दस्ते के व्यक्तियों को संस्थान की विभिन्न गोष्ठियों, सम्मेलनों, कार्यशालाओं, कार्यक्रमों, इत्यादि में मुख्य वक्ता या अतिथि बनाकर इस हेतु पारितोषिक प्रदान करना कि उन्होंने संस्थान के निरीक्षण में संस्थान को 'क्लीन चिट' प्रदान करने में सहयोग दिया था, इत्यादि।

स्पष्टत:, किसी भी गोष्ठी, सम्मेलन, कार्यशाला, कार्यक्रम, इत्यादि में उपर्युक्त बिन्दुओं की उपस्थिति इस प्रकार की गतिविधियों की गुणवत्ता को 'मिथ्या गुणवत्ता' में परिवर्तित कर देती है, जिससे शिक्षक-शिक्षा संस्थानों को बचना होगा, अर्थात् संस्थानों को यथास्थितिवादी बनाने वाली "चुप्पी की संस्कृति" को छोड़ "दख़लअंदाज़ी की संस्कृति" को अपनाना होगा। इससे शिक्षा सम्बन्धी विभिन्न सरोकारों को समझकर गुणवत्तापूर्ण शिक्षक-शिक्षा को लक्षित किया जा सकना संभव हो सकेगा।

उपर्युक्त शिक्षक-शिक्षा सम्बन्धी विश्लेषण-विवेचन से यह समझा जा सकता है कि "अगर, शिक्षक-शिक्षा में सुधार करना है; और सत्यनिष्ठता और विश्वसनीयता को उस स्तर तक पहुँचाना है, जहाँ पर शिक्षा के व्यवसाय की प्रतिष्ठा बहाल हो; और एक सफ़ल विद्यालय व्यवस्था स्थापित हो"।[244], तो इसके लिए "निम्न स्तर के संस्थानों; विशेषकर निम्नतर शिक्षक-शिक्षा संस्थानों को तुरन्त बंद करना होगा; और साकारात्मक उद्देश्य से काम करने वाले अच्छे संस्थानों को मजबूत करना होगा"।[245]

इसके अतिरिक्त, शिक्षक-शिक्षा संस्थानों में खाली पड़े विभिन्न विषयों के पदों को उचित तरीकों से भरना होगा, कार्यरत शिक्षकों का नवीन प्रशिक्षण कराना होगा, और संस्थानों में संसाधनों का समुचित उपयोग करना होगा। ऐसा इसलिए, क्योंकि प्रारूप राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019 के अनुसार "जिला शिक्षा

[244] वही: 394

[245] वही

प्रशिक्षण संस्थानों में कुल अनुमोदित पदों में से 45% पद खाली हैं; साथ ही जो लोग इन पदों पर हैं, उनकी क्षमता इस भूमिका के अनुरूप नहीं है"।[246]

इसके अलावा, इन संस्थानों में आबंटित "पैसे का या तो समुचित उपयोग नहीं होता है या उपयोग होता है, तो अप्रभावी रूप से। ... इसकी वजह से आबंटित धन का भ्रष्टाचार होता है; और बच्चों के विकास हेतु जिन संसाधनों को खरीदा जाना होता है, वह नहीं हो पाता"।[247] अन्य शब्दों में, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के नियोजन हेतु भारत में शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम की संरचना में आमूल बदलाव करने होंगे, अन्यथा विद्यालयी शिक्षा के लिए एनसीटीई द्वारा सुझाए गए[248] ऐसे शिक्षक तैयार करना असंभव हो जाएगा, जो –

- बच्चों की परवाह करें, उनके साथ होना पसंद करें; उन्हें उनके सरोकारों में समझें; और सभी बच्चों संग समान व्यवहार करें;
- ज्ञान को प्रदत्त न माने, पाठ्यचर्या को पूर्वस्थापित न समझें; और बिना प्रश्नचिह्न लगाए उसे न स्वीकारें; बच्चों को निष्क्रिय होकर ज्ञान प्राप्त करने वाला न समझें, बच्चों को ज्ञान के निर्माण से हतोत्साहित न करें;
- रटंत तरीके से सीखने को हतोत्साहित करें, सीखने को आनंददायक और सहभागी गतिविधि बनाएँ; 'अधिगमकर्त्ता केन्द्रित', 'गतिविधि आधारित', और 'सहभागी अधिगम' अनुभवों का आयोजन करें; जैसे – नाटक मंचन, परियोजना कार्य, चर्चा, 'संवाद', अवलोकन, भ्रमण, उत्पादक कार्यों से शैक्षणिक अधिगम को समेकित करना;
- पाठ्यचर्या और पाठ्यपुस्तकों का आलोचनात्मक परीक्षण करें; स्थानीय आवश्यकतानुरूप पाठ्यचर्या का संदर्भीकरण करें; और
- शांति सम्बन्धी मूल्यों को बढ़ावा दें; जैसे – जीवनयापन का लोकतान्त्रिक तरीका, समानता, न्याय, स्वतंत्रता, भ्रातृत्वभाव,

[246] वही: 566

[247] वही: 566-567

[248] National Council for Teacher Education 2009: 76

'पंथनिरपेक्षता', सामाजिक पुनर्निर्माण के प्रति उत्साह, और स्वयं के शिक्षण अनुभव के प्रति अनुचिंतन करना

स्पष्टत:, भारत में शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम की सम्पूर्ण संरचना में विभिन्न स्तरों पर व्यापक बदलाव करने होंगे, ताकि विद्यालयी शिक्षा और शिक्षक-शिक्षा पुनः समाज रूपान्तरण से जुड़ सके; और व्यक्तियों में अनुसंधान सम्बन्धी दृष्टिकोण का विकास कर सके। पाओलो फ्रेरे इस तरह का बदलाव करने की सोच को "आमूल परिवर्तनवाद" के अंतर्गत रखकर विवेचित करते थे, उनके अनुसार "संकीर्ण" सोच व्यक्ति को रूढ़ और "मतांध" बनाती है, परन्तु "आमूल परिवर्तनवादी" सोच व्यक्ति को आशान्वित करती है कि एक बेहतर भविष्य का मिलकर सतत निर्माण करना संभव हो सकता है; एक ऐसा भविष्य, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति विश्व से जुड़ा हुआ हो और मनुष्यता से भरा हुआ हो।

अध्याय 5

सार, प्राप्तियाँ, निष्कर्ष, व निहितार्थ

अध्याय 5

सार, प्राप्तियाँ, निष्कर्ष, व निहितार्थ

5.1 सारबद्धतागत परिप्रेक्ष्य

शोध की रूपरेखा के अंतर्गत प्रथम पड़ाव से लेकर के अंतिम पड़ाव अथवा नियोजन के सभी आधार महत्त्वपूर्ण होते हैं। यह कहना तर्कसंगत जान पड़ता है कि शोध की प्रक्रिया के अनुपालन में शोधार्थी को निष्ठा से कार्य करते हुए शोध से जुड़े सभी पक्षों को अनुचिंतन का विषय बनाकर अपने शोधकार्य की गुणात्मकता में बढ़ौतरी करनी चाहिए।

यह भी ध्यातव्य है कि यदि, शोधक सार लेखन में अपने किए हुए शोध का तर्कसंगत विवेचन न करे, तो इससे अन्यों के लिए शोध की स्पष्टता को समझना थोड़ा कठिन हो सकता है अथवा उन्हें शोध से प्राप्त आँकड़ों को समझने में थोड़ा अधिक समय लगता है। तभी, अनुसंधानकर्त्ता को सार लेखन में पर्याप्त सतर्कता बरतनी चाहिए, अन्यथा शोध की प्राप्तियों और निष्कर्षों के प्रति वास्तविक समझ विकसित होने में कठिनाई आ सकती है।

असल में, अनुसंधान सार लेखन में अनुसंधानकर्त्ता को अधोलोखित बिन्दुओं पर पुनर्चिंतन के लिए एक अवसर मिलता है –

- उद्देश्यों की पूर्ति कहाँ तक संभव हुई?
- 'शोध अभिकल्प' कितना तर्कसंगत है?
- जनसंख्या के संदर्भ में प्रतिदर्श का निरूपण वास्तविक रूप से कितना फलीभूत हुआ?
- क्या 'प्रतिचयन विधि' विशेष का प्रयोग सम्यक रहा?

- आँकड़ों के संग्रहण में प्रयुक्त उपकरण किस हद तक लाभकारी व वैध रहे?
- आँकड़ों के विश्लेषण में प्रयोग की गईं 'तकनीकें या उपागम' कितने सार्थक रहे?
- शोध प्राप्तियाँ, शोध उद्देश्यों से कहाँ तक संबद्ध रहीं?
- शोध के निष्कर्ष क्या कोई नवीन संभावनायें जगाते हैं?
- क्या किया गया शोध बेहतरी को लेकर आशान्वित बनाता है?, इत्यादि।

उपर्युक्त बिन्दुओं के अंतर्गत स्पष्ट है कि शोधक के विचारों में अनुसंधान की प्रक्रिया हमेशा अनवरत चलती रहे, ताकि इससे शोध के आँकड़ों व समकालीन सच्चाईयों को लेकर समझ में उतरोत्तर वृद्धि हो। वस्तुत: तभी, शोध पर किया गया अनवरत चिंतन समकालीन वास्तविकताओं की समझ बढ़ाता है; और इससे नवीन शोधों के लिए रास्ता तैयार होता है। अध्ययन का सार अधोवर्णित रूप में प्रस्तुत है –

5.2 अध्ययन आवश्यकता

पाओलो फ्रेरे के विचारों को सामान्यतः 'तीसरी दुनिया' अथवा विकासशील देशों के संदर्भ में जाना गया। प्राय:, भारत को भी 'तीसरी दुनिया' की श्रेणी के अंतर्गत समझा गया है।

शिक्षा में जहाँ भारत में एक ओर नए क्षेत्रों का सृजन हुआ है, तो वहीं दूसरी ओर 'विशिष्टीकरण' द्वारा शिक्षा से वंचित तबका और अधिक वंचित भी हुआ है। यह स्पष्टतः देखा गया है कि राजनीतिक संरचना अथवा राज्य-व्यवस्था राज्य के नागरिकों के कल्याण के लिए नीति बनाने की बजाय राज्य-संरचना को रूढ़ बनाने वाली व्यवस्था के पोषण का ज़रिया मात्र बनती जा रही है। गठबंधन सरकारों का चलन इस स्थिति में और वृद्धि करता लगता है।

दीर्घकाल से भारत में 'औपचारिकेतर शिक्षा-तंत्र' को स्थापित करने हेतु प्रयास अनेक अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के माध्यम से किए गए हैं। परन्तु, अब यह 'औपचारिकेतर शिक्षा-तंत्र' 'सुरक्षा वाल्व', 'आक्रोश प्रतिस्थापन' व 'सस्ता या मुफ़्त तो घटिया' जैसी वैचारिकी में बदल रहे हैं। इसी कड़ी में एसएसए शिक्षा की बजाय सिर्फ़ पढ़ना-लिखना आने पर केन्द्रित होकर रह गया है।

ऐसे में - समकालीन भारतीय परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक विचारों अथवा चिंतन को उसी रूप में देखा जाए, जिस रूप में वे 'तृतीय विश्व' से जुड़े रहे हैं अथवा नए संदर्भों में उन्हें जांचा-परखा जाए? अतः, आवश्यक है कि समकालीन भारतीय परिस्थितियों में पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक विचारों को विवेचित-विश्लेषित कर सम्यक निष्कर्षों को समझा जाए। प्रस्तुत अध्ययन इसी कड़ी में किया गया एक प्रयास है।

5.3 समस्या कथन

'समकालीन भारतीय परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक विचारों का विश्लेषणात्मक अध्ययन'

5.4 शब्दावली परिभाषा

5.4.1 भारतीय परिस्थितियाँ

भारतीय परिस्थितियों का अभिप्राय भारत की 'राजनीतिक, आर्थिक, व सामाजिक' परिस्थितियों से है।

5.4.2 शैक्षिक विचार

शैक्षिक विचारों का अभिप्राय 'शिक्षा सम्बन्धी विचार' हैं।

5.5 शोध प्रश्न

5.5.1 तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों विशेष के अंतर्गत पाओलो फ्रेरे के विचार किस प्रकार निर्मित अथवा रचित हुए?

5.5.2 तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों के आलोक में पाओलो फ्रेरे के विचार किस प्रकार निर्मित अथवा रचित हुए?

5.5.3 तत्कालीन आर्थिक परिस्थितियों के आलोक में पाओलो फ्रेरे के विचार किस प्रकार निर्मित अथवा रचित हुए?

5.5.4 पाओलो फ्रेरे की शैक्षिक दृष्टि में शिक्षा के उद्देश्यों का क्या स्वरूप है?

5.5.5 पाओलो फ्रेरे की शैक्षिक दृष्टि में शिक्षा की पद्धति का क्या स्वरूप है?

5.5.6 भारत की समकालीन सामाजिक परिस्थितियों में शिक्षा का क्या स्वरूप है; और होगा?

5.5.7 भारत की समकालीन राजनीतिक परिस्थितियों में शिक्षा का क्या स्वरूप है; और होगा?

5.5.8 भारत की समकालीन आर्थिक परिस्थितियों में शिक्षा का क्या स्वरूप है; और होगा?

5.5.9 भारत की समकालीन परिस्थितियों के अंतर्गत शिक्षा के स्वरूप को पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक चिंतन से किस प्रकार बेहतर समझा जा सकता है?

5.6 शोध उद्देश्य

5.6.1 पाओलो फ्रेरे के 'शिक्षा सम्बन्धी विचारों' पर तत्कालीन परिस्थितियों विशेष के प्रभाव का विश्लेषण करना।

5.6.2 पाओलो फ्रेरे के 'शिक्षा सम्बन्धी विचारों' के अन्तर्गत शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण व विश्लेषण करना।

5.6.3 पाओलो फ्रेरे के 'शिक्षा सम्बन्धी विचारों' में निहित शैक्षिक पद्धति अथवा पद्धतियों की पहचान व विश्लेषण करना।

5.6.4 भारत में समकालीन सामाजिक परिस्थितियों और शिक्षा की अन्तर्क्रियात्मकता का विश्लेषण करना।

5.6.5 भारत में समकालीन राजनीतिक परिस्थितियों व शिक्षा के सम्बन्ध को विशेलषित करना।

5.6.6 भारत में समकालीन आर्थिक परिस्थितियों व शिक्षा की आबन्धकता का विश्लेषण करना।

5.6.7 समकालीन भारतीय परिस्थितियों विशेष के बरक्स पाओलो फ्रेरे के 'शिक्षा सम्बन्धी विचारों' को विश्लेषित करना।

5.7 परिसीमन

5.7.1 प्रस्तुत अनुसंधान कार्य में केवल ब्राज़ील के शिक्षाशास्त्री व दार्शनिक पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक विचारों का गहन विश्लेषण किया गया है।

5.7.2 प्रस्तुत अध्ययन में काल खण्ड की लोचशीलता को ध्यान में रखकर मुख्यत: पिछले 10-15 वर्ष की भारत की समकालीन परिस्थितियों विशेष का अध्ययन किया गया है।

5.7.3 प्रस्तुत अनुसंधान में पाओलो फ्रेरे की पुस्तक "उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र" को अध्ययन का मूल आधार बनाया गया है।

5.7.4 प्रस्तुत अध्ययन को 'शिक्षा के समाजशास्त्र' शाखा के अंतर्गत विवेचित-विश्लेषित किया गया है।

5.7.5 प्रस्तुत अध्ययन में 'तुलनात्मक तकनीक' अथवा उपागम की बजाय 'गुणात्मक-विश्लेषणात्मक तकनीक' अथवा उपागम का उपयोग किया गया है।

5.7.6 प्रस्तुत अध्ययन में 'अर्धसंरचित 'साक्षात्कार' अनुसूची' की 'विषयवस्तु वैधता' हेतु 30 शिक्षाविदों से परामर्श लिया गया है।

5.7.7 प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत विभिन्न मामलों से संबंधित समझ को बेहतर करने हेतु 15 शिक्षाविदों से प्रत्यक्षत: व 'दूरभाषिक व्यक्तिगत साक्षात्कार' लिया गया है।

5.8 शोध पद्धतिशास्त्र

5.8.1 अध्ययन का काल-खण्ड

प्रस्तुत अध्ययन में मुख्यत: पूर्व के 10-15 वर्षों में भारत में बदलती परिस्थितियों विशेषान्तर्गत शिक्षा जगत को शोध काल-खण्ड हेतु विवेचित-विश्लेषित किया गया है, परन्तु काल-खण्ड की लोचशीलता के आलोक में आवश्यकतानुरूप भारत के शैक्षिक इतिहास से आबद्ध मुख्य दस्तावेज़ों व वैश्विक वैचारिक विमर्शों का भी विश्लेषण हेतु शोध में इस्तेमाल अपेक्षित है।

5.8.2 शोध अभिकल्प में प्रयुक्त विधि

अध्ययन हेतु 'अनुसंधान अभिकल्प' वर्णनात्मक है। 'वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प' का प्रयोग 'शिक्षा के समाजशास्त्र अथवा समाजदर्शन' के अंतर्गत शैक्षिक चिंतन को समझने व समकालीन घटनाओं के विवेचन में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। प्रस्तुत अनुसंधान का मूल उद्देश्य पाओलो फ्रेरे के 'शिक्षा सम्बन्धी चिंतन' को तत्कालीन परिस्थितियों व समकालीन भारतीय परिस्थितियों व घटनाओं से जोड़कर विश्लेषित-विवेचित करना है। अतः, इस अनुसंधान में 'वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प' प्रयुक्त किया गया।

5.8.3 प्रतिचयन

5.8.3.1 समष्टि या जनसंख्या

यद्यपि, प्रस्तुत अध्ययन मुख्य तौर पर दस्तावेज़ों व विभिन्न वैचारिक विमर्शों में निहित तथ्यों के विश्लेषण-विवेचन पर आधारित है, तथापि विश्लेषण को सारगर्भित बनाने के लिए शोधकर्त्ता द्वारा भारत में 'स्नातक व परास्नातक शिक्षक-शिक्षा' से जुड़े विभिन्न शिक्षाविदों से 'व्यक्तिगत बातचीत' के माध्यम से अग्रवर्णित 'अर्धसंरचित साक्षात्कार अनुसूची' में पूछे जाने वाले प्रश्नों की संरचना और प्रश्नों से प्राप्त जानकारी को तर्कशील बनाने की कोशिश की गई।

5.8.3.2 प्रतिदर्श या व्यष्टि या न्यादर्श

शोध की गुणात्मकता के बरक्स शोधकर्त्ता द्वारा अग्रवर्णित 'प्रतिचयन विधि' को अपनाकर भारत में 'स्नातक व परास्नातक शिक्षक-शिक्षा' से जुड़े विभिन्न शिक्षाविदों में से 15 शिक्षाविदों का चुनाव कर 'साक्षात्कार' के माध्यम से वाँछित जानकारी प्राप्त की गई; और 'अर्धसंरचित साक्षात्कार अनुसूची' के प्रश्नों की संरचना को तर्कसंगत बनाने के लिए अग्रवर्णित 'प्रतिचयन विधि' को अपनाकर भारत में 'स्नातक व परास्नातक शिक्षक-शिक्षा' से जुड़े 30 शिक्षाविदों से भी परामर्श लिया गया।

5.8.3.3 'प्रतिचयन विधि'

अध्ययन में अनुसंधानकर्त्ता ने 'अर्धसंरचित साक्षात्कार अनुसूची' में प्रयुक्त प्रश्नों की संरचना को तर्कसंगत बनाने के लिए परामर्श हेतु भारत में 'स्नातक व परास्नातक शिक्षक-शिक्षा' से जुड़े 30 शिक्षाविदों और 'साक्षात्कार' हेतु 15 शिक्षाविदों को शोध की गुणात्मकता को ध्यान में रखकर 'अप्रायिकता विधि' के अंतर्गत 'सोद्देश्य अथवा उद्देश्यपरक प्रतिचयन विधि' को अपनाकर चयनित किया। इसके लिए यह भी ध्यान रखा गया कि उपर्युक्त सभी शिक्षाविद पाओलो फ्रेरे के शिक्षा दर्शन की समझ रखते हों; और इन्हें 'स्नातक अथवा परास्नातक शिक्षक-शिक्षा' के क्षेत्र में कम-से-कम 5-10 वर्षों का अध्यापन अनुभव हो।

5.8.4 उपकरण का विवरण

5.8.4.1 'अर्धसंरचित साक्षात्कार अनुसूची

प्रस्तुत अनुसंधान के अंतर्गत व्यक्तिगत 'साक्षात्कार' लेने हेतु एक 'अर्धसंरचित साक्षात्कार अनुसूची' प्रयुक्त की गई। इस अनुसूची का इस्तेमाल कर उपर्युक्त 'प्रतिचयन विधि' के आधार पर चयनित 'स्नातक और परास्नातक शिक्षक-शिक्षा' से जुड़े 15 शिक्षाविदों से 'प्रत्यक्षत:' व 'दूरभाषिक' 'व्यक्तिगत साक्षात्कार' लेकर सूचनाएँ 'रिकार्डिंग' के ज़रिए एकत्रित कर शोध में शामिल की गई।

5.8.4.2 उपकरण का निर्माण व वैधता

उपर्युक्त उपकरण निर्माण में अनुसंधानकर्त्ता ने प्रथमत:, साहित्य समीक्षा कर अनुसंधान रिक्तियों को पहचाना। तदोपरान्त, शोध उद्देश्यों के तहत प्रश्नों का निर्माण कर उपकरण की 'विषयवस्तु या अंतर्वस्तु वैधता' वृद्धि हेतु उपकरण की उपर्युक्त 'प्रतिचयन विधि' के आधार पर चयनित 'स्नातक व परास्नातक शिक्षक-शिक्षा' से जुड़े 30 शिक्षाविदों से जाँच करवाई।

5.8.4.3 उपकरण के प्रश्नों की प्रकृति

5.8.4.3.1 'अर्धसंरचित साक्षात्कार अनुसूची' में सभी प्रश्न 'खुले मुख' वाले व गुणात्मक प्रकृति के हैं।

5.8.4.3.2 यथासंभव 'अर्धसंरचित साक्षात्कार अनुसूची' के सभी प्रश्नों की भाषा को सरल रखा गया है।

5.8.4.3.3 उपकरण के प्रश्न पाओलो फ्रेरे के 'शैक्षिक विचारों', भारतीय समकालीन परिस्थितियों, फ्रेरे की परिस्थितियों विशेष, और शिक्षा के अंतर्गत रचित हैं।

5.8.4.3.4 'अर्धसंरचित साक्षात्कार अनुसूची' में संरचित प्रश्नों के अतिरिक्त 'तत्काल रचित प्रश्नों' की सहायता से भी जानकारी संग्रहित की गई।

5.8.5 आँकड़ों के संग्रहण या एकत्रीकरण की प्रक्रिया

5.8.5.1 पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक विचारों से आबद्ध समग्र उपलब्ध साहित्य को यथासंभव शोधकर अग्रलिखित 'निर्धारित मापदण्ड' द्वारा प्राप्त सूचनाओं को वर्गीकृत किया गया।

5.8.5.2 समकालीन भारतीय परिस्थितियों से आबद्ध साहित्य विशेष को यथासंभव विश्लेषित कर अग्रलिखित 'निर्धारित मापदण्ड' द्वारा प्राप्त सूचनाओं को वर्गीकृत किया गया।

5.8.5.3 'अर्धसंरचित 'साक्षात्कार' अनुसूची' को प्रयुक्त कर 'प्रत्यक्षत:' व 'दूरभाषिक' 'व्यक्तिगत साक्षात्कार' लेकर आँकड़े एकत्रित किए गए।

5.8.6 विश्लेषण हेतु निर्धारित शोध मापदण्ड

5.8.6.1 पाओलो फ्रेरे के 'शिक्षा सम्बन्धी विचार' -

5.8.6.1.1 विभिन्न परिस्थितियों के संदर्भ में उन पक्षों अथवा विन्दुओं की पहचान व विश्लेषण करना, जिनके अंतर्गत पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक विचार रचित हुए।

(क) सामाजिक पक्ष

(ख) राजनीतिक पक्ष

(ग) आर्थिक पक्ष

5.8.6.1.2 पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक चिन्तन में सन्निहित शिक्षा के उद्देश्यों एवं पद्धतियों की पहचान व विश्लेषण करना।

5.8.6.2 समकालीन भारतीय परिस्थितियाँ -

5.8.6.2.1 शिक्षा के संदर्भ में अंतक्रियात्मक पक्षों अथवा बिन्दुओं की पहचान व विश्लेषण करना।

(क) सामाजिक पक्ष

(ख) राजनीतिक पक्ष

(ग) आर्थिक पक्ष

5.8.6.3 पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक विचार और समकालीन भारतीय परिस्थितियाँ -

5.8.6.3.1 शिक्षा के सन्दर्भ में पाओलो फ्रेरे की परिस्थितियों विशेष व समकालीन भारतीय परिस्थितियों में सन्निहित समरूपी पक्षों अथवा बिन्दुओं की पहचान व विश्लेषण करना।

(क) शैक्षिक-सामाजिक परिस्थितियाँ

(ख) शैक्षिक-राजनीतिक परिस्थितियाँ

(ग) शैक्षिक-आर्थिक परिस्थितियाँ

5.8.6.3.2 भारत की समकालीन नवीन व भिन्न परिस्थितियों के बरक्स बेहतर समझ हेतु पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक विचारों का विश्लेषण करना।

(क) शैक्षिक-सामाजिक परिस्थितियाँ

(ख) शैक्षिक-राजनीतिक परिस्थितियाँ

(ग) शैक्षिक-आर्थिक परिस्थितियाँ

5.8.7 आँकड़ों के विश्लेषण में प्रयुक्त 'तकनीक या उपागम'

प्रस्तुत अनुसंधान में अनुसंधान आँकड़ों को विवेचित करने के लिए शोधकर्त्ता ने 'गुणात्मक-विश्लेषणात्मक तकनीक' या उपागम को प्रयुक्त किया है। आँकड़ों को उपर्युक्त 'निर्धारित मापदण्ड' की सहायता से छोटे-छोटे हिस्सों में बाँटकर हिस्सों को एक-दूसरे के साथ अंतर्संबंधित कर समग्र रूप से विश्लेषित किया गया है।

5.9 शोध प्राप्तियाँ

5.9.1 पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक विचारों पर तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव

- फ्रेरे का चिंतन बचपन से ही सामाजिक-संरचना को नियतिवादी दृष्टिकोण से परे आलोचनात्मक चेतनता के अंतर्गत जानने-पहचानने की ओर अग्रसर होने लगा था, जिसकी स्पष्ट छाप उनके 'शिक्षा सम्बन्धी विचारों' पर पड़ी। उन्होंने प्रभुत्व की भूख को मानव की भोजन के प्रति भूख के बरक्स रखकर देखना शुरू कर दिया था। वह समझने लगे थे - कुछ व्यक्तियों का कम खाद्य पदार्थ प्राप्त करना व फटे-पुराने कपड़े पहनना और कुछ जनों का बेहतर खाद्य पदार्थ प्राप्त

करना व अच्छे कपड़े पहनना, मानवीय अक्षमताओं का परिणाम न होकर कुछ मानवों के प्रभुत्ववादी संगठित प्रयासों का परिणाम है।

- फ्रेरे के जीवन व शैक्षिक चिंतन पर अपनी माँ के विचारों का बड़ा असर रहा। उन्होंने अपनी माँ के जीवन से विनम्र होना व यथार्थवादी होना सीखा। उनकी माँ के व्यवहार ने उन्हें शैक्षिक दृष्टि से यह सोचने के लिए प्रेरित किया कि दूसरों को प्यार किया जाए; उनकी मदद की जाए। अपनी माँ के व्यवहार पर अनुचिंतन करने के कारण फ्रेरे यह देखने में समर्थ हो पा रहे थे कि आदर्शों संग अपने आसपास की परिस्थितियों के वास्तविक ज्ञान अथवा यथार्थ को जानने की आवश्यकता भी पड़ती है। इसलिए फ्रेरे शोषण के शिकार लोगों की शोषण-मुक्ति के लिए शिक्षाशास्त्र के माध्यम से यथार्थवादी होने को कहते हैं।

- फ्रेरे ने शिक्षा व राजनीति की आबंधकता का विश्लेषण किया और पाया कि शिक्षा शासकीय परिवेश विशेष से प्रभावित होने के संग उन क्रांतिकारी परिस्थितियों की रचना में भी सहायक है, जो उत्पीड़नकारी राजनीतिक परिस्थितियों में बदलाव लाने हेतु लोगों को आलोचनात्मक रूप से चेतन बनाती हैं। शिक्षा से जनता और शासक वर्ग के सम्बन्ध पर चिंतन करते हुए फ्रेरे (1997क) इस निष्कर्ष पर पहुँचे – "शिक्षा राजनीति है; व जिस प्रकार राजनीति वर्गीय है, शिक्षा भी है"।

- फ्रेरे के शैक्षिक विचार तत्कालीन 'राजनीतिक, आर्थिक, व सामाजिक' तीनों परिस्थितियों के प्रभाव व परिणाम से रचित हुए थे। फ्रेरे ने शोषितों की स्थिति को 'राजनीतिक, आर्थिक, व सामाजिक', तीनों पक्षों से देखने का प्रयास किया। उन्होंने स्पष्ट तौर पर यह पाया कि परिवार की आर्थिक स्थिति बच्चों के रहन-सहन व अंततः, उनकी शिक्षा को प्रभावित करती है। फ्रेरे का अपना जीवन इस बात का प्रमाण है।

- फ्रेरे ने अपने जीवन में 'नस्लवाद' जैसी सामाजिक स्थिति को गहराई से अनुभव किया। उन्होंने पाया कि 'नस्लवाद' नियति द्वारा प्रदत्त कोई

अकाट्य स्थिति नहीं है, बल्कि शोषणकारी व्यक्तियों की इच्छा का परिणाम है। यह स्थिति सदैव बनी रहती है। इसके लिए राजनीतिक व्यवस्था सुधार के प्रयासों का विरोध करती है। इसका एक प्रमुख कारण प्रभुत्व की असीमित लालसा को माना जा सकता है।

5.9.2 पाओलो फ्रेरे के 'शिक्षा सम्बन्धी विचारों' के अन्तर्गत शैक्षिक उद्देश्य

पाओलो फ्रेरे के 'शिक्षा सम्बन्धी विचारों' के अंतर्गत शैक्षिक उद्देश्यों को अधोलिखित तत्त्वों के बरक्स रखकर निर्धारित कर सकते हैं –

- शिक्षा से व्यक्ति वस्तुपरकतावादी यथार्थ की अपेक्षा परिवर्तनशील वास्तविक यथार्थ की ओर अग्रसर हो सकें।
- शिक्षा व्यक्ति को अपने आसपास की परिस्थितियों के प्रति सजग बनाए।
- शिक्षा शोषणकारी स्थितियों की पहचान व उसमें बदलाव से संबद्ध हो।
- शिक्षा "आलोचनात्मक चेतना" में वृद्धि करे।
- शिक्षा आक्रोश की बजाय 'प्रेमविहीनता की स्थिति' में बदलाव की ओर अग्रसर करे।
- शिक्षा स्थान विशेष की परिस्थितियों से सम्बद्ध हो।
- शिक्षा व्यक्ति को विश्वास व तर्क के साम्य बिन्दु के प्रति चेतन बनाए।
- शिक्षा मानवीय जटिलताओं को विश्व से अंतर्संबंधित करती हो।
- शिक्षा, विद्यार्थी और शिक्षक के संज्ञानात्मक विकास से जुड़ी हुई हो।
- शिक्षा में शिक्षक व विद्यार्थी 'सह-अनुसंधानकर्त्ता' के रूप में सतत ज्ञान का निर्माण करें।

- शिक्षा अनुभवों से जुड़े हुए ज्ञान के आविष्कार व पुनराविष्कार को बढ़ावा दे।
- शिक्षा स्पर्धा की बजाय प्रतियोगिता पूर्ण "आचरण" को बढ़ावा दे।
- शिक्षा विद्यार्थियों में 'सक्रियता' व 'सृजनात्मकता' के भाव को उत्पन्न करे।
- शिक्षा "पारस्परिक मानुषीकरण" से आबंधित हो।
- शिक्षा संप्रेषणात्मक ज्ञान पर आधारित हो।
- शिक्षा से "कर्म व अनुचिंतन में पूरकता" के भाव में वृद्धि हो, इत्यादि।

5.9.3 पाओलो फ्रेरे के 'शिक्षा सम्बन्धी विचारों' में निहित शैक्षिक पद्धति

पाओलो फ्रेरे ने शिक्षाशास्त्र सम्बन्धी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जिस पद्धति को स्वीकार किया है, उसके मूल तत्त्व हैं –

- "विवेकीकरण"
- "स्वतंत्रता के भय" से मुक्ति
- "अमानुषीकरण" से "मानुषीकरण" की ओर अग्रसरता
- 'सतत-सहभागी' मुक्ति-संघर्ष
- यथार्थवादी दृष्टिकोण
- "पालतूकरण" से मुक्ति
- "आचरणात्मक व्यवहार" की प्राप्ति
- "शिक्षा की बैंकीय अवधारणा" का बहिष्कार
- सक्रीयता में वृद्धि
- नियतिवादी दृष्टिकोण से मुक्ति

- "संकीर्णतावादी" सोच से "आमूल परिवर्तनवादी" सोच की ओर अग्रसरता
- "सच्ची उदारता" का पोषण
- 'सृजनात्मक' दृष्टिकोण
- "उप-उत्पीड़क" बनने की स्थिति के प्रति सजगता
- "स्वायत्तता और उत्तरदायित्व" अपनाना
- "संवादात्मकता"

5.9.4 समकालीन भारतीय 'शैक्षिक-सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक' परिस्थितियाँ व पाओलो फ्रेरे का शैक्षिक चिंतन

5.9.4.1 भाषाई जटिलता और शिक्षा

- भारत में काफ़ी लम्बे समय तक अच्छी शिक्षा या शिक्षा में गुणात्मकता की अवधारणा को बच्चे की शुरुआती औपचारिक व अनौपचारिक शिक्षा से अलग रखकर ही सोचा जाता रहा, क्योंकि प्रथम शिक्षा आयोग को विश्वविद्यालयी शिक्षा पर केन्द्रित किया गया, न कि प्राथमिक या प्रारंभिक शिक्षा पर; दूसरे और तीसरे शिक्षा आयोग ने भी प्राथमिक या प्रारंभिक शिक्षा को अपना लक्ष्य नहीं बनाया।
- पाओलो फ्रेरे द्वारा विवेचित "स्वतंत्रता के भय" से भारत में लाभान्वित व अलाभान्वित दोनों वर्ग ग्रसित रहते हैं –
  - ✓ लाभान्वित वर्ग इस रूप में कि भाषागत निपुणता के आधार पर प्राप्त उनकी वर्तमान लाभ की स्थिति या सत्ता उनसे कहीं छिन न जाये अथवा वे लोग जिनके पास सत्ता नहीं है, कहीं उन पर हावी न हो जाएँ।
  - ✓ अलाभान्वित वर्ग इस रूप में कि वे भाषागत वर्गीकरण के कारण जिन विकट परिस्थितियों का सामना कर रहे हैं, कहीं

भविष्य में उन्हें इससे भी बदतर परिस्थितियों का सामना न करना पड़ जाए।

- विभिन्न राज्यों में निकलने वाली सरकारी नौकरियों में दसवीं तक की शिक्षा में उस राज्य विशेष की प्रथम राज भाषा को पढ़े जाने की अनिवार्यता को सामने रखा जाता है। इसी प्रकार, निजी क्षेत्र में निकलने वाली नौकरियों में अतर्राष्ट्रीय समझी जाने वाली भाषा – अँग्रेज़ी में निपुणता को महत्त्व प्राप्त है। शिक्षा की ऐसी संरचना सोच को "पालतू" बनाती है। इसे शैक्षिक नवाचारों और अनुसंधानों के मार्ग में एक बाधा पैदा होती है।

- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के 'रफ़ ड्राफ़्ट' में प्राथमिक शिक्षा के तहत मातृभाषा को प्रमुख दर्ज़ा प्राप्त था, लेकिन अंतिम 'ड्राफ़्ट' में मातृभाषा के साथ-साथ गृहभाषा (घर में बोली जाने वाली भाषा) को महत्त्व प्रदान किया गया। ऐसा इसलिए, क्योंकि यदि, प्राथमिक शिक्षा को मातृभाषा में देना अनिवार्य बनाया जाए, तो देश के निजी विद्यालयों के सामने अस्तित्व का संकट पैदा हो जाएगा; निजी विद्यालयों के पास इस स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा देने वाले शिक्षकों की भारी कमी है। ये विद्यालय परिजनों की माँगानुरूप एक 'विशेष भाषा' में ही पढ़ाने वाले शिक्षकों की नियुक्ति करते हैं, न कि मातृभाषा में पढ़ाने वाले शिक्षकों की। उच्च शिक्षा की स्थिति भी इससे विलग नहीं है। असल में, यह स्थिति सकल घरेलू उत्पाद को बढ़ाने का एक 'फार्मूला' बन गई है, जहाँ चीज़ों का बिकना ज़रूरी माना जाता है।

5.9.4.2 'सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक' जटिलता और शिक्षा

- विभिन्न शैक्षिक प्रयासों के सफल न होने पर विश्वंभर (2006) के अनुसार "एकांगी मानसिकता से ओतप्रोत बुद्धिजीवियों और विद्वानों ने शिक्षा की गुणवत्ता सम्बन्धी परिभाषाओं में परिवर्तन करना आरंभ

कर दिया है। उनके लिए पढ़ना-लिखना आना और मूल गणितीय संक्रियाएँ कर पाने की क्षमता ही गुणवत्ता का पर्याय हैं"।

- मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा प्रकाशित शिक्षा सम्बन्धी वर्ष 2013-2014 तक के अनुमानित आँकड़ों के अनुसार प्राथमिक, अवर प्राथमिक, माध्यमिक, और उच्च माध्यमिक स्तर पर 'स्कूल' छोड़ने वाले बच्चों का प्रतिशत क्रमश: 4.34, 3.77, 17.86, व 1.54 है। इसमें भी अनुसूचित जातियों व जनजातियों की स्थिति खराब है। अनुसूचित जातियों के सम्बन्ध में यह प्रतिशत क्रमश: 4.14, 4.38, 18.66, व 1.81 है; और अनुसूचित जनजातियों के सम्बन्ध में यह प्रतिशत क्रमश: 7.98, 8.43, 27.20, व 2.94 है। प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर लड़कियों की स्थिति लड़कों के बरक्स थोड़ी ही बेहतर है, परन्तु अवर माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्तर पर ऐसा नहीं है। अनुसूचित जाति में अवर प्राथमिक स्तर पर लड़कियों का 'ड्रॉप-आउट' लड़कों की तुलना में कुल 'ड्रॉप-आउट' से भी बहुत ज़्यादा है; यही स्थिति अगले दोनों स्तरों पर लड़कों की है। इसी प्रकार अनुसूचित जनजाति में प्राथमिक और अवर प्राथमिक स्तर पर लड़कियों का 'ड्रॉप-आउट' लड़कों के बरक्स अधिक है; व अगले दोनों स्तरों पर लड़कों का 'ड्रॉप-आउट' लड़कियों से ज़्यादा है। अन्य शब्दों में, जैसे-जैसे विद्यार्थी अवर प्राथमिक स्तर की तरफ़ बढ़ते हैं, वैसे ही अनुसूचित जाति व जनजाति की लड़कियों में लड़कों की तुलना में 'ड्रॉप-आउट' बढ़ता जाता है; और जैसे-जैसे विद्यार्थी अवर प्राथमिक स्तर से आगे बढ़ते हैं, वैसे-वैसे अनुसूचित जाति व जनजाति के लड़कों में लड़कियों की तुलना में 'ड्रॉप-आउट' बढ़ने लगता है।
- मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा प्रकाशित शिक्षा सम्बन्धी वर्ष 2014-2015 तक के अनुमानित आँकड़ों के अनुसार प्राथमिक, अवर प्राथमिक, व माध्यमिक स्तर पर 'स्कूल' छोड़ने वाले बच्चों का प्रतिशत क्रमश: 4.13, 4.03, व 17.06 है। इसमें भी पिछले वर्ष की ही तरह अनुसूचित जातियों व जनजातियों की स्थिति खराब है।

अनुसूचित जातियों के सम्बन्ध में प्राथमिक, अवर प्राथमिक, माध्यमिक, और उच्च माध्यमिक स्तर पर 'स्कूल' छोड़ने वाले बच्चों का प्रतिशत क्रमश: 4.46, 5.51, 19.36, व 3.22 है; और अनुसूचित जनजातियों के सम्बन्ध में प्राथमिक, अवर प्राथमिक, व माध्यमिक स्तर पर 'स्कूल' छोड़ने वाले बच्चों का प्रतिशत क्रमश: 6.93, 8.59, व 24.68 है। आँकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि अवर प्राथमिक स्तर पर कुल स्थिति पिछले वर्ष की तुलना में खराब हुई है। अनुसूचित जातियों के संदर्भ में प्राथमिक, अवर प्राथमिक, माध्यमिक, और उच्च माध्यमिक स्तर पर 'स्कूल' छोड़ने वाले बच्चों का प्रतिशत पहले की अपेक्षा और बढ़ गया है। अनुसूचित जनजातियों के संदर्भ में कुछ सुधार अवश्य हुआ है, परन्तु अवर प्राथमिक स्तर पर 'स्कूल' छोड़ने वाले अनुसूचित जनजाति के बच्चों का प्रतिशत पहले की तुलना में बढ़ा है। इसके अतिरिक्त, यह तथ्य सदैव ही चिंता का विषय रहा है कि अनुसूचित जातियों व जनजातियों के विद्यार्थियों में बीच में 'स्कूल' छोड़कर चले जाने वाले बच्चों का प्रतिशत उपर्युक्त आँकड़ों के बरक्स शिक्षा के हर स्तर पर 'स्कूल' छोड़ने वाले बच्चों के कुल प्रतिशत से हमेशा ही अधिक रहा है या उसके आसपास है। स्पष्ट है - पिछले वर्ष की तुलना में अवर प्राथमिक स्तर को छोड़कर बाकी स्तरों पर कुल लड़कों व लड़कियों की स्थिति में थोड़ा सुधार हुआ है, परन्तु अनुसूचित जाति में लड़कों व लड़कियों की स्थिति पहले से अधिक बदतर हुई है। अनुसूचित जनजाति के संदर्भ में अवर माध्यमिक स्तर को छोड़कर प्राथमिक व माध्यमिक स्तर पर लड़कों में 'ड्रॉप-आउट' थोड़ा कम हुआ है; और तीनों स्तरों पर लड़कियों की स्थिति पिछले वर्ष की तुलना में थोड़ी बेहतर हुई है, परन्तु उपर्युक्त आँकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि पिछले वर्ष की ही तरह जैसे-जैसे विद्यार्थी अवर प्राथमिक स्तर की तरफ़ बढ़ते हैं, वैसे ही अनुसूचित जाति व जनजाति की लड़कियों में लड़कों की तुलना में 'ड्रॉप-आउट' बढ़ता जाता है; और जैसे-जैसे विद्यार्थी अवर प्राथमिक स्तर से आगे बढ़ते

हैं, वैसे-वैसे अनुसूचित जाति व जनजाति के लड़कों में लड़कियों के बरक्स 'ड्रॉप-आउट' बढ़ने लगता है।

- बच्चों द्वारा बीच में 'स्कूल' छोड़ने के कारणों में प्रमुख कारण अधोलोखित हैं –
  - ✓ बच्चे में अध्ययनगत रुचि न होना
  - ✓ वित्तीय बाधाएँ
  - ✓ घरेलू गतिविधियों में संलग्नता
  - ✓ आर्थिक गतिविधियों में संलग्नता
  - ✓ वाँछित स्तर/ कक्षा को पास कर लेना
  - ✓ अध्ययन के प्रति असमर्थता
  - ✓ विद्यालय का दूर होना
  - ✓ लड़कियों का विवाह हो जाना
  - ✓ अन्य कारण - शिक्षा संस्थान की समयावधि उपयुक्त न होना, प्रयुक्त भाषा/ माध्यम भाषा से अनजान होना, शिक्षकों की अपर्याप्त संख्या, शिक्षकों की गुणवत्ता का संतोषजनक न होना, विद्यालय का अमित्रतापूर्ण परिवेश, प्रतियोगी व अन्य परीक्षाओं हेतु तैयारी करना, लड़कियों के लिए ड्रॉप-आउट के अन्य कारण: महिला शिक्षकों की उपलब्धता का न होना, लड़कियों के लिए शौचालय का न होना
- मूलत:, भारतीय शिक्षा "बैंकीय शिक्षा" रूपी साम्राज्यवादी ढाँचे को ही दर्शाती है। 'भारतीय शिक्षा व्यवस्था', अपने वर्तमान ढाँचे में, आज भी 'औपनिवेशिक मानसिकता' को आगे बढ़ा रही है। तभी, शिक्षा में गुणात्मकता की समझ के लिए फ्रेरे द्वारा सुझाई गई "संवादात्मक शिक्षा" या "समस्या-उठाऊ शिक्षा" के ज़रिए उनके द्वारा प्रतिपादित "विवेकीकरण" की प्रक्रिया को अपनाना होगा, ताकि ऐसा शिक्षित वर्ग तैयार हो सके, जो खराब स्थानीय जटिलताओं को पहचानकर

उन्हें ठीक करने की ओर अग्रसर हो सके; और इसका लाभ समाज के सभी वर्गों तक पहुँचे।

- कोठारी आयोग (1964-66) ने सिफ़ारिश की थी कि शिक्षा के लिए राष्ट्रीय आय का कम-से-कम 6% भाग आबंटित करने हेतु गंभीरतापूर्ण प्रयास करने चाहिए। पहली से लेकर ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में प्रत्येक पंचवर्षीय योजना के अंत में, यानि वर्ष 1956, 1961, 1966, 1974, 1979, 1985, 1990, 1997, 2002, 2007, व 2012 में कुल सकल घरेलू उत्पाद के संदर्भ में यह प्रतिशत क्रमश: 1.15, 1.48, 1.69, 2.15, 3.00, 3.35, 3.93, 3.53, 3.68, 3.48, व 3.82 रहा है। बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012-2017) में यह प्रतिशत वर्ष 2013 व 2014 के अंत में क्रमश: 3.70 व 3.84 रहा है। यह अनुमानित था - वर्ष 2015 व 2016 के अंत में यह प्रतिशत क्रमश: 4.01 व 4.07 रहेगा, परन्तु भारत सरकार (2019) में वर्णित "वित्त मंत्रालय के आर्थिक सर्वेक्षण 2017-18 के अनुसार वर्ष 2017-18 में शिक्षा पर सरकारी खर्च कुल सकल घरेलू उत्पाद के बरक्स 2.7% हो गया है। यह केन्द्र व राज्य सरकारों के कुल सरकारी खर्चे का 10% था"। इसके अतिरिक्त, "पिछले लगभग 5 सालों के मध्य भारत में शिक्षा पर सरकारी निवेश कुल सकल घरेलू उत्पाद के 3% के आसपास रहा है"। प्रारूप राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019 में "वर्तमान के सालाना 10% सरकारी खर्च को अगले 10 वर्षों में बढ़ाकर 20% करने का लक्ष्य सोचा गया है", अर्थात् शिक्षा पर सरकारी खर्च को अगले दस वर्षों में कुल सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 5.4% करने का लक्ष्य सोचा गया है, यानि अगले दस वर्षों में भी शिक्षा पर किया जाने वाला खर्च कुल सकल घरेलू उत्पाद का 6% नहीं हो सकेगा।
- मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा प्रकाशित आँकड़ों के अनुसार प्रारंभिक शिक्षा पर किया जाने वाला खर्च कभी भी शिक्षा के सभी स्तरों के लिए आबंटित किए गए कुल वित्त के आधे से ज़्यादा नहीं रहा। इसी प्रकार माध्यमिक स्तर पर यह खर्च सभी स्तरों पर हुये या

किए जाने वाले कुल खर्च का क्रमश: 25.62, 24.43, 24.68, व 24.38 प्रतिशत है। मध्यमिक स्तर पर ही बच्चों में सबसे अधिक 'ड्रॉप-आउट' देखने में आता है, परन्तु फिर भी माध्यमिक स्तर पर वित्त का आबंटन बढ़ाया नहीं जा रहा है। इसे पाओलो फ्रेरे द्वारा सुझाई गई "चुप्पी की संस्कृति" के तहत समझना होगा, जिसमें व्यक्ति खराब हालातों को बदलने की अपेक्षा अकर्मण्य होकर यथास्तितिवादी बन जाता है; और सत्ता से समय-समय मिलने वाली "मिथ्या उदारता" को ही अपना हक मान लेता है।

- 1990 में थाईलैंड (जोमतियन) में 'सबके लिए शिक्षा' सम्मेलन में गरीबी को हटाए बिना जीवन में गुणात्मक सुधार हेतु 'प्रौढ़ साक्षरता' को एक शक्तिशाली औज़ार के रूप में पेश किया गया; और आँकड़ों व तर्कों को गड्डमड्ड करके यह निष्कर्ष निकाला गया - यदि, साक्षरता दर बढ़ाई जाएगी, तो व्यक्तियों का जीवन स्तर सुधरेगा।

- भारत में विश्व बैंक की मदद से वर्ष 1994 में 'जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम' लागू किया गया। वर्ष 1993 में कुल सकल घरेलू उत्पाद के संदर्भ में शिक्षा हेतु वित्त आबंटन का प्रतिशत 3.72 था, तो वहीं वर्ष 1994 में यह प्रतिशत घट कर 3.62 हो गया, अर्थात् विश्व बैंक से आर्थिक सहयोग प्राप्ति उपरान्त भी शिक्षा वित्त आबंटन में बढ़ौतरी नहीं की गई। इसके बाद वर्ष 2000 व 2001 में शिक्षा खर्च का प्रतिशत क्रमश: 4.05 व 4.14 हुआ, परन्तु इसके बाद अगले 10 सालों तक यह प्रतिशत 4 के आँकड़े को छू नहीं पाया। वर्ष 2011 में जाकर ही यह प्रतिशत 4.05 हो सका। भारत सरकार (2019) के अनुसार वर्तमान में भारत अपने कुल सकल घरेलू उत्पाद का मुश्किल से 2.7% ही शिक्षा पर खर्च करता है। इसके अतिरिक्त, स्थिति तब और जटिल हो जाती है, जब वित्तीय प्रणाली में गड़बड़ी को सुधारा नहीं जाता अथवा 'आलोचनात्मक चेतनता' से दूरी बनाकर "स्वायत्तता और उत्तरदायित्व" को अपनाने से बचा जाता है; और 'नियतिवादी दृष्टिकोण' को अपना लिया जाता है।

- भारत सरकार (2019) के अनुसार भारत में "सार्वजनिक क्षेत्र सही समय पर पैसा भुगतान न करने की समस्या से ग्रस्त है। उदाहरण के लिए - महाविद्यालय के शिक्षकों का वेतन कई राज्यों में महीनों बाद मिलता है; 'स्कूलों' में मध्याह्न भोजन हेतु पैसा देर से आता है; विद्यालयों के रख-रखाव का खर्च लंबे अंतराल के बाद भेजा जाता है। अक्सर धनराशि उपयोगकर्त्ता को साल के अंतिम महीनों में आबंटित होती है। इससे या तो धनराशि का उचित उपयोग कम वक्त बचा होने के कारण से नहीं होता (जैसे कि उचित अधिगम सामग्री का चुनाव और खरीद करने के लिए और गुणवत्तापूर्ण शिक्षक प्रशिक्षण के लिए) या फिर यह होता है कि पैसा सिर्फ़ खर्च करने के लिए खर्च कर दिया जाता है, बिना किसी वास्तविक शैक्षिक प्रभाव के। ये समस्या आगे चलकर और बढ़ जाती है, क्योंकि अगले वर्ष हेतु बजट आबंटन वर्तमान वर्ष के वित्त उपयोग पर निर्भर रहता है"। वस्तुतः, इसके लिए "आचरण" न करने की प्रविति ज़िम्मेदार है, क्योंकि जब व्यक्ति के "चिंतन और कर्म में पूरकता" का अभाव होगा, तो व्यक्ति न तो 'सामाजिक कल्याण' को अपनी सोच के केन्द्र में रखने का प्रयास कर पाएगा और न ही सही समय पर सही निर्णय कर पाएगा। फ्रेरे इसे 'अकर्मण्यता की स्थिति' में उलझने के रूप में भी विश्लेषित करते थे।

- सद्गोपाल (2003) के अनुसार संविधान के 86वें संशोधन में चार प्रमुख कमियाँ हैं – "सर्वप्रथम - संविधान के पूर्व अनुच्छेद 45 में 0-6 आयु-समूह के बच्चों को मिले पोषण, स्वास्थ्य, सुरक्षा व पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के बुनियादी हक को इस संशोधन ने खत्म कर दिया है। दूसरा - संशोधन के अनुसार 6-14 आयु-समूह के बच्चों को शिक्षा उस रीति से दी जाएगी, जिसका निर्धारण राज्य कानूनन करेगा। यानि, समतामूलक गुणवत्ता वाली शिक्षा की जगह राज्य ने गरीब बच्चों को घटिया दर्ज़े की शिक्षा – वैकल्पिक शाला, शिक्षा 'गारंटी स्कीम', 'पैरा' शिक्षक, प्रौढ़ साक्षरता आदि देने का फैसला कर लिया है। तीसरा – इस संशोधन में एक नया उप-अनुच्छेद (51(क)(ट)) जोड़ा

गया है। इसके ज़रिए राज्य ने 6-14 आयु-समूह के बच्चों को शिक्षित करने की जवाबदेही अपने कंधों से सरकाकर माता-पिता के कंधों पर डाल दी है। संशोधन से जुड़ा चौथा सवाल उसके द्वारा किए गए वित्तीय प्रावधान को लेकर है। इसमें सभी बच्चों को शिक्षित करने के लिए अगले दस वर्षों तक हर साल 9800 करोड़ रुपये की अतिरिक्त राशि का इंतज़ाम करने का वादा किया गया है, लेकिन केंद्रीय सरकार द्वारा गठित 'तापस मजूमदार समिति' के वर्ष 1999 में प्रस्तुत प्रतिवेदन के अनुसार देश के जो आधे बच्चे स्कूली शिक्षा से बाहर हैं, उन्हें स्कूली शिक्षा की (घटिया गुणवत्ता वाली समानान्तर धाराओं की नहीं) सुविधा देने के लिए अगले दस सालों तक औसतन 14000 करोड़ रुपये प्रति वर्ष की दर से अतिरिक्त राशि उपलब्ध करानी होगी। यह रकम भारत के वर्ष 2001-02 के कुल सकल राष्ट्रीय उत्पाद का मात्र 0.78% है। यानि, देश की 100 रुपये की वार्षिक आय में से केवल 78 पैसे। इसकी तुलना में 86वें संविधान संशोधन के तहत जिस राशि का प्रावधान किया गया है, वह भारत के सकल राष्ट्रीय उत्पाद का 0.35% है, यानि उसके आधे से भी कम!, लेकिन वर्ष 2003-04 में जब प्रारम्भिक शिक्षा (कक्षा 1-8 की शिक्षा) के मद में अतिरिक्त राशि के आबंटन का सवाल आया, तो मात्र 728 करोड़ रुपये की अतिरिक्त रकम दी गई, जो कुल सकल राष्ट्रीय उत्पाद का 0.04% था, यानि देश की 100 रुपये की वार्षिक आय में से 5 पैसे भी नहीं"। अत:, यह मानना पड़ेगा कि भारत में सरकार की सोच 'मुफ़्त यानि सम्यक गुणात्मकता से कम', "मिथ्या उदारता", और सोच को "पालतू" बनाने पर केन्द्रित होने लगी है।

5.9.4.3 शिक्षकों की स्थिति की जटिलता और शिक्षा

भारत में अस्थाई शिक्षकों की स्थिति अग्रलिखित बिन्दुओं के तहत स्पष्ट है -

- शिक्षकों को संविदा अवधि पूरी होने से पहले ही नौकरी से निकाल देना
- शिक्षकों को अधिक वेतन पर हस्ताक्षर करवाकर कम वेतन देना
- शिक्षकों से अनावश्यक गैर शैक्षणिक कार्य करवाना
- शिक्षकों के कार्यभार में अनावश्यक वृद्धि होना
- शिक्षकों द्वारा दूसरों के सामने प्रबंधकों की ओर से अपमानजनक व्यवहार का सामना करना, इत्यादि।

इन स्थितियों में सुधार के लिए शिक्षकों और प्रबंधकों को "विवेकीकरण" प्रक्रिया का हिस्सा बनना होगा, परन्तु शिक्षक अपनी उत्पीड़नकारी स्थितियों में बदलाव के वास्ते इसलिए प्रयास नहीं करते, क्योंकि वे सभी "स्वतंत्रता के भय" से ग्रसित हैं, अर्थात् उन्हें यह भय है - कहीं सुधार हेतु आवाज़ उठाने से उनकी स्थितियाँ और भी बदतर न हो जाएँ।

5.9.4.4 गरीबी सम्बन्धी जटिलता व शिक्षा

- वर्तमान में भारत में विद्यालयी शिक्षा में कुल 'ड्रॉप-आउट' लड़कों में से लगभग 65.10% लड़के और कुल 'ड्रॉप-आउट' लड़कियों में से लगभग 73.30% लड़कियाँ गरीबी से जुड़े हुये कारणों की वजह से विद्यालयी शिक्षा पूर्ण करने से पूर्व ही 'ड्रॉप-आउट' हो जाते हैं। गरीबी से जुड़ी वजहों से विद्यालयी शिक्षा में लड़कियों का 'ड्रॉप-आउट' प्रतिशत लड़कों की तुलना में अधिक है।
- अधोलिखित कारण भी गरीब बच्चों की शिक्षा प्राप्ति में बाधक हैं –
    1. गरीब वर्ग के बच्चों और उच्च वर्ग के बच्चों के बीच सांस्कृतिक अलगाव की उपस्थिति
    2. झूठे गरीबी सम्बन्धी प्रमाणपत्रों से प्रवेश प्राप्ति के मामलों का बढ़ना

3. शिक्षकों में इन बच्चों की शैक्षिक आवश्यकताओं के प्रति अपूर्ण समझ
4. प्रोत्साहन की कमी
5. मूल्यांकन प्रणाली में ऐसे बच्चों की काबिलीयत को जगह न मिल पाना
6. 'मध्याह्न भोजन योजना' का ठीक प्रकार से कार्यान्वित न हो पाना
7. निरीक्षण प्रणाली की अपर्याप्तता
8. 'जातिगत व भाषागत भेदभाव' का होना, इत्यादि।

उपर्युक्त कारणों रूपी अनुगूँजों को पाओलो फ्रेरे के 'शैक्षिक विचारों' में भी महसूस कर सकते हैं। वह भूख व गरीबी को प्रभुत्वशाली लोगों द्वारा पैदा की गई स्थिति मानते थे, जिसे ये लोग अपनी लाभ की स्थिति को चिरस्थाई बनाने के लिए "मिथ्या उदारता" दिखाकर प्रयोग करते रहते हैं। तभी ओम्नी (1994) के अनुसार फ्रेरे ने "ग्यारह वर्ष की आयु में यह शपथ ली कि - दुनिया से भूख को कम करने के लिए मैं हर संभव उपाय करूँगा"।

5.9.4.5 शिक्षक-शिक्षा की जटिलता और शिक्षा

- भारत सरकार (2019) के अनुसार विभिन्न वैधानिक निकाय होने के बावजूद भारत में वस्तुस्थिति यह है - "आज के समय में शिक्षक-शिक्षा गंभीर रूप से पिछड़ी हुई है; और संकट में है। हमारे देश में लगभग 17000 शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान हैं; और उनमें से लगभग 92% निजी स्वामित्व वाले हैं। अलग-अलग गहन अध्ययनों, जिनमें उच्च न्यायालय द्वारा गठित 'जस्टिस जे. एस. वर्मा कमीशन 2012' का अध्ययन शामिल है, दर्शाते हैं कि इन संस्थानों की बड़ी संख्या अच्छी शिक्षा उपलब्ध कराने हेतु प्रयास भी नहीं करती। इसके बजाय, ये व्यावसायिक दुकानों की तरह काम करती हैं, जहाँ न्यूनतम पाठ्यक्रम व कार्यक्रम की आवश्यकताओं की पूर्ती नहीं की जाती; व यहाँ सिर्फ़ डिग्रियों की खरीद-फ़रोख्त होती है। इसके अलावा, बचे हुए

नेक इरादों वाले शिक्षक-शिक्षा संस्थानों में अधिकतर ऐसे हैं, जहाँ केवल शिक्षक-शिक्षा ही होती है, परन्तु इनके पास अच्छी शिक्षक-शिक्षा, जिसमें विभिन्न विषयों की विषयवस्तु, शिक्षणशास्त्र और अन्य व्यवहारिक कौशल मुहैया कराने की काबिलीयत नहीं है"।

- पूर्व में खराब गुणवत्ता वाले शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थानों को भी मान्यता मिलने के पीछे अधोलोखित कारण देखे गए –
  - ✓ निरीक्षण से पूर्व ही इन संस्थानों को यह पता चल जाना कि निरीक्षण किस दिन होगा; परिणामस्वरूप, ऐसे संस्थानों द्वारा एक या दो दिनों के लिए किसी संस्था की 'बिल्डिंग' या स्वयं की 'बिल्डिंग' में मूलभूत सुविधाओं की व्यवस्था दिखा देना
  - ✓ निरीक्षण दस्ते के सभी सदस्यों का प्रतिनियुक्ति पर होना
  - ✓ निरीक्षण दस्ते के सदस्यों का गैर अनुभवी होना
  - ✓ निरीक्षण दस्ते के सदस्यों का गुणवत्ता के मानकों की बजाय अन्य बिन्दुओं पर 'फ़ोकस' करना
  - ✓ एक-दो दिनों के लिए संस्थान द्वारा शिक्षकों व कर्मचारियों की उपस्थिति को दिखा देना; व उपस्थिति 'रजिस्टर' व अन्य दस्तावेज़ों को सही से बना लेना
  - ✓ अनुपस्थित्त शिक्षकों को 'अध्ययन अवकाश', 'मातृ अवकाश' या 'पितृ अवकाश' पर दर्शा देना
  - ✓ संबंधित शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान द्वारा निरीक्षण दस्ते के सदस्य या सदस्यों को अन्य 'अवाँछनीय व्यक्तिगत लाभ' प्रदान करना, इत्यादि।
- शिक्षक-शिक्षा में नवीन पाठ्यचर्या को लागू करने से पहले किए गए अनुसंधानों में अग्रलिखित पर ध्यान नहीं दिया गया –
  - ✓ दो व चार वर्षीय शिक्षक-शिक्षा कार्यकर्मों में विद्यालयी विषयों के शिक्षण का कार्य शिक्षा विभाग से जुड़े व्यक्ति नहीं कर रहे

थे, बल्कि इन विषयों को 'कला व मानविकी' विभाग और 'गणित व विज्ञान' विभाग से जुड़े व्यक्ति पढ़ा रहे थे, जो कि स्वयं शिक्षक-शिक्षा उपाधि धारक नहीं थे।

- ✓ इन संस्थानों में वही बच्चे पढ़ने को आ रहे थे, जिनका प्रवेश या तो एक वर्ष वाले बी.एड. 'कोर्स' में नहीं हो सका था या जो विज्ञान, कला, व प्रबंधन के अन्य विषयों में प्रवेश नहीं ले पाए थे।
- ✓ दो व चार वर्षीय शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रमों की पाठ्यचर्याओं का अद्यतन न होना, इत्यादि।

- वर्तमान समय में शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम के क्रियान्वयन में आने वाली गुणात्मकता सम्बन्धी दिक्कतें अग्रलिखित हैं –
  - ✓ बी.एड. पाठ्यक्रम में 'विद्यालयी अनुभव' प्राप्त करने के दिनों की संख्या बढ़ने से शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थानों को विद्यालयों के साथ सामंजस्य स्थापित करने में दिक्कतें आ रही हैं; या तो विद्यालय अपने यहाँ प्रशिक्षण व अनुभव प्राप्ति की अनुमति देने से हिचकिचाने लगे हैं या बी.एड. प्रशिक्षुओं से अपने विद्यालय के अन्य गैर शैक्षणिक कार्य करवाने की शर्त रखने लगे हैं।
  - ✓ शिक्षण अभ्यास के दौरान कई शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षु विद्यालय जाकर एक भी कक्षा में शिक्षण अभ्यास नहीं करते और सारा समय शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम से जुड़े या विद्यालय से जुड़े अभिहस्तांकन ही करते रहते हैं।
  - ✓ संबंधित विश्वविद्यालयों द्वारा 'स्कूली अनुभव कार्यक्रम' हेतु सम्बद्ध संस्थानों की औचक जाँच-परख करने के लिए 'टीम' की व्यवस्था करने हेतु अनदेखी-भरा भाव रखना।
  - ✓ अव्यवहारिक व अनावश्यक अभिहस्तांकनों में वृद्धि होना।

- ✓ संस्थानों में दो वर्षीय पाठ्यक्रमों की बजाय 3, 4 या 5 वर्षीय एकीकृत पाठ्यक्रमों की प्राप्ति की लालसा में वृद्धि होना, ताकि उन्हें शिक्षक-शिक्षा दो वर्षीय कार्यक्रम के दोनों वर्षों के 200 विद्यार्थियों की बजाय क्रमश: 300, 400 या 500 विद्यार्थियों को अपने यहाँ दाखिल करने का मौका मिल जाए; और फलस्वरूप, उनका लाभ अर्जन और भी बढ़ जाए।
- ✓ शिक्षक-शिक्षा पाठ्यक्रमों की समयावधि बढ़ने से 'यूजीसी-नेट' धारक शिक्षकों की कमी में वृद्धि होना
- ✓ शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थानों में पहले से पढ़ा रहे शिक्षकों का नवीन पाठ्यचर्या से तालमेल न बिठा पाना।
- ✓ ललित कलाओं, अभिनय कलाओं, और शारीरिक शिक्षा से जुड़े शिक्षकों को अल्पावधि के लिए नियुक्त करना, इत्यादि।
- ✓ शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थानों में आंतरिक मूल्यांकन में विद्यार्थियों के साथ जाति, लैंगिकता, भाषा व अन्य आधारों पर भेदभाव की सदैव परिपाटी रही है। कई दफ़ा तो आंतरिक मूल्यांकन विषय विशेष शिक्षक द्वारा किया ही नहीं जाता।

- भारत में शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थानों में शिक्षक नियुक्तियों में निम्न रूप में प्रबंधकों का मनमानापन देखा जाता है –
  - ✓ शिक्षक नियुक्ति की वाँछनीय प्रक्रिया को कई शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान इस रूप में पूरा कर देते हैं कि वे अपने पास रखे पुराने आवेदनों को ही आवेदकों की ओर से झूठे हस्ताक्षर कर संबंधित विश्वविद्यालय को डाक के ज़रिये प्रेषित कर देते हैं, ताकि 'साक्षात्कार' 'पैनल' गठित करने या शिक्षक नियुक्ति करने की स्वीकृति मिल सके।
  - ✓ निजी शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान जिन भी शिक्षकों को अपने यहाँ चयनित करते हैं, उनके साथ वे पहले से ही वेतन सम्बन्धी मौखिक और लिखित समझौते कर लेते हैं। कई दफ़ा

तो, वे चयनित शिक्षक विशेष को मूल कुल वेतन का एक-तिहाई या एक-चौथाई वेतन ही प्रदान करते हैं, परन्तु कागज़ी कार्रवाही को इस तरह पूरा करते हैं कि कानूनी तौर पर वे जाँच में पकड़े न जाएँ। यह भी होने लगा है कि चयनित शिक्षक विशेष को चयन पत्र की मूल प्रति पर हस्ताक्षर करवा मूल प्रतिलिपि दी ही नहीं जाती।

- ✓ अधिकतर निजी शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान असल में शिक्षकों से पूरे वेतन पर हस्ताक्षर करा या 'ब्लैंक चैक बुक' पर हस्ताक्षर करवा उनको कम वेतन देते हैं या उनसे एक निश्चित मात्रा में वेतन वापिस करने को कह देते हैं। कई दफ़ा तो इन शिक्षकों को संस्थान द्वारा उनके नाम पर खोले गए खाते की संख्या और बैंक का नाम तक पता नहीं होता, क्योंकि संस्थान से जुड़ा बैंक इन शिक्षकों से पहले ही लिखवा लेता है कि उनके खाते का सारा लेन-देन संस्थान द्वारा होगा। ऐसे में बैंक शिक्षकों की पास बुक, चैक बुक व डैबिट कार्ड, इत्यादि भी शिक्षकों को देने की बजाय संस्थान को ही दे देता है। इसके अलावा शिक्षकों के खातों में कितने पैसे डाले गए या निकाले गए, इसका रिकार्ड भी बैंक एसएमएस के ज़रिए शिक्षकों के मोबाइल नंबर पर न भेजकर संस्थान के मोबाइल नंबर पर भेजते हैं। कई शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान तो संबंधित विश्वविद्यालय की ओर से होने वाले निरीक्षण से एक या दो दिन पहले ही शिक्षकों को यह बताते हैं कि उनका कुल वास्तविक वेतन कितना है। असल में, यह वास्तविक वेतन शिक्षकों को मिलने वाले वेतन का लगभग तीन या चार गुना होता है।

- संबंधित विश्वविद्यालय, एनसीटीई व एनएएसी, इत्यादि निकायों और उनके द्वारा प्रतिनियुक्ति पर भेजे गए निरीक्षण दल के शिक्षक व अधिकारी यह मानकर चल रहे हैं - निजी शिक्षक-शिक्षा संस्थानों में शिक्षक यदि कुल अपेक्षित वेतन का एक-तिहाई या एक-चौथाई भी

प्राप्त कर लें, तो भी वह शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षुओं को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान कर सकते हैं; और उनको विद्यालयों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देने के लिए मना भी सकते हैं। इसके अतिरिक्त, ये निरीक्षण दस्ते चूँकि, औचक निरीक्षण दस्ते नहीं होते, इसलिए यह पाया गया है - संबंधित संस्थान इनके आने से पहले ही उपस्थिति 'रजिस्टर' को झूठे हस्ताक्षरों से पूरा कर लेते हैं; और संबंधित शिक्षकों को दर्शा देते हैं। वस्तुतः, शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान द्वारा अधिसंरचना सम्बन्धी वाँछनीय मानकों पर खरा उतरने के पश्चात् निरीक्षण दस्ते द्वारा पूछे जाने वाले सवाल मात्र औपचारिकता होते हैं।

- शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थानों में अनुसंधान पर्चा प्रस्तुतीकरण में गुणवत्ता अधोलिखित बिन्दुओं से प्रभावित हो रही है –
  - ✓ अनुसंधान पर्चों का वाँछित मानक स्तर के अनुरूप न होना
  - ✓ 'मिथ्या प्रतिभागियों' द्वारा पर्चा प्रस्तुतीकरण सम्बन्धी प्रमाणपत्र प्राप्त कर लेना
  - ✓ संस्थान द्वारा संबंधित सरकारी या गैर सरकारी संस्था से आर्थिक सहायता लेने हेतु कागज़ी कार्रवाही को मिथ्या गणनाओं से पूरा करना
  - ✓ नौकरियों में यूजीसी द्वारा वाँछित अंक प्राप्त करने को लक्षित कर व्यक्तियों द्वारा पर्चा प्रस्तुतीकरण करना
  - ✓ वैब गोष्ठी, सम्मेलन, कार्यशाला, कार्यक्रम, इत्यादि के लिए अपने संग ऐसे व्यक्ति हेतु भी पृष्ठपोषण पत्रक भरकर प्रमाणपत्र प्राप्त कर लेना, जिसने वैब गोष्ठी में भाग ही नहीं लिया था
  - ✓ शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान का निरीक्षण करने हेतु आने वाले दस्ते से जुड़े व्यक्तियों को संस्थान विशेष द्वारा विभिन्न गोष्ठियों, सम्मेलनों, कार्यशालाओं, कार्यक्रमों, इत्यादि में मुख्य वक्ता या अतिथि बनाकर, उन्हें इस बात का पारितोषिक प्रदान

करना कि उन्होंने पूर्व में किए गए निरीक्षण में संस्थान को 'क्लीन चिट' प्रदान करने में सहयोग दिया था, इत्यादि।

- भारत में शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम की सम्पूर्ण संरचना में विभिन्न स्तरों पर व्यापक बदलाव करने होंगे, ताकि विद्यालयी शिक्षा और शिक्षक-शिक्षा पुनः: समाज रूपान्तरण से जुड़ सके; और व्यक्तियों में अनुसंधान सम्बन्धी दृष्टिकोण का विकास कर सके। पाओलो फ्रेरे इस तरह का बदलाव करने की सोच को "आलोचनात्मक चेतना", "विवेकीकरण", "आचरण", 'यथार्थवाद', "आमूल परिवर्तनवाद", इत्यादि अवधारणाओं के अंतर्गत रखकर विवेचित करते थे।

5.10 शोध निष्कर्ष

किसी देश की ख़ास परिस्थिति एवं परिवेश का प्रभाव वहाँ के मानव के वैयक्तिक एवँ सामाजिक विकास पर पड़ता है। पाओलो फ्रेरे को ब्राज़ील में हुए क्रान्तिकारी जन आन्दोलनों ने प्रभावित किया। उस दौर में वामपंथी शक्तियों की बढ़ती भूमिका के परिणामस्वरूप अन्य लेटिन अमेरिकी बुद्धिजीवियों की भाँति पाओलो फ्रेरे भी 'मार्क्सवाद' की ओर आकृष्ट हुए; और उसे अपनाया। उन्होंने अपने बचपन में व अपने काम 'राष्ट्रीय साक्षरता अभियान' के दौरान उत्पीड़न के विराट रूप को समीप से देखा एवं उसका विश्लेषण किया, जिसका परिणाम उनके शिक्षा-दर्शन में स्पष्ट झलकता है। उनका शिक्षा-दर्शन 'तीसरी दुनिया' अथवा विकासशील दुनिया के वंचितों की शिक्षा एवं सामाजिक स्थिति का द्योतक है। शिक्षा और राजनीति के सम्बन्ध में विश्लेषण करते हुए फ्रेरे (1997क) इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि "शिक्षा राजनीति है; व जिस प्रकार राजनीति वर्गीय है, शिक्षा भी है"। वे मानते हैं कि उत्पीड़कों एवं उत्पीड़ितों की शिक्षा पूर्णतः भिन्न होनी चाहिए। वे उत्पीड़ितों की शिक्षा को इस प्रकार की बनाना चाहते हैं, जो उत्पीड़न की व्यवस्था को समूल नष्ट कर दे; और उत्पीड़ितों के साथ-साथ उत्पीड़कों की मुक्ति का मार्ग भी प्रशस्त करे। ऐसा प्रतीत होता है, मानो फ्रेरे शिक्षा को क्रान्तिकारी बनाना चाहते हों।

पाओलो फ्रेरे मानते हैं कि प्रभुत्वशाली अभिजनयुक्त समाज में अन्याय एवं उत्पीड़न अपने विराट रूप में होता है। वे उत्पीड़नकारी व्यवस्था में उत्पीड़क व उत्पीड़ित दोनों को "अमानुषिक" मानते हैं। वे शिक्षा को 'सामाजिक रूपांतरण' के माध्यम से उत्पीड़ितों व उत्पीड़कों की मुक्ति का साधन मानते हैं। यही वजह है कि वे शिक्षा को 'सामाजिक रूपांतरण' के लिए किया जाने वाला 'नैतिक, राजनैतिक, व सांस्कृतिक' कर्म मानते हैं।

इस कर्म के लिए फ्रेरे अपने शिक्षा-दर्शन में जिन पद्धतियों की चर्चा करते हैं, उनके मूल तत्त्व - "विवेकीकरण", "स्वतंत्रता के भय" से मुक्ति, "अमानुषीकरण" से "मानुषीकरण" की ओर बढ़ना, 'सतत-सहभागी मुक्ति-संघर्ष', 'यथार्थवादी दृष्टिकोण', "पालतूकरण" से मुक्ति, "आचरणात्मक व्यवहार" की प्राप्ति, "शिक्षा की बैंकीय अवधारणा" का बहिष्कार, 'सृजनात्मक दृष्टिकोण', व "संवादात्मकता", इत्यादि हैं।

पाओलो फ्रेरे का तथ्य है कि "विवेकीकरण" मनुष्य को "विध्वंसक मतांधता" की ओर नहीं ले जाता, जैसा कि उनके कुछ सहयोगी शंका ज़ाहिर करते हैं। वे मानते हैं - "विवेकीकरण" मनुष्य को अपनी अभिपुष्टि की खोज में लगाता है। फलस्वरूप, मनुष्य मतांधता से बच जाता है। फ्रेरे असंतोषमय भावना को उत्पीड़नकारी परिवेश में असली संघटक ठहराते हैं। वे "स्वतंत्रता के भय" की चर्चा में 'फोकस' करते हैं - "स्वतंत्रता के भय" से लोग "स्वतंत्रता रक्षक" होने लगते हैं, अथवा परिवेश विशेष के बदलाव को रोकते हैं। यह 'अकर्मण्यता' का पर्याय है। इससे निकालने के लिए वे व्यक्ति को 'स्वायत्त और उत्तरदायी' बनाना चाहते थे।

फ्रेरे (1997क) शिक्षा को 'संवादविहीन' प्रक्रिया के तौर पर लेकर कहते हैं - "इसमें शिक्षक संप्रेषण करने के बजाय विज्ञप्तियाँ जारी करता है"। इसमें छात्रों का कार्य धैर्यपूर्वक ग्रहण करना, रटना व दोहराना है। फ्रेरे के अनुसार यह "बैंकीय शिक्षा" की द्योतक है। इसमें ज्ञान एक उपहार होता है, जो स्वयँ को ज्ञानवान समझने वाला नितांत अज्ञानियों को देता है। फ्रेरे मानते हैं कि "बैंकीय शिक्षा" छात्रों की सृजनात्मक शक्ति को शून्य कर देती है, जबकि "समस्या-उठाऊ शिक्षा" में निरंतर यथार्थ का अनावरण होता है। "समस्या-उठाऊ

शिक्षा" में "शिक्षक छात्रों से 'संवाद' करते समय स्वयँ भी उनसे पढ़ता है"। स्पष्ट है - फ्रेरे "समस्या-उठाऊ शिक्षा" को "बैंकीय शिक्षा" के जवाब के रूप में देखते हैं। फ्रेरे इस कार्य को 'संवाद' के माध्यम से पूर्ण करना चाहते हैं। वे 'संवाद' को एक अस्तित्वगत आवश्यकता मानते हैं। इसके लिए वे 'विनम्रता एवँ विश्वास' को प्रमुख मानते हैं। फ्रेरे 'संवाद' को क्रान्तिकारी आन्दोलनों के एक उपकरण के रूप में देखते हैं। कहा जा सकता है कि 'संवादमय संप्रेषण' जड़ता को तोड़ता है।

भारतीय समकालीन परिवेश विशेष का विवेचन यह इंकित करता है – विधाई शैक्षिक परिवर्तनों उपरान्त भारत में "चुप्पी की संस्कृति" के बरक्स संप्रेषण बढ़ा है, तथापि उत्पीड़क वर्ग अभी भी सामंती संस्कारों के वशीभूत होकर स्थिति को बदलना नहीं चाहता। परिणामस्वरूप, वह समाज विरोधी कर्म करने को तत्पर रहता है। इसके लिए वह एक तरफ़ तो खराब परिस्थितियों को बदलने का दिखावा करने के लिए "मिथ्या उदारता" का जामा पहन लेता है, तो दूसरी तरफ़ लगातार ऐसे प्रयास करता रहता है, जिससे उसकी लाभ की स्थिति बनी रहे। भारतीय शिक्षा की समकालीनता में इसे इस रूप में समझा जा सकता है कि यहाँ आज भी शिक्षा व्यवस्था एक ऐसे साधन के रूप में इस्तेमाल की जा रही है, जो सत्ता प्राप्त व्यक्तियों की आकांक्षा को पूरा करने का ज़रिया मात्र बनकर रह गई है। भारत में कई शैक्षिक व 'सामाजिक रूपान्तरण' की योजनाओं के क्रियान्वयन में यह देखा जा सकता है कि इनसे जुड़े व्यक्ति मन-ही-मन सत्ता से लाभ प्राप्त करने का स्वप्न भी सँजोये रहते हैं। सत्ता प्राप्त व्यक्ति भी यही चाहते हैं कि विभिन्न योजनाओं के ज़रिये आमूल 'सामाजिक रूपान्तरण' की बजाय छोटे-छोटे परिवर्तन ही किए जाते रहें, जिससे लोगों का आक्रोश प्रतिस्थापित किया जा सके; और वे यह न समझ पाएँ कि शिक्षा के माध्यम से उनकी सोच का "पालतूकरण" किया जा रहा है।

ध्यातव्य है - शिक्षा कई धाराओं में बंट चुकी है, जो सामाजिक वर्गीकरण को और अधिक रूढ़ बना रही हैं। शिक्षा में वित्त का आबंटन भी सम्यक नहीं रहा है। विभिन्न शैक्षिक आँकड़ों के आलोक में शोषित तबके में शिक्षा के

माध्यम से उतना परिवर्तन नहीं आ सका है, जितना कि शुरू में मानकर चला गया था; इसमें भी लड़कियों को अतिरिक्त परेशानियों झेलनी पड़ती हैं।

इसके अलावा, अनुसूचित जाति व जनजाति के वास्तविक पिछड़े हुए लोगों तक शिक्षा के लाभ पहुँचने अभी बाकी हैं। इसके लिए विद्यालयी शिक्षा में संरचनागत बदलाव की तरह शिक्षक-शिक्षा में बड़े बदलाव करने होंगे, ताकि शिक्षा की पहुँच सभी तक सुनिश्चित की जा सके। पाओलो फ्रेरे तो शिक्षा को उत्पीड़ितों की मुक्ति का सबसे बड़ा औज़ार मानते हैं। उनके अनुसार शिक्षा के माध्यम से ही "आलोचनात्मक चेतना" की जागृति संभव है। "आलोचनात्मक चेतना" जागृति लोगों को समाज की बेहतरी के बारे में सोचवान बनाती है। फ्रेरे इसके लिए शिक्षा से आबद्ध 'संवादमय परिवेश' को प्रमुख मानते थे; परन्तु देखा जा सकता है कि भारत में शिक्षा के उद्देश्य द्वंद्व में उलझकर रह गए हैं। एक तरफ़ सामाजिक न्याय है, तो दूसरी तरफ़ कम लागत, उच्च लाभ वाला विकास, जिसमें ऐसे मज़दूर वर्ग की आवश्यकता है, जिसकी अपने अधिकारों के प्रति समझ न के बराबर हो; जो स्थितियों में बदलाव से डरता हो; और गुणात्मक शिक्षा प्राप्ति को शोषण से मुक्ति के रूप में न देखता हो।

यदि, पाओलो फ्रेरे के 'शिक्षा सम्बन्धी विचारों' को सम्मुख रखा जाए, तो भारत के संदर्भ में एक बात मुख्य रूप से उभरकर सामने आती है कि शिक्षा में 'संवाद' को अपनाकर "विवेकीकरण" का संधान करना होगा। इससे सभी में दूसरों के प्रति संवेदनशीलता बढ़ती है। वस्तुत:, इससे ही स्थानीयता को ध्यान में रखकर 'समान यथार्थवादी शिक्षा' की ओर लक्षित होना संभव होगा।

5.11 शोध से सम्बद्ध शैक्षिक निहितार्थ

इस अनुसंधान की प्राप्तियाँ अधोलोखित रूप में विभिन्न व अन्य परिस्थितियों विशेष के अंतर्गत लाभप्रदायी हैं -

- इस अनुसंधान परिणामों से पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक विचारों के आलोक में भारत में शिक्षा जगत को समकालीन संदर्भों विशेष में

समझकर उद्देश्यों व पद्धतियों के सम्बन्ध में ठीक प्रकार से पुनर्नियोजित कर लक्षित कर सकते हैं।

- शिक्षा को लेकर सम्यक वित्त आबंटन को आवश्यक ठहराकर शिक्षा नियोजकों का ध्यान इस ओर आकर्षित कर सकते हैं।
- विद्यार्थियों (लड़कों व लड़कियों दोनों) के विद्यालयों से 'ड्रॉप-आउट' के कारणों का विचार-विमर्श द्वारा तार्किक निदान खोजा जा सकना संभव हो सकता है।
- वित्त आबंटन प्रक्रिया को समझकर आबंटित वित्त का शिक्षा में सम्यक प्रावधान हो सकता है।
- शिक्षा नियोजकों और व्यवस्थापकों के अतिरिक्त, परिजनों व विशिष्टजनों को बच्चे के सहभागी विकास के प्रति सजग किया जा सकता है।
- भारतीय परिवेश विशेष को जटिलताओं में समझकर शिक्षकों द्वारा अपने स्तर पर बेहतर कार्यान्वयन हेतु पाठ्यचर्या के पुनर्संगठन को लक्षित कर पाठ्यचर्या को विद्यार्थियों की दैनिकता से आबद्ध कर सकते हैं।
- भारतीय शैक्षिक विधाई सुधारों के संदर्भ में नीतिगत दृष्टि की कमी को अनुचिंतन का विषय बनाकर शिक्षा नियोजकों को गुणात्मक नीतिगत परिवर्तन करने हेतु अभिप्रेरित किया जा सकता है।
- बच्चे व उससे जुड़े सरोकारों के प्रति; विशेषकर शिक्षकों में समग्र समझ विकसित की जा सकती है।
- विद्यालयगत अधिसंरचना और सम्यक पढ़ाई-लिखाई का सम्बन्ध तार्किक रूप से स्पष्ट हो सकता है।
- अनुसूचित जाति व जनजाति के बच्चों की शैक्षिक व अन्य जटिलताओं को लेकर नियोजकों की दृष्टि सम्यक हो सकती है।

5.12 भविष्य में अनुसंधान से जुड़े अन्य संबंधित क्षेत्र

भवितव्य में प्रस्तुत शोध की प्राप्तियों पर आधारित अग्रलिखित संबंधित अनुसंधान के क्षेत्रों पर गहन शोध किया जा सकता है –

- शिक्षा में वित्त आबंटन और कुल सकल घरेलू उत्पाद के सम्बन्ध की विवेचना हेतु शोध।
- स्वतंत्रता के पश्चात् शिक्षा और सत्ता आबंधकता पर गहरी समझ प्राप्ति को लेकर शोध।
- भारतीय सामाजिक तंत्र और शिक्षा तंतुओं को एतिहासिकता के संदर्भ में विवेचित करने को लेकर शोध।
- भारत और किसी अन्य देश; विशेषकर बाज़ील की शैक्षिक स्थितियों के संदर्भ में 'तुलनात्मक अध्ययन'।
- अनुसूचित जाति और जनजाति के बच्चों के जटिल तंत्र को समझने के लिए शोध।
- शैक्षिक संदर्भ में लड़कियों व महिला शिक्षकों के समक्ष उपस्थित परेशानियों के प्रति समझ विकसित करने हेतु शोध।
- शैक्षिक सुधार क्रम को आगे बढ़ाने के लिए 'प्रायोगिक अनुसंधान'।

5.13 स्वमूल्यांकन

अनुसंधानकर्त्ता ने शोध को सात पूर्वनिर्धारित उद्देश्यों के आलोक में गहनता के साथ पूर्ण किया है। इसके लिए शोधार्थी ने 'शिक्षा के समाजशास्त्र' के अंतर्गत 'वर्णनात्मक अभिकल्प' का चुनाव किया; तथा गुणात्मक प्रकृति के आँकड़ों के विश्लेषण के लिए 'गुणात्मक-विश्लेषणात्मक तकनीक' का अनुपालन किया। चूँकि, प्रस्तुत अनुसंधान में पाओलो फ्रेरे के 'शिक्षा सम्बन्धी विचारों' और 'समकालीन भारतीय परिस्थितियों' विशेष को विश्लेषण-विवेचन का विषय बनाया गया है, इसलिए शोधार्थी द्वारा सबसे पहले सम्बद्ध साहित्य व दस्तावेज़ों का गूढ़ अध्ययन किया गया। तदोपरांत, एक

'अर्धसंरचित साक्षात्कार अनुसूची' का, उसकी वैधता को ध्यान में रखते हुये, निर्माण कर अंतर्संबंधित तथ्यों की गहन पड़ताल करने के लिए शिक्षाविदों विशेष से बातचीत की गई।

अनुसंधान में तथ्य लेखन के दौरान भारतीय सरकार व अन्य विधाई निकायों द्वारा प्रकाशित शिक्षा सम्बन्धी आँकड़ों की भी सहायता ली गई; इसने शोध की गुणात्मकता में वृद्धि की। अन्य शब्दों में, प्रस्तुत शोध में संबंधित आँकड़ों का गुणात्मक विवेचन-विश्लेषण कर पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक विचारों के तहत समकालीन भारतीय परिस्थितियों के अंतर्गत शैक्षिक वस्तुस्थिति और नवीन संभावनाओं को जाँचा-परखा गया है।

यद्यपि, शोध उद्देश्यों और विषय की जटिलता के सम्बन्ध में प्रस्तुत अध्ययन शोध शीर्षक से जुड़े विभिन्न पक्षों की परिपूर्णता में जाँच-परख करता है, तथापि प्राप्त समय की परिसीमा की वजह से शोध का कई बिन्दुओं के संदर्भ में परिसीमन भी किया गया है, जो भविष्य में इन अलग-अलग बिन्दुओं विशेष के आलोक में होने वाले शोधों में पर्याप्त समय उपलब्धता के अंतर्गत अपरिसीमित हो सकता है। कुल मिलाकर प्रस्तुत अनुसंधान भारतीय शिक्षा से आबंधित आयामों और पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक चिंतन के प्रति सम्यक समझ विकसित करता है।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

संदर्भ ग्रंथ-सूची

- Government of India (2013). *Statement Indicating Public Expenditure on Education***.** MHRD, New Delhi, India: Planning, Monitoring and Statistics Bureau. Retrieved from http://mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/statistics/PubExpdt-.2013pdf
- Government of India (2016a). *Analysis of Budgeted Expenditure on Education 2013-14 to 2015-16*. MHRD, New Delhi, India: Planning, Monitoring and Statistics Bureau. Retrieved from https://mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/statistics-new/ABE2013-16.pdf
- Government of India (2016b). *Educational Statistics at a Glance 2016*. MHRD, New Delhi, India: Statistics Division, MHRD. Retrieved from https://mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/statistics-new/ESG2016.pdf
- Government of India (2018). *Educational Statistics at a Glance 2018*. MHRD, New Delhi, India: Statistics Division, MHRD. Retrieved from https://mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/statistics-new/ESAG-2018.pdf
- National Council for Teacher Education (2009). *National Curriculum Framework for Teacher Education*. MHRD, New Delhi, India: Member-Secretary, NCTE Retrieved from https://ncte.gov.in/Website/PDF/NCFTE_2009.pdf
- National Council of Educational Research and Training (2006). *Seventh All India School Education Survey (National Tables on Schools, Physical and Ancillary Facilities)*. MHRD, Government

of India, New Delhi, India: NCERT. Retrieved from http://www.ncert.nic.in/programmes/education_survey/pdfs/Schools_Physical_Ancillary_Facilities.pdf

- National Council of Educational Research and Training (2016). *Eighth All India School Education Survey 2009.* MHRD, Government of India, New Delhi, India: NCERT. Retrieved from http://ncert.nic.in/pdf_files/8th_AISES_Concise_Report.pdf
- UNICEF (1990). *World Conference on Education for All: Meeting Basic Learning Needs*. New York, USA: Inter-Agency Commission. Retrieved from https://unesdoc.unesco.org/ark:/48223/pf0000097551
- आचार्य, परमेश (2001). *देशज शिक्षा, औपनिवेशिक विरासत और जातीय विकल्प* (अनिल राजिमवाले, अनु.). दिल्ली, भारत: ग्रन्थ शिल्पी.
- उदित, राज (2005, दिसम्बर 5), शिक्षा में अधूरा सामाजिक न्याय. *हिन्दुस्तान दैनिक*, पृ. 8.
- एवॉलास, ब्रीट्रीस (सं.) (1999). *गरीब बच्चों की शिक्षा* (नरेश 'नदीम', अनु.). नई दिल्ली, भारत: ग्रंथ शिल्पी.
- ऑटवे, ऐ.के.सी. (1972). *शिक्षा और समाज* (ब्रजभूषण शर्मा, अनु.). लखनऊ, भारत: उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी. (मूल कार्य प्रकाशित 1953).
- ओम्नी (1994). जनशिक्षा आंदोलन और पाओलो फ्रेरा (पाओलो फ्रेरे से ओम्नी पत्रिका की बातचीत). *परिप्रेक्ष्य*, *1*(1), 173-184.
- कपूर, बद्रीनाथ (सं.). (2007). *बृहत् अँग्रेज़ी-हिंदी कोश*. दिल्ली, भारत: प्रभात प्रकाशन.
- किरण, चाँद (1995). *शिक्षा के आधारभूत सिद्धांत*. दिल्ली, भारत: विवेक प्रकाशन.
- किरण, चाँद (2006). *शिक्षा – दार्शनिक परिप्रेक्ष्य*. दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत: हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय.
- कुमार, अरविंद और कुमार, कुसुम (2005क). *समांतर कोश (हिंदी थिसारस) – अनुक्रम खंड*. नई दिल्ली, भारत: नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया.

- कुमार, अरविंद और कुमार, कुसुम (2005ख). *समांतर कोश (हिंदी थिसारस) – संदर्भ खंड*. नई दिल्ली, भारत: नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया.
- कुमार, कृष्ण (1990). *राज, समाज और शिक्षा*., दिल्ली, भारत: राजकमल प्रकाशन.
- कुमार, भूपिन्द्र (1998). *स्वतंत्रता पश्चात् भारतीय राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में समकालीन भारतीय शिक्षा के स्वरूप का अध्ययन* (अप्रकाशित एम.फिल. शोध-प्रबंध). दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत.
- कुमार, सुरेश (2006). *86वें संविधान संशोधन का राजनीतिक विश्लेषण: शिक्षा के मौलिक अधिकार के संदर्भ में* (अप्रकाशित एम.एड. शोध-प्रबंध). दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत.
- कुमारी, संतोष (2003). *भारतीय संविधान के परिप्रेक्ष्य में शैक्षिक समानता की संकल्पना का आलोचनात्मक विवेचन* (अप्रकाशित एम.एड. शोध-प्रबंध). दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत.
- कृष्णमूर्ति, जे. (1998). *शिक्षा संवादः छात्रों और शिक्षकों से* (डॉ. डी. एस. वर्मा, अनु.). वाराणसी, भारत: कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन इंडिया. (मूल कार्य प्रकाशित 1974).
- कौल, लोकेश (1998). *शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली*. नई दिल्ली, भारत: विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि.
- गांधी, मो. क. (2002). *सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा* (काशीनाथ त्रिवेदी, अनु.)., अहमदाबाद, भारत: नवजीवन प्रकाशन मंदिर. (मूल कार्य प्रकाशित 1927 और 1928).
- जोशी, रामशरण (1996). *आदिवासी समाज और शिक्षा* (अरुण प्रकाश, अनु.). नई दिल्ली: ग्रंथ शिल्पी. (मूल कार्य प्रकाशित 1984).
- झा, मदन मोहन (2003). *समावेशी शिक्षा: दृष्टिकोण और प्रक्रियाएँ* (नरेश 'नदीम', अनु.). नई दिल्ली, भारत: प्रकाशन संस्थान. (मूल कार्य प्रकाशित 2002).
- डीवी, जॉन (1998). *शिक्षा और लोकतंत्र* (लाडलीमोहन माथुर, अनु.). नई दिल्ली, भारत: ग्रंथ शिल्पी. (मूल कार्य प्रकाशित 1916).
- त्रिवेदी, आर. एन. और शुक्ला, डी. पी. (2002). *रिसर्च मैथ्डोलोजी*. जयपुर, भारत: कॉलेज बुक डिपो.
- दूबे, श्यामाचरण (2000). *शिक्षा, समाज और भविष्य*. नई दिल्ली, भारत: राधाकृष्ण प्रकाशन.

- नाईक, जे. पी. (1998क). *भारत में प्राथमिक शिक्षाः शेष संकल्प* (सरला मोहनलाल, अनु.). बीकानेर, भारत: वाग्देवी प्रकाशन. (मूल कार्य प्रकाशित 1966).
- नाईक, जे. पी. (1998ख). *समानता, गुणवत्ता और संख्यात्मक विस्तारः भारतीय शिक्षा का दुर्ग्राह्य त्रिकोण* (सरला मोहनलाल, अनु.). बीकानेर, भारत: वाग्देवी प्रकाशन. (मूल कार्य प्रकाशित 1975).
- पपनै, कैलाश चन्द्र व पाराशर, अमिताभ (2005, जुलाई 10). शिक्षा को महंगा बनाने के पक्ष में है मोंटेक. *हिंदुस्तान दैनिक*, पृ. 8.
- पाण्डेय, रामशक्ल (2000). *विश्व के श्रेष्ठ शिक्षाशास्त्री*., आगरा, भारत: विनोद पुस्तक मंदिर.
- फ्रेरे, एना मारिया अराउज़ो और मसीडो, डोनेल्डो (सं.). (1998). दी पाओलो फ्रेरे रीडर. न्यू यार्क, यू.एस.ए.: दी कोंटिनम पब्लिशिंग कंपनी.
- फ्रेरे, पाओलो (1997क). *उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र* (रमेश उपाध्याय, अनु.). नई दिल्ली, भारत: ग्रंथ शिल्पी. (मूल कार्य प्रकाशित 1968).
- फ्रेरे, पाओलो (1997ख). *प्रौढ़साक्षरताः मुक्ति की सांस्कृतिक कार्रवाई* (जवरीमल्ल पारख, अनु.). नई दिल्ली, भारत: ग्रंथ शिल्पी. (मूल कार्य प्रकाशित 1970).
- फ्रेरे, पाओलो (1998). *पेडागोजी ऑफ फ्रीडम : एथिक्स, डेमोक्रेसी, एंड करेज* (पेट्रिक क्लार्क, अनु.). मेरीलैंड, यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ अमेरिका: रोमैन एंड लिटलफील्ड पब्लिशर्स. (मूल कार्य प्रकाशित 1996).
- फ्रेरे, पाओलो (2010). *उम्मीदों का शिक्षाशास्त्र* (विपिन, अनु.). दिल्ली, भारत: ग्रंथ शिल्पी. (मूल कार्य प्रकाशित 1992).
- फ्रेरे, पाओलो और मसीडो, डोनेल्डो (2001). ए डायलोग विद पाओलो फ्रेरे. पीटर मेक्लर्न और पीटर लियोनार्द (सं.) में, *पाओलो फ्रेरेः ए क्रिटिकल एंकाउंटर* (पृ. 169-176). लंदन, यू. के.: रूटलेज.
- बेल, ब्रेंडा, गैवेंटा, जॉन एवं पीटर्स, जॉन (सं.). (2003). *चलकर राह बनाते हम* (शैवाल गुप्ता व अन्य, अनु.). नई दिल्ली, भारत: प्रकाशन संस्थान. (मूल कार्य प्रकाशित 1987).
- बेस्ट, जॉन डब्ल्यू. एंड काहन, जेम्स वी. (2003). *रिसर्च इन एजुकेशन* (सातवाँ संस्करण). नई दिल्ली, भारत: प्रेंटिस हाल ऑफ इंडिया प्राइवेट लिमिटिड.

- भारत सरकार (1968). *शिक्षा और राष्ट्रीय विकास (शिक्षा आयोग का प्रतिवेदन, 1964-66)*. नई दिल्ली, भारत: शिक्षा मंत्रालय.
- भारत सरकार (1990). *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की समीक्षा समिति का प्रतिवेदन (आचार्य राममूर्ती समिति)*. नई दिल्ली, भारत: भारत सरकार.
- भारत सरकार (1993). *शिक्षा बिना बोझ के (यशपाल समिति), राष्ट्रीय सलाहकार समिति का प्रतिवेदन* (राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली, अनु.). शिक्षा विभाग, नई दिल्ली, भारत: मानव संसाधन विकास मंत्रालय. (मूल कार्य प्रकाशित 1993).
- भारत सरकार (2009, अगस्त 27). दी राइट ऑफ चिलड्रन टू फ्री एण्ड कंपलसरी एजुकेशन एक्ट, 2009. *दी गैजेट ऑफ इंडिया, एक्स्ट्राओर्डिनेरी*, भारत: भारत सरकार.
  https://mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/upload_document/rte.pdf से लिया गया
- भारत सरकार (2019). *प्रारूप राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019*. नई दिल्ली, भारत: मानव संसाधन विकास मंत्रालय.
  https://mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/Draft_NEP_2019_HI.pdf से लिया गया
- भारती, कँवल (2004). *दलित विमर्श की भूमिका*. इलाहाबाद, भारत: इतिहासबोध प्रकाशन.
- मुकर्जी, रवीन्द्र नाथ (2007). *समकालीन उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धान्त*. नई दिल्ली, भारत: विवेक प्रकाशन.
- मुकर्जी, रवीन्द्र नाथ और दुबे, देवाशीष (1993). *शोध का पद्धतिशास्त्र*. बरेली, भारत: सरल प्रकाशन.
- यादव, सुषमा व शर्मा, राम अवतार (1997). *भारतीय राजनीतिः ज्वलंत प्रश्न*. दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत: हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय.
- रज़ा, मूनिस (1996). *शिक्षा और विकास के सामाजिक आयाम* (सुजाता राय, अनु.). नई दिल्ली, भारत: ग्रंथ शिल्पी. (मूल कार्य प्रकाशित 1990).
- रस्तोगी, निधि (2000). *आचार्य रजनीश की मानव-संकल्पना एवं शिक्षा-दर्शन - एक सत्त्वविद्यात्मक अध्ययन* (अप्रकाशित पीएच.डी. शोध-प्रबंध). दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत.

- राममूर्ती, आचार्य (1990). *शिक्षा, संस्कृति और समाज*. मुंगेर, बिहार, भारत: श्रम भारती
- रायजादा, बी. एस. (1997). *शिक्षा में अनुसंधान के आवश्यक तत्त्व*. जयपुर, भारत: राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी.
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (2000). *विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा*. मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, भारत: रा.शै.अ.प्र.प.
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (2006). *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005*. मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, भारत: रा.शै.अ.प्र.प.
- रुहेला, सत्यपाल (1999). *भारतीय शिक्षा का समाजशास्त्र*. जयपुर, भारत: राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी.
- रॉबर्ट्स, पीटर (2000). *एजुकेशन, लिटरेसी एण्ड ह्यूमनाइज़ेशन*. यू.एस.ए.: बरजिन एण्ड गारवे
- विश्वंभर (2006, जून). शिक्षा में निजीकरण का सवाल. *शिक्षा विमर्श*, *7*(3), 3.
- श्रीवास्तव, डी. एन. (2000). *अनुसन्धान विधियाँ*. आगरा, भारत: साहित्य प्रकाशन.
- सक्सेना, साधना (2000). *शिक्षा और जन आंदोलन*. दिल्ली, भारत: ग्रंथ शिल्पी.
- सद्गोपाल, अनिल (2000). *शिक्षा में बदलाव का सवालः सामाजिक अनुभव से नीति तक*. नई दिल्ली, भारत: ग्रंथ शिल्पी.
- सद्गोपाल, अनिल (2003, मार्च 15). यहाँ से आना चाहिए शिक्षा के लिए पैसा – प्रतिसंवाद. *राष्ट्रीय सहारा* दैनिक, पृ. 9.
- सिंह, रामपाल और शर्मा, ओ. पी. (2004). *शैक्षिक अनुसंधान एवं सांख्यिकी*. आगरा, भारत: विनोद पुस्तक मंदिर.
- होल्ट, जॉन (2000). *कैसे असफल होते हैं बच्चे?* (निर्मला जोशी, अनु.). दिल्ली, भारत: प्रेमनाथ एण्ड सन्स. (मूल कार्य प्रकाशित 1964).

परिशिष्ट

परिशिष्ट 1

'अर्धसंरचित साक्षात्कार अनुसूची' के प्रश्न

अधोरचित प्रश्नावली का निर्माण स्नातक व परास्नातक शिक्षक-शिक्षा से जुड़े विभिन्न शिक्षाविदों से बातचीत के ज़रिए समकालीन भारतीय परिप्रेक्ष्य में पाओलो फ़्रेरे के शैक्षिक विचारों पर सम्यक दृष्टि प्राप्त करने हेतु किया गया है।

1. फ़्रेरे के शिक्षा सम्बन्धी विचारों पर तत्कालीन परिस्थितियों का काफ़ी प्रभाव पड़ा। आपकी दृष्टि में वे कौन सी सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक परिस्थितियाँ थीं, जिनके इर्द-गिर्द फ़्रेरे के शिक्षा सम्बन्धी विचारों ने आकार लिया?
2. यदि, फ़्रेरे के शिक्षा-दर्शन को ध्यान में रखा जाए, तो आपकी दृष्टि में शिक्षा के क्या उद्देश्य हो सकते हैं; और इन उद्देश्यों की प्राप्ति की क्या पद्धति या पद्धतियाँ होंगी?
3. फ़्रेरे के शिक्षा दर्शन अथवा शैक्षिक विचारों की भारतीय शिक्षा व्यवस्था अथवा भारतीय शैक्षिक संदर्भ में प्रासंगिकता पर आपका क्या मत है?
4. फ़्रेरे ने जिन आधुनिक उत्पादन की स्थितियों की चर्चा की है, वे शिक्षा से किस प्रकार जुड़ी हुई हैं?
5. भारत में शिक्षा के संदर्भ में 'उत्पीड़ित और उत्पीड़क' किसको माना जाना चाहिए?
6. भारत में शिक्षा का सभी तक पहुँच न बना पाने के पीछे आप की नज़र में क्या प्रमुख कारण रहे हैं? क्या फ़्रेरे का शिक्षा-दर्शन इनके निदान में हमारी सहायता कर सकता है? यदि हाँ, तो किस प्रकार?

7. शिक्षा को व्यवस्थित करने की बात की जाती है। यदि, भारत के लम्बे औपनिवेशिक इतिहास को ध्यान में रखा जाए, तो ऐसे में अपवंचितों की शिक्षा को किस तरह से व्यवस्थित किया जा सकता है?

8. पाओलो फ्रेरे 'स्वतंत्रता के भय' की बात उठाते रहे हैं। भारतीय समाज; विशेषकर शिक्षा के संदर्भ में आप छात्रों, माता-पिता और शिक्षा नियोजकों, शिक्षा व्यवस्थापकों या अध्यापकों में 'स्वतंत्रता के भय' को किस रूप में देखते हैं?

9. फ्रेरे को कई दफ़ा शैक्षणिक कार्यक्रमों में विवेकीकरण प्रक्रिया के अंतर्गत लोगों में 'विध्वंसक मतांधता' के डर का सामना भी करना पड़ा। क्या शिक्षा के संदर्भ में 'विवेकीकरण' अथवा आलोचनात्मक चेतना-जागृति का प्रयास विध्वंस अथवा मतांधता की ओर भी ले जा सकता है?

10. शिक्षा और साक्षरता दो अलग-अलग मामले हैं, जैसा कि फ्रेरे के दर्शन में भी स्पष्ट होता है और भारत की शैक्षणिक स्थिति में भी। शिक्षा और साक्षरता के प्रसार के मामले में आप क्या भिन्नता पाते/ पाती हैं; और भारत में इसे प्राय: जो पैसे की कमी से जोड़ा जाता है, इस पर आपका क्या मत है?

11. कुपोषण, भूख, व गरीबी को शिक्षा पाने के मार्ग में बड़ी बाधाओं के रूप में गिनाया जाता है। भारतीय स्थिति के संदर्भ में यह बात किस स्तर तक सत्य मानी जा सकती है? कृपया, बताइए।

12. फ्रेरे का शिक्षा दर्शन 'स्थापित संस्कृति' के बरक्स 'प्रति संस्कृति के निर्माण' से सम्बद्ध माना जाता है। भारत में आप 'स्थापित संस्कृति' के बरक्स 'प्रति संस्कृति के निर्माण' को किस रूप में देखते/ देखती हैं?

13. यदि, 'स्थापित संस्कृति' और 'प्रति संस्कृति के निर्माण' को भारतीय शिक्षा से जोड़कर देखें, तो आप भारत की वर्तमान परिस्थितियों में इसे किस अवस्था या स्तर पर पाते/ पाती हैं?

14. फ्रेरे का मानना था कि "शिक्षा राजनीति है; व जिस प्रकार राजनीति वर्गीय है, शिक्षा भी है"। भारत के सम्बन्ध में इस पर आपका क्या मत है?

15. आप की दृष्टि में भारत की शैक्षिक प्रणाली किस प्रकार के नागरिक तैयार कर रही है? क्या फ्रेरे का दर्शन इस संदर्भ में अपनी सार्थक भूमिका निभा सकता है? यदि हाँ, तो कैसे?

16. फ्रेरे विद्यालयों को 'जिज्ञासा के बंध्यकरण' के सम्बन्ध में भी देखते हैं। इस संदर्भ में भारत के विद्यालयों की स्थिति पर आपका क्या विचार है?

17. ऐसा क्यों है कि भारत में विभिन्न शैक्षणिक कार्यक्रमों को चलाए जाने के पश्चात् भी शिक्षा सभी तक पहुँच बनाने के आसपास ही रही है?

18. भारत की सामाजिक स्थिति को यदि ध्यान में रखा जाए, तो यह 'कोठारी आयोग' की 'समान शिक्षा प्रणाली' अथवा 'पड़ोसी विद्यालय' की अवधारणा के मार्ग में क्या चुनौती पेश करती है? फ्रेरे के शिक्षा सम्बन्धी विचार इस चुनौती से निपटने में किस तरह सहायता कर सकते हैं?

19. यदि भारत में शिक्षक-शिक्षा की वर्तमान स्थिति को देखा जाए, तो उसमें सुधार के लिए क्या किया जा सकता है; और फ्रेरे के शिक्षा सम्बन्धी विचार क्या इसमें कोई मदद कर सकते हैं?

परिशिष्ट 2

(जाँच हेतु शिक्षाविदों को भेजी गई 'अर्धसंरचित साक्षात्कार अनुसूची' का प्रारूप)

अर्धसंरचित साक्षात्कार अनुसूची

शोध के उद्देश्य

1. पाओलो फ्रेरे के शिक्षा सम्बन्धी विचारों पर तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक परिस्थितियों के प्रभाव का विश्लेषण करना।
2. पाओलो फ्रेरे के शिक्षा सम्बन्धी विचारों के अंतर्गत शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण व विश्लेषण करना।
3. पाओलो फ्रेरे के शिक्षा सम्बन्धी विचारों में निहित शैक्षिक पद्धति अथवा पद्धतियों की पहचान व विश्लेषण करना।
4. भारत में समकालीन सामाजिक परिस्थितियों और शिक्षा की अंतर्क्रियात्मकता का विश्लेषण करना।
5. भारत में समकालीन राजनीतिक परिस्थितियों और शिक्षा के सम्बन्ध का विश्लेषण करना।
6. भारत में समकालीन आर्थिक परिस्थितियों और शिक्षा की आबन्धकता का विश्लेषण करना।
7. समकालीन भारतीय सामाजिक, राजनीतिक, व आर्थिक परिस्थितियों के बरक्स पाओलो फ्रेरे के शिक्षा सम्बन्धी विचारों का विश्लेषण करना।

प्रश्नावली

अधोरचित प्रश्नावली का निर्माण स्नातक व परास्नातक शिक्षक-शिक्षा से जुड़े विभिन्न शिक्षाविदों से बातचीत के ज़रिए समकालीन भारतीय परिप्रेक्ष्य में पाओलो फ्रेरे के शैक्षिक विचारों पर सम्यक दृष्टि प्राप्त करने हेतु किया गया है।

निर्देश

1. अधोरचित प्रश्नावली के प्रत्येक प्रश्न का सम्बन्ध शोध के जिस उद्देश्य व विषयवस्तु से है, उसे प्रत्येक प्रश्न के समक्ष लिख दिया गया है; और उसके सम्बन्ध में 5 बिन्दुओं वाली दर मापनी भी दी गई है।
2. यदि, आप प्रश्नावली के प्रश्न विशेष और शोध के संबंधित उद्देश्य से पूर्णत: सहमत हैं, तो दर मापनी पर बिन्दु 5 का चयन कर सकते हैं अथवा बिन्दु 4 (सहमत), बिन्दु 3 (अनिश्चित), बिन्दु 2 (असहमत) या बिन्दु 1 (पूर्णत: असहमत) का चुनाव कर सकते हैं। प्रश्नावली के प्रत्येक प्रश्न विशेष व शोध की संबंधित विषयवस्तु के संदर्भ में भी इसी प्रक्रिया का अनुपालन किया जा सकता है।
3. यदि, शोध के उद्देश्य व विषयवस्तु विशेष के संदर्भ में दर मापनी पर आपके द्वारा बिन्दु 5 (पूर्णत: सहमत) के अतिरिक्त किसी और बिन्दु का चुनाव किया जाता है, तो कृपया अपने चयन के पक्ष में कारण भी दीजिए, ताकि प्रश्न की संरचना को ठीक या और बेहतर किया जा सके।

प्रश्न

1. फ़्रेरे के शिक्षा सम्बन्धी विचारों पर तत्कालीन परिस्थितियों का काफ़ी प्रभाव पड़ा। आपकी दृष्टि में वे कौन सी सामाजिक, राजनीतिक, व आर्थिक परिस्थितियाँ थीं, जिनके इर्द-गिर्द फ़्रेरे के शिक्षा सम्बन्धी विचारों ने आकार लिया?

शोध के उद्देश्य : उद्देश्य संख्या 1	
दर मापनी (1) पूर्णत: असहमत (2) असहमत (3) अनिश्चित (4) सहमत (5) पूर्णत: सहमत	
कारण (यदि, दर मापनी पर बिन्दु 5 – पूर्णत: सहमत के अतिरिक्त किसी और बिन्दु का चुनाव किया जाता है, तो कृपया कारण भी बताइए)	
शोध की विषयवस्तु : फ़्रेरे की तत्कालीन परिस्थितियाँ और फ़्रेरे के शिक्षा सम्बन्धी विचार	
दर मापनी (1) पूर्णत: असहमत (2) असहमत (3) अनिश्चित (4) सहमत (5) पूर्णत: सहमत	
कारण (यदि, दर मापनी पर बिन्दु 5 – पूर्णत: सहमत के अतिरिक्त किसी और बिन्दु का चुनाव किया जाता है, तो कृपया कारण भी बताइए)	

2. यदि, फ्रेरे के शिक्षा-दर्शन को ध्यान में रखा जाए, तो आपकी दृष्टि में शिक्षा के क्या उद्देश्य हो सकते हैं; और इन उद्देश्यों की प्राप्ति की क्या पद्धति या पद्धतियाँ होंगी?

शोध के उद्देश्य : उद्देश्य संख्या 2 व 3	
दर मापनी (1) पूर्णत: असहमत (2) असहमत (3) अनिश्चित (4) सहमत (5) पूर्णत: सहमत	
कारण (यदि, दर मापनी पर बिन्दु 5 – पूर्णत: सहमत के अतिरिक्त किसी और बिन्दु का चुनाव किया जाता है, तो कृपया कारण भी बताइए)	
शोध की विषयवस्तु : फ्रेरे का शिक्षा-दर्शन और शिक्षा के उद्देश्य व पद्धति/ पद्धतियाँ	
दर मापनी (1) पूर्णत: असहमत (2) असहमत (3) अनिश्चित (4) सहमत (5) पूर्णत: सहमत	
कारण (यदि, दर मापनी पर बिन्दु 5 – पूर्णत: सहमत के अतिरिक्त किसी और बिन्दु का चुनाव किया जाता है, तो कृपया कारण भी बताइए)	

3. फ्रेरे के शिक्षा दर्शन अथवा शैक्षिक विचारों की भारतीय शिक्षा व्यवस्था अथवा भारतीय शैक्षिक संदर्भ में प्रासंगिकता पर आपका क्या मत है?

शोध के उद्देश्य : उद्देश्य संख्या 1, 4, 5, 6, व 7	
दर मापनी (1) पूर्णत: असहमत (2) असहमत (3) अनिश्चित (4) सहमत (5) पूर्णत: सहमत	
कारण (यदि, दर मापनी पर बिन्दु 5 – पूर्णत: सहमत के अतिरिक्त किसी और बिन्दु का चुनाव किया जाता है, तो कृपया कारण भी बताइए)	
शोध की विषयवस्तु : फ्रेरे के शिक्षा सम्बन्धी विचार और भारत की समकालीन परिस्थितियाँ	
दर मापनी (1) पूर्णत: असहमत (2) असहमत (3) अनिश्चित (4) सहमत (5) पूर्णत: सहमत	
कारण (यदि, दर मापनी पर बिन्दु 5 – पूर्णत: सहमत के अतिरिक्त किसी और बिन्दु का चुनाव किया जाता है, तो कृपया कारण भी बताइए)	

4. फ्रेरे ने जिन आधुनिक उत्पादन की स्थितियों की चर्चा की है, वे शिक्षा से किस प्रकार जुड़ी हुई हैं?

शोध के उद्देश्य : उद्देश्य संख्या 4, 5, 6, व 7	
दर मापनी (1) पूर्णत: असहमत (2) असहमत (3) अनिश्चित (4) सहमत (5) पूर्णत: सहमत	
कारण (यदि, दर मापनी पर बिन्दु 5 – पूर्णत: सहमत के अतिरिक्त किसी और बिन्दु का चुनाव किया जाता है, तो कृपया कारण भी बताइए)	
शोध की विषयवस्तु : आधुनिक परिस्थितियाँ और शिक्षा का सम्बन्ध	
दर मापनी (1) पूर्णत: असहमत (2) असहमत (3) अनिश्चित (4) सहमत (5) पूर्णत: सहमत	
कारण (यदि, दर मापनी पर बिन्दु 5 – पूर्णत: सहमत के अतिरिक्त किसी और बिन्दु का चुनाव किया जाता है, तो कृपया कारण भी बताइए)	

5. भारत में शिक्षा के संदर्भ में 'उत्पीड़ित और उत्पीड़क' किसको माना जाना चाहिए?

शोध के उद्देश्य : उद्देश्य संख्या 4, 5, 6, व 7	
दर मापनी (1) पूर्णत: असहमत (2) असहमत (3) अनिश्चित (4) सहमत (5) पूर्णत: सहमत	
कारण (यदि, दर मापनी पर बिन्दु 5 – पूर्णत: सहमत के अतिरिक्त किसी और बिन्दु का चुनाव किया जाता है, तो कृपया कारण भी बताइए)	
शोध की विषयवस्तु : समकालीन भारतीय परिस्थितियाँ और शैक्षिक वर्चस्व व अपवंचन	
दर मापनी (1) पूर्णत: असहमत (2) असहमत (3) अनिश्चित (4) सहमत (5) पूर्णत: सहमत	
कारण (यदि, दर मापनी पर बिन्दु 5 – पूर्णत: सहमत के अतिरिक्त किसी और बिन्दु का चुनाव किया जाता है, तो कृपया कारण भी बताइए)	

6. भारत में शिक्षा का सभी तक पहुँच न बना पाने के पीछे आप की नज़र में क्या प्रमुख कारण रहे हैं? क्या फ्रेरे का शिक्षा-दर्शन इनके निदान में हमारी सहायता कर सकता है? यदि हाँ, तो किस प्रकार?

शोध के उद्देश्य : उद्देश्य संख्या 1, 4, 5, 6, व 7	
दर मापनी (1) पूर्णत: असहमत (2) असहमत (3) अनिश्चित (4) सहमत (5) पूर्णत: सहमत	
कारण (यदि, दर मापनी पर बिन्दु 5 – पूर्णत: सहमत के अतिरिक्त किसी और बिन्दु का चुनाव किया जाता है, तो कृपया कारण भी बताइए)	
शोध की विषयवस्तु : फ्रेरे के शिक्षा सम्बन्धी विचार, समकालीन भारतीय परिस्थितियाँ, और शिक्षा की पहुँच	
दर मापनी (1) पूर्णत: असहमत (2) असहमत (3) अनिश्चित (4) सहमत (5) पूर्णत: सहमत	
कारण (यदि, दर मापनी पर बिन्दु 5 – पूर्णत: सहमत के अतिरिक्त किसी और बिन्दु का चुनाव किया जाता है, तो कृपया कारण भी बताइए)	

7. शिक्षा को व्यवस्थित करने की बात की जाती है। यदि, भारत के लम्बे औपनिवेशिक इतिहास को ध्यान में रखा जाए, तो ऐसे में अपवंचितों की शिक्षा को किस तरह से व्यवस्थित किया जा सकता है?

शोध के उद्देश्य : उद्देश्य संख्या 4, 5, व 6	
दर मापनी (1) पूर्णत: असहमत (2) असहमत (3) अनिश्चित (4) सहमत (5) पूर्णत: सहमत	
कारण (यदि, दर मापनी पर बिन्दु 5 – पूर्णत: सहमत के अतिरिक्त किसी और बिन्दु का चुनाव किया जाता है, तो कृपया कारण भी बताइए)	
शोध की विषयवस्तु : समकालीन भारतीय परिस्थितियाँ और अपवंचितों की शैक्षिक स्थिति	
दर मापनी (1) पूर्णत: असहमत (2) असहमत (3) अनिश्चित (4) सहमत (5) पूर्णत: सहमत	
कारण (यदि, दर मापनी पर बिन्दु 5 – पूर्णत: सहमत के अतिरिक्त किसी और बिन्दु का चुनाव किया जाता है, तो कृपया कारण भी बताइए)	

8. पाओलो फ्रेरे 'स्वतंत्रता के भय' की बात उठाते रहे हैं। भारतीय समाज; विशेषकर शिक्षा के संदर्भ में आप छात्रों, माता-पिता और शिक्षा नियोजकों, शिक्षा व्यवस्थापकों या अध्यापकों में 'स्वतंत्रता के भय' को किस रूप में देखते हैं?

शोध के उद्देश्य : उद्देश्य संख्या 4, 5, 6, व 7	
दर मापनी (1) पूर्णत: असहमत (2) असहमत (3) अनिश्चित (4) सहमत (5) पूर्णत: सहमत	
कारण (यदि, दर मापनी पर बिन्दु 5 – पूर्णत: सहमत के अतिरिक्त किसी और बिन्दु का चुनाव किया जाता है, तो कृपया कारण भी बताइए)	
शोध की विषयवस्तु : समकालीन भारतीय शैक्षिक परिस्थितियों में 'स्वतन्त्रता का भय'	
दर मापनी (1) पूर्णत: असहमत (2) असहमत (3) अनिश्चित (4) सहमत (5) पूर्णत: सहमत	
कारण (यदि, दर मापनी पर बिन्दु 5 – पूर्णत: सहमत के अतिरिक्त किसी और बिन्दु का चुनाव किया जाता है, तो कृपया कारण भी बताइए)	

9. फ्रेरे को कई दफ़ा शैक्षणिक कार्यक्रमों में विवेकीकरण प्रक्रिया के अंतर्गत लोगों में 'विध्वंसक मतांधता' के डर का सामना भी करना पड़ा। क्या शिक्षा के संदर्भ में 'विवेकीकरण' अथवा आलोचनात्मक चेतना-जागृति का प्रयास विध्वंस अथवा मतांधता की ओर भी ले जा सकता है?

शोध के उद्देश्य : उद्देश्य संख्या 1, 4, 5, 6, व 7	
दर मापनी (1) पूर्णत: असहमत (2) असहमत (3) अनिश्चित (4) सहमत (5) पूर्णत: सहमत	
कारण (यदि, दर मापनी पर बिन्दु 5 – पूर्णत: सहमत के अतिरिक्त किसी और बिन्दु का चुनाव किया जाता है, तो कृपया कारण भी बताइए)	
शोध की विषयवस्तु : फ्रेरे के शैक्षिक विचार और समकालीन परिस्थितियों में शिक्षा में विवेकीकरण प्रक्रिया की दिशा	
दर मापनी (1) पूर्णत: असहमत (2) असहमत (3) अनिश्चित (4) सहमत (5) पूर्णत: सहमत	
कारण (यदि, दर मापनी पर बिन्दु 5 – पूर्णत: सहमत के अतिरिक्त किसी और बिन्दु का चुनाव किया जाता है, तो कृपया कारण भी बताइए)	

10. शिक्षा और साक्षरता दो अलग-अलग मामले हैं, जैसा कि फ्रेरे के दर्शन में भी स्पष्ट होता है और भारत की शैक्षणिक स्थिति में भी। शिक्षा और साक्षरता के प्रसार के मामले में आप क्या भिन्नता पाते/ पाती हैं; और भारत में इसे प्राय: जो पैसे की कमी से जोड़ा जाता है, इस पर आपका क्या मत है?

शोध के उद्देश्य : उद्देश्य संख्या 4, 5, 6, व 7	
दर मापनी (1) पूर्णत: असहमत (2) असहमत (3) अनिश्चित (4) सहमत (5) पूर्णत: सहमत	
कारण (यदि, दर मापनी पर बिन्दु 5 – पूर्णत: सहमत के अतिरिक्त किसी और बिन्दु का चुनाव किया जाता है, तो कृपया कारण भी बताइए)	
शोध की विषयवस्तु : समकालीन भारतीय सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक परिस्थितियाँ और शिक्षा	
दर मापनी (1) पूर्णत: असहमत (2) असहमत (3) अनिश्चित (4) सहमत (5) पूर्णत: सहमत	
कारण (यदि, दर मापनी पर बिन्दु 5 – पूर्णत: सहमत के अतिरिक्त किसी और बिन्दु का चुनाव किया जाता है, तो कृपया कारण भी बताइए)	

11. कुपोषण, भूख, व गरीबी को शिक्षा पाने के मार्ग में बड़ी बाधाओं के रूप में गिनाया जाता है। भारतीय स्थिति के संदर्भ में यह बात किस स्तर तक सत्य मानी जा सकती है? कृपया, बताइए।

शोध के उद्देश्य : उद्देश्य संख्या 4, 5, 6, व 7	
दर मापनी (1) पूर्णत: असहमत (2) असहमत (3) अनिश्चित (4) सहमत (5) पूर्णत: सहमत	
कारण (यदि, दर मापनी पर बिन्दु 5 – पूर्णत: सहमत के अतिरिक्त किसी और बिन्दु का चुनाव किया जाता है, तो कृपया कारण भी बताइए)	
शोध की विषयवस्तु : समकालीन भारतीय परिस्थितियाँ और शैक्षिक बाधाएँ	
दर मापनी (1) पूर्णत: असहमत (2) असहमत (3) अनिश्चित (4) सहमत (5) पूर्णत: सहमत	
कारण (यदि, दर मापनी पर बिन्दु 5 – पूर्णत: सहमत के अतिरिक्त किसी और बिन्दु का चुनाव किया जाता है, तो कृपया कारण भी बताइए)	

12. फ्रेरे का शिक्षा दर्शन 'स्थापित संस्कृति' के बरक्स 'प्रति संस्कृति के निर्माण' से सम्बद्ध माना जाता है। भारत में आप 'स्थापित संस्कृति' के बरक्स 'प्रति संस्कृति के निर्माण' को किस रूप में देखते/ देखती हैं?

शोध के उद्देश्य : उद्देश्य संख्या 4, 5, 6, व 7	
दर मापनी (1) पूर्णत: असहमत (2) असहमत (3) अनिश्चित (4) सहमत (5) पूर्णत: सहमत	
कारण (यदि, दर मापनी पर बिन्दु 5 – पूर्णत: सहमत के अतिरिक्त किसी और बिन्दु का चुनाव किया जाता है, तो कृपया कारण भी बताइए)	
शोध की विषयवस्तु : समकालीन भारतीय परिस्थितियाँ और सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक सुधार	
दर मापनी (1) पूर्णत: असहमत (2) असहमत (3) अनिश्चित (4) सहमत (5) पूर्णत: सहमत	
कारण (यदि, दर मापनी पर बिन्दु 5 – पूर्णत: सहमत के अतिरिक्त किसी और बिन्दु का चुनाव किया जाता है, तो कृपया कारण भी बताइए)	

13. यदि, 'स्थापित संस्कृति' और 'प्रति संस्कृति के निर्माण' को भारतीय शिक्षा से जोड़कर देखें, तो आप भारत की वर्तमान परिस्थितियों में इसे किस अवस्था या स्तर पर पाते/ पाती हैं?

शोध के उद्देश्य : उद्देश्य संख्या 4, 5, 6, व 7	
दर मापनी (1) पूर्णत: असहमत (2) असहमत (3) अनिश्चित (4) सहमत (5) पूर्णत: सहमत	
कारण (यदि, दर मापनी पर बिन्दु 5 – पूर्णत: सहमत के अतिरिक्त किसी और बिन्दु का चुनाव किया जाता है, तो कृपया कारण भी बताइए)	
शोध की विषयवस्तु : समकालीन भारतीय शैक्षिक स्थिति	
दर मापनी (1) पूर्णत: असहमत (2) असहमत (3) अनिश्चित (4) सहमत (5) पूर्णत: सहमत	
कारण (यदि, दर मापनी पर बिन्दु 5 – पूर्णत: सहमत के अतिरिक्त किसी और बिन्दु का चुनाव किया जाता है, तो कृपया कारण भी बताइए)	

14. फ्रेरे का मानना था कि "शिक्षा राजनीति है; व जिस प्रकार राजनीति वर्गीय है, शिक्षा भी है"। भारत के सम्बन्ध में इस पर आपका क्या मत है?

शोध के उद्देश्य : उद्देश्य संख्या 5 व 7	
दर मापनी (1) पूर्णत: असहमत (2) असहमत (3) अनिश्चित (4) सहमत (5) पूर्णत: सहमत	
कारण (यदि, दर मापनी पर बिन्दु 5 – पूर्णत: सहमत के अतिरिक्त किसी और बिन्दु का चुनाव किया जाता है, तो कृपया कारण भी बताइए)	
शोध की विषयवस्तु : भारतीय राजनीतिक स्थिति और शिक्षा का सम्बन्ध	
दर मापनी (1) पूर्णत: असहमत (2) असहमत (3) अनिश्चित (4) सहमत (5) पूर्णत: सहमत	
कारण (यदि, दर मापनी पर बिन्दु 5 – पूर्णत: सहमत के अतिरिक्त किसी और बिन्दु का चुनाव किया जाता है, तो कृपया कारण भी बताइए)	

15. आप की दृष्टि में भारत की शैक्षिक प्रणाली किस प्रकार के नागरिक तैयार कर रही है? क्या फ्रेरे का दर्शन इस संदर्भ में अपनी सार्थक भूमिका निभा सकता है? यदि हाँ, तो कैसे?

शोध के उद्देश्य : उद्देश्य संख्या 4, 5, 6, व 7	
दर मापनी (1) पूर्णत: असहमत (2) असहमत (3) अनिश्चित (4) सहमत (5) पूर्णत: सहमत	
कारण (यदि, दर मापनी पर बिन्दु 5 – पूर्णत: सहमत के अतिरिक्त किसी और बिन्दु का चुनाव किया जाता है, तो कृपया कारण भी बताइए)	
शोध की विषयवस्तु : समकालीन भारतीय परिस्थितियाँ और शिक्षा	
दर मापनी (1) पूर्णत: असहमत (2) असहमत (3) अनिश्चित (4) सहमत (5) पूर्णत: सहमत	
कारण (यदि, दर मापनी पर बिन्दु 5 – पूर्णत: सहमत के अतिरिक्त किसी और बिन्दु का चुनाव किया जाता है, तो कृपया कारण भी बताइए)	

16. फ्रेरे विद्यालयों को 'जिज्ञासा के बंध्यकरण' के सम्बन्ध में भी देखते हैं। इस संदर्भ में भारत के विद्यालयों की स्थिति पर आपका क्या विचार है?

शोध के उद्देश्य : उद्देश्य संख्या 4, 5, 6, व 7	
दर मापनी (1) पूर्णत: असहमत (2) असहमत (3) अनिश्चित (4) सहमत (5) पूर्णत: सहमत	
कारण (यदि, दर मापनी पर बिन्दु 5 – पूर्णत: सहमत के अतिरिक्त किसी और बिन्दु का चुनाव किया जाता है, तो कृपया कारण भी बताइए)	
शोध की विषयवस्तु : समकालीन भारतीय शैक्षिक स्थिति	
दर मापनी (1) पूर्णत: असहमत (2) असहमत (3) अनिश्चित (4) सहमत (5) पूर्णत: सहमत	
कारण (यदि, दर मापनी पर बिन्दु 5 – पूर्णत: सहमत के अतिरिक्त किसी और बिन्दु का चुनाव किया जाता है, तो कृपया कारण भी बताइए)	

17. ऐसा क्यों है कि भारत में विभिन्न शैक्षणिक कार्यक्रमों को चलाए जाने के पश्चात् भी शिक्षा सभी तक पहुँच बनाने के आसपास ही रही है?

शोध के उद्देश्य : उद्देश्य संख्या 4, 5, 6, व 7	
दर मापनी (1) पूर्णत: असहमत (2) असहमत (3) अनिश्चित (4) सहमत (5) पूर्णत: सहमत	
कारण (यदि, दर मापनी पर बिन्दु 5 – पूर्णत: सहमत के अतिरिक्त किसी और बिन्दु का चुनाव किया जाता है, तो कृपया कारण भी बताइए)	
शोध की विषयवस्तु : समकालीन भारतीय शैक्षिक स्थिति	
दर मापनी (1) पूर्णत: असहमत (2) असहमत (3) अनिश्चित (4) सहमत (5) पूर्णत: सहमत	
कारण (यदि, दर मापनी पर बिन्दु 5 – पूर्णत: सहमत के अतिरिक्त किसी और बिन्दु का चुनाव किया जाता है, तो कृपया कारण भी बताइए)	

18. भारत की सामाजिक स्थिति को यदि ध्यान में रखा जाए, तो यह 'कोठारी आयोग' की 'समान शिक्षा प्रणाली' अथवा 'पड़ोसी विद्यालय' की अवधारणा के मार्ग में क्या चुनौती पेश करती है? फ्रेरे के शिक्षा सम्बन्धी विचार इस चुनौती से निपटने में किस तरह सहायता कर सकते हैं?

शोध के उद्देश्य : उद्देश्य संख्या 4, 5, 6, व 7	
दर मापनी (1) पूर्णत: असहमत (2) असहमत (3) अनिश्चित (4) सहमत (5) पूर्णत: सहमत	
कारण (यदि, दर मापनी पर बिन्दु 5 – पूर्णत: सहमत के अतिरिक्त किसी और बिन्दु का चुनाव किया जाता है, तो कृपया कारण भी बताइए)	
शोध की विषयवस्तु : समकालीन भारतीय परिस्थितियाँ और शैक्षिक चुनौतियाँ व सुधार	
दर मापनी (1) पूर्णत: असहमत (2) असहमत (3) अनिश्चित (4) सहमत (5) पूर्णत: सहमत	
कारण (यदि, दर मापनी पर बिन्दु 5 – पूर्णत: सहमत के अतिरिक्त किसी और बिन्दु का चुनाव किया जाता है, तो कृपया कारण भी बताइए)	

हस्ताक्षर :

नाम :

परिशिष्ट 3[249]

(15 शिक्षाविदों[250] के नाम)

1) साक्षात्कारदाता: डा. चाँद किरण सलूजा
आचार्य (सेवानिवृत्त), शिक्षा विभाग (केन्द्रीय शिक्षा संस्थान), दिल्ली विश्वविद्यालय
निदेशक (शैक्षणिक) व संरक्षक, संस्कृत संवर्धन प्रतिष्ठान, दिल्ली
सदस्य, आधार पत्र विकास हेतु 'राष्ट्रीय फ़ोकस समूह 2021 (शिक्षक-शिक्षा)'

2) साक्षात्कारदाता: डा. नगेन्द्र सिंह
आचार्य व अधिष्ठाता शोध, क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान (राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की एक संघटक इकाई), अजमेर, राजस्थान
अधिष्ठाता शिक्षा, महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर, राजस्थान
सदस्य सचिव, आधार पत्र विकास हेतु 'राष्ट्रीय फ़ोकस समूह 2021 (विद्यालय व उच्च शिक्षा के बीच कड़ी)'

3) साक्षात्कारदाता: डा. आयुष्मान गोस्वामी
आचार्य व विभागाध्यक्ष, शिक्षा विभाग, क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान (राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की एक संघटक इकाई), अजमेर, राजस्थान
सदस्य सचिव, आधार पत्र विकास हेतु 'राष्ट्रीय फ़ोकस समूह 2021 ('प्रारंभिक बाल्य देखभाल व शिक्षा' एवं 'आधारभूत साक्षरता व संख्याज्ञान (आयु: 0 – 8 वर्ष)'

---

[249] 15 शिक्षाविदों के साक्षात्कारों के लिए इस पुस्तक का 'भाग दो' देखें।

[250] शोधार्थी-लेखक द्वारा अपने पीएच.डी. (शिक्षाशास्त्र) शोध कार्य के दौरान ही इन शिक्षाविदों से बातचीत की गई थी। इसलिए, इस पुस्तक में इन शिक्षाविदों के नाम के साथ उनका तत्कालीन पद, पद की स्थिति, कार्य, और कार्यस्थल, इत्यादि को ही लिखा गया है। वर्तमान समय में इसमें भिन्नता हो सकती है।

4) साक्षात्कारदाता: डा. उषा शर्मा

आचार्या, प्रारंभिक शिक्षा विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् , दिल्ली

सदस्य सचिव, आधार पत्र विकास हेतु 'राष्ट्रीय फ़ोकस समूह 2021 (प्रौढ़ शिक्षा)'

5) साक्षात्कारदाता: डा. सत्येंद्र गुप्ता

आचार्य व अधिष्ठाता, शिक्षा विद्यापीठ, गलगोटिया विश्वविद्यालय, ग्रेटर नोएडा, उत्तर प्रदेश

6) साक्षात्कारदाता: डा. ऋषभ कुमार मिश्र

सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ, महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र

7) साक्षात्कारदाता: डा. मनीषा मिनोचा

सह-आचार्या (सेवानिवृत्त), शिक्षा विभाग, प्रदीप मेमोरियल कोम्प्रिहेंसिव शिक्षा महाविद्यालय, दिल्ली

8) साक्षात्कारदाता: डा. अखा कैहरी माओ

सह-आचार्य, व्यवसायिक अध्ययन विद्यापीठ, अंबेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली

निदेशक, समान अवसर प्रकोष्ठ, अंबेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली

9) साक्षात्कारदाता: डा. मोहम्मद तारिक़

सहायक आचार्य, शिक्षा महाविद्यालय, मौलाना आज़ाद राष्ट्रीय उर्दू विश्वविद्यालय, मेवात, हरियाणा

10) साक्षात्कारदाता: डा. अजय समीर कुजुर

सहायक आचार्य, शिक्षा विभाग, गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर, छत्तीसगढ़

11) साक्षात्कारदाता: डा. हरिओम भारद्वाज

प्राचार्य, शिक्षा महाविद्यालय, स्यादवाद उच्च शिक्षा एवं अनुसंधान संस्थान, बागपत, उत्तर प्रदेश

12) साक्षात्कारदाता: डा. मुकेश कुमार परिहार

सहायक आचार्य, एम.एड. विभाग, सेंट्रल अकेडेमी शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, अजमेर, राजस्थान

13) साक्षात्कारदाता: श्री अभिनव त्यागी

सहायक आचार्य, शिक्षा विभाग, बाबू कामता प्रसाद जैन महाविद्यालय, बड़ौत, उत्तर प्रदेश

14) साक्षात्कारदाता: सुश्री कंचन खटरेजा

सहायक आचार्या, शिक्षा विद्यापीठ, के. आर. मंगलम विश्वविद्यालय, गुरुग्राम, हरियाणा

15) साक्षात्कारदाता: श्री सुशील कुमार

सहायक आचार्य, शिक्षा विभाग (एम.एड.), बाबू कामता प्रसाद जैन महाविद्यालय, बड़ौत, उत्तर प्रदेश